



ओ३म्

## वैदिक सम्पत्ति तृतीय खण्ड वेदों की उपेक्षा

द्वितीय खण्ड के अन्त में हमने वेदों की अपौरुषेयता सिद्ध करते हुए कहा था कि इसी वैदिक ज्ञान के कारण आदिमकालीन आर्यत्रैषियों ने यज्ञों की उन्नति के लिए बड़े-बड़े आविष्कार किये थे, किन्तु जब से उनमें मिश्रित दर्शन, मिश्रित विश्वास और मिश्रित विचारों का समावेश हुआ तब से परस्पर भयङ्कर अनैक्यता का साम्राज्य हो गया और उनका हर प्रकार से पतन हो गया। आज उन वैदिक आर्यों के वंशजों की वर्तमान दशा को देखकर कौन कह सकता है कि ये उसी अपौरुषेय ज्ञान के माननेवाले हैं, जिसने समस्त संसार को ज्ञानी और सदाचारी बनाया था। इनकी धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक अवस्था को देखकर कौन कह सकता है कि ये उन्हीं ऐश्वर्यवान् त्रैषियों और राजाओं की सन्तति हैं जिन्होंने समस्त भूमण्डल को अपने विज्ञान, कला और शौर्य-कौशल से चकित कर दिया था? इसमें सन्देह नहीं कि आर्यों का याज्ञिक काल बड़ा ही भव्य, तेजस्वी और विशाल था। उस समय कला, विज्ञान और सेना का महान् आयोजन था। आमोद, प्रमोद और विलास का साम्राज्य था और बल, शौर्य तथा साहस का समुद्र उमड़ रहा था, इसलिए आवश्यक था कि उनकी गिरावट आरम्भ हो। अपने समय के सबसे महान् पुरुष स्वामी दयानन्द सरस्वती ने सत्य ही कहा है कि 'यह संसार की स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि जब प्रयोजन से अधिक—असंख्य अर्थात् बहुत-सा धन होता है तब आलस्य, पुरुषार्थरहितता, ईर्ष्या-द्वेष, विषयासक्ति और प्रमाद बढ़ता है'। वही हुआ, आर्यों में आलस्य और प्रमाद बढ़ा। उनके उज्ज्वल समाज में छोटे-छोटे काले दाग़ दिखलाई पड़ने लगे। जहाँ-तहाँ आलसी, अनाचारी और मूर्खों का प्रादुर्भाव हुआ, परन्तु प्रश्न यह है कि क्या इस आनाचार के आरम्भ का कारण वैदिक शिक्षा है और क्या जिन वेदों की इतनी प्रशंसा की जा रही है उन्हीं वेदों के अनुसार इस समय हमारा आचार, व्यवहार, धर्म, कर्म और रीति-रस्म चल रहे हैं? क्या वर्तमान हिन्दुत्व, जिसके सुधारने का प्रयास चारों ओर से हो रहा है, उसी वैदिकता से उत्पन्न हुआ है जिसका इतना लम्बा गुणानुकाद गया जाता है और क्या उसी अपौरुषेय वैदिकता ने हमारा अधःपतन किया है जिसका प्रादुर्भाव आदिसृष्टि में परमात्मा की ओर से हुआ था? इन प्रश्नों का उत्तर दिये बिना वेदों की अपौरुषेयता की कोई विशेषता समझ में नहीं आती। हम इस तृतीय खण्ड में उन्हीं सब बातों का स्पष्टीकरण करना चाहते हैं।

हमारा विश्वास है कि आर्यों का पतन दर्शनमिश्रण और विश्वासमिश्रण से ही हुआ है। उनके पतन का कारण न वेद है और न वैदिक त्रैषि, किन्तु उनके पतन का कारण केवल विदेशी ही हैं, अतः हम समस्त विवरण का पता लगाने के लिए आर्यों का सामाजिक बन्धन, उनका विदेशगमन, विदेश से पुनरागमन, आर्यों के दर्शनों में विदेशियों के विश्वासों का मिश्रण और

## वैदिक सम्पत्ति

३७१

उनके पतन का आरम्भ आदि समस्त विषय विस्तार से लिखते हैं।

आर्यों में अवैदिकता का संचार और प्रसार कैसे हुआ, इसका भी उत्तर स्वामी दयानन्द सरस्वती के वाक्यों में ही भरा हुआ है। समाज में चाहे जितना अच्छा और दृढ़ प्रबन्ध हो, परन्तु कुछ या अधिक काल के बाद प्रबन्ध में शिथिलता आ ही जाती है और दुष्ट मनुष्यों का प्रादुर्भाव हो ही जाता है। आर्यों में भी इसी स्वाभाविक नियमानुसार आलस आया, शिथिलता ने दुष्ट मनुष्यों को उत्पन्न किया और चारों वर्णों में एकसाथ ही प्रमाद उत्पन्न हुआ, परन्तु विचक्षण आर्यों ने तुरन्त ही इस बात को ताड़ लिया और उपाय भी करने लगे। सबसे उत्तम और आर्योंचित उपाय यही हो सकता था कि दुष्ट, दुर्जन, अर्थात् अनार्य लोग समाज से बाहर निकाल दिये जाएँ, अतः ऐसे लोगों को समाज से पृथक् करने के कई एक मार्ग सोचे गये। सबसे पहले यह स्थिर किया गया कि अमुक समय तक यज्ञोपवित कराके यदि कोई आर्य आचार्यकुल में प्रविष्ट न हो जाए तो वह समाज से पृथक् कर दिया जाए। इसी प्रकार यदि कोई आर्य किसी को अकारण सताये तो वह भी असुर—दस्यु स्वभाववाला समझा जाए और समाज से निकाल दिया जाए। यदि कोई द्विज वेद न पढ़कर अन्यत्र श्रम करे तो शूद्र समझा जाए। यदि कोई दोनों समय सम्म्या न करता हो तो वह भी शूद्र समझा जाए। यदि कोई आर्य सर्वर्ण स्त्री के अतिरिक्त अनुलोम-प्रतिलोम विवाह करके प्रजा उत्पन्न करे तो वह प्रजा भी चातुर्वर्ण के अन्दर स्थान न पावे और यदि माता, पिता, आचार्य, राजा और अन्य माननीयों की आज्ञा न माने तो वह भी समाज से निकाल दिया जाए। इस प्रकार से समाजशुद्धि के अनेक द्वार खोले गये और चुन-चुनकर नियमभंग करनेवालों को जाति से—समाज से बाहर निकाल दिया गया। चाहे वह ब्रह्मण हो, क्षत्रय हो अथवा वैश्य हो, यदि वह मूर्ख और अनाचारी है तो तुरन्त ही जातिबहिष्कार के योग्य समझा गया।

समाज को स्वच्छ रखने के तीन ही उपाय हैं। पहला और सर्वप्रधान उपाय यही है कि समाज में ऐसा एक भी व्यक्ति न रहने पावे जिसने गुरु के पास रहकर विद्या, सदाचार और सम्यता न सीखी हो। दूसरा मार्ग यह है कि यदि कारणवश विद्या, सदाचार और सम्यता सिखलाने पर भी वह बदमाश हो जाए—चोर, व्यभिचारी, अत्याचारी और हत्यारा हो जाए—तो उसे जाति से निकाल दिया जाए। इन दो प्रधान नियमों से समाज में न तो कोई मूर्ख ही रह सकता है और न अत्याचारी ही। इन दोनों की रक्षा के लिए तीसरे उस मार्ग की आवश्यकता होती है जिससे सब लोग ईश्वर की उपासना, वेद द्वारा सृष्टि का ज्ञान और बड़ों का आदर करने का अभ्यास रखें, जिससे पहले दोनों प्रधान नियमों के पालन करने में असुविधा न हो। आदर्श आर्य बनाने के ये ही मार्ग हैं और पूर्वकाल में इन्हीं का अवलम्बन किया गया था। इन्हीं से उस आदर्श आर्यजाति की प्राप्ति हो सकती थी जिसका वर्णन हमने गत खण्ड में किया है। जातिबहिष्कार के अतिरिक्त उस समय दूसरे दण्ड भी थे—प्रायश्चित्त भी थे, जेल और जुर्माने भी होते थे, परन्तु उस समय के महान् सम्भवता प्राप्त आर्यों में जाति-अपमान का दण्ड सबसे कड़ा समझा जाता था। सच भी है, एक मनुष्य इसलिए आर्य न कहलाने पावे कि वह मूर्ख अथवा बदमाश है, इससे बढ़कर और क्या दण्ड हो सकता था? सभ्य समाज से जिसका सम्बन्ध तोड़ दिया जाए, जिसके साथ कोई सभ्य मनुष्य किसी प्रकार का व्यवहार न रखें उसके लिए इससे बड़ा और क्या दण्ड हो सकता था और आदर्श आर्यत्व स्थिर रखने के लिए इससे अच्छा और क्या उपाय हो सकता था? परन्तु प्रत्येक अच्छाई में कुछ बुराई भी होती है, प्रत्येक व्यवस्था में त्रुटि भी होती है और प्रत्येक सुधार में दोष छिपा होता है। इस अद्भुत नियमानुसार इस बहिष्कारपद्धति में भी आगे चलकर विष के फूल फूले। हम यहाँ सारांशरूप से उन जातियों के बहिष्कार का वर्णन कर देना चाहते हैं जो पहले आर्य थीं और फिर अनार्थ हो गई तथा जातिच्युत होकर दस्यु, दास, राक्षस, असुर,

महिष, कपि, मृग, नाग आदि नीच नामों से पुकारी जाने लगीं और आर्यों के पतन का कारण हुई।

द्वितीय खण्ड में हम दिखला आये हैं कि आदिसृष्टि में समस्त गुणगणालंकृत आर्यजाति का ही जन्म हुआ था और उसी से मूर्ख और असभ्यों ने निकल-निकलकर दस्यु और राक्षसादि की उत्पत्ति की थी, क्योंकि मनुस्मृति में लिखा है कि ब्राह्मणों के पास न पहुँच सकने के कारण क्षत्रियों की जातियाँ क्रियालुप्त होने से पतित हो गईं। वही पौँड्र, औंड्र, द्रविड़, काम्बोज, पारद, खश, पहुँच, चीन, किरात, झल्ल, मल्ल, दरद और शक नामधारिणी अनार्य जातियाँ हो गईं। यह सत्य है कि पहले इसी प्रकार के ब्रात्य ही जातिच्युत किये जाते थे, परन्तु कुछ दिन के बाद जातिबहिष्कार का रूप कुछ उग्र हो चला। महाभारत, हरिवंश और विष्णुपुराण में यह कथा है कि राजा हरिश्चन्द्र के बाहु नामी सातवाँ वंशज हुआ। वह हैहा और तालजंघा नामी राक्षसों से पराजित हुआ और अपनी गर्भिणी स्त्री के सहित जंगल में भाग गया। उससे सगर पैदा हुआ। सगर ने अपने बाप के शत्रु शक, यवन, काम्बोज, चोल, केरल आदि को जीतकर उनका समूल नाश करना चाहा, परन्तु अपने गुरु वसिष्ठ के कहने पर उन सबको वेदभ्रष्ट करके, दक्षिण देश के अरण्यों में निकाल दिया<sup>१</sup>। आगे चलकर इस प्रथा ने और भी उग्र रूप धारण किया। नहुष के पुत्र ययाति ने अपने पाँचों पुत्रों में से तुर्वसु से युवा अवस्था माँगी, पर उसने देने से इनकार कर दिया। इससे पिता ने नाराज होकर उसको सपरिवार जातिभ्रष्ट करके जहाँ अगम्यगामी, मांसाहारी और पशुवृत्तिवाले म्लेच्छ रहते थे उस दक्षिण दिशा में धकेल दिया<sup>२</sup>। ये घटनाएँ क्षत्रियों में हुईं। इसी प्रकार ब्राह्मणों में भी जातिबहिष्कार हुआ। महर्षि विश्वामित्रजी ने कहीं से एक लड़का प्राप्त किया और उसे अपने सौ पुत्रों में सबसे मुख्य ठहराया, किन्तु पचास लड़कों ने पिता की इस आज्ञा को मानने से इनकार कर दिया, इसलिए द्विजदेव विश्वामित्र महाराज ने क्रोधित होकर उन्हें दक्षिण के जंगल में निकाल दिया। वही सब आन्ध्र, पुण्ड्र, शबर, पुलिन्द आदि राक्षस हो गये<sup>३</sup>। यह ब्राह्मणों का हाल हुआ।

वैश्यों का हाल इससे भी अधिक विचित्र है। कहते हैं कि अति प्राचीन काल में आर्यलोग लोभी वर्णिक को 'पणिक' कहते थे। वर्णिक, पणिक या पणि लोभी होते ही हैं, अतः आर्यजनता इनपर भी रुष्ट हुई और विवश होकर इनको भी उसी दक्षिण दिशा में जाना पड़ा<sup>४</sup>। इस प्रकार

१. शका यवनकाम्बोजाः पारदाः पहुवास्तथा। कौलिसर्पाः स महिषा दार्वाश्चोलाः स केरला ॥

सर्वे ते क्षत्रियास्तात् धर्मस्तेषां निराकृतः। वसिष्ठवचनाद्राजन् सगरेण महात्मना ॥ —महाभारत\*

२. यत्त्वं मे हृदयाज्ञातो वयः स्वं न प्रयच्छसि। तस्मात् प्रजा समुच्छेदं तुर्वसो तव यास्यति।

संकीर्णचारधर्मेषु प्रतिलोमचरेषु च। पिशिताशिषु चान्त्येषु मूढ राजा भविष्यति॥

गुरुदारप्रसक्तेषु तिर्यग्योनिगतेषु च। पशुधर्षेषु पापेषु म्लेच्छेषु त्वं भविष्यसि॥

—महा० [आदि० ८४। १३-१५]

३. तस्य ह विश्वामित्रस्यैकशतं पुत्रा आसुः। पञ्चाशदेव ज्यायांसो मधुच्छन्दसः। पञ्चाशत्कनीयांसस्तद् ये ज्यायांसो न ते कुशलं मेनिरे। ताननु व्याजहार तान्वः प्रजा भक्षीष्टेति। त एतेऽन्धाः पुण्ड्राः शबराः पुलिन्दाः मूतिबा इत्युदन्त्या बहवो भवन्ति। विश्वामित्रा दस्यूनां भूयिष्ठाः। —ऐतरेयब्राह्मण ७। ३३। ६

४. The panis have been mentioned more than once in the previous chapter. We have shown that they were Aryans, belonging to the trading class.....They were a community by themselves, selfish, narrowminded, intent only on their business and gain...They did not perform the same sacrifice nor worship the same God, as the cultured Aryans did, which made them incur their displeasure, nay, hatred. Hated and persecuted by Vedic Aryans....they must have moved along the western coast of the Deccan Peninsula in search of suitable land. —Rigvedic India, p. 180-181

\* ये श्लोक इस रूप में महाभारत में नहीं हैं।

—जगदीश्वरानन्द

आर्यों द्वारा पृथक् की हुई यह समस्त टोली दक्षिणी प्रान्त से भारत के अन्य सीमाप्रान्तों में जा-जाकर बस गई। पश्चिम, उत्तर, पूर्व और दक्षिण में ये जातियाँ बसीं, बढ़ीं और पुष्ट होकर आर्यों से लड़ीं तथा परास्त हो-होकर अन्य-अन्य देशों को चली गई। आन्ध्र लोग आन्ध्रालय, अर्थात् आस्ट्रेलिया को गये, झल्ल लोग अफ्रीका में जाकर जूलू हो गये, चीना लोग चीन में जाकर बसे और किरात बलूचिस्तान में बस गये। नट, कंजर, बेड़िया आदि बहुत-सी जातियाँ इसी देश के जंगलों में रह गई। इसी प्रकार अन्य पतित जातियाँ भी पृथिवी के अन्य-अन्य भागों में जाकर बसीं और अपने-अपने नामों से उन-उन देशों का नाम रखकर बहुत दिन के बाद स्वयं उस-उस नाम से प्रसिद्ध हो गई। अति प्राचीन काल में सबसे प्रथम जो जातियाँ भारत से निकाली जाकर अन्य-अन्य भूभागों में जाकर बसी हैं उनका यह दिग्दर्शनमात्र है। इनके अतिरिक्त व्यापार करने के लिए, धर्मोपदेश करने के लिए और शासन, सभ्यता तथा आचार-प्रचार करने के लिए भी कई बार यहाँ से आर्यलोग पूर्वोक्त देशों तथा अन्य-अन्य भूभागों में जाकर बसे हैं, उन सबका वर्णन अगले पृष्ठों में विस्तारपूर्वक किया जाएगा, परन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि चीन, यवन और शक आदि शब्द विदेशी नहीं, किन्तु भारतीय हैं और बहुत पुराने हैं। चीन शब्द के विषय में प्रो० हीरेन कहते हैं कि चीन शब्द हिन्दुओं का है और हिन्दुस्तान से ही आया है<sup>१</sup>।

पञ्चतन्त्र की एक कथा में लिखा है कि एक कौलिक विष्णुरूप धारण करके किसी राजकन्या के पास जाया करता था। वहाँ उस कन्या के सर्वाङ्गसुन्दर वर्णन में 'चीना नाभिः' लिखा हुआ है। यहाँ चीना शब्द का गहरा अर्थ है। अमरकोश में मृगों का भेद-वर्णन करते हुए एक प्रकार के मृग को भी चीन कहा गया है। इन प्रमाणों से ज्ञात होता है कि चीन शब्द के वास्तविक आर्थों के कारण ही—गहराई में रहने और तेज तबीयत होने से ही—चीनवालों को चीना कहा गया है। इसी प्रकार यवन शब्द भी पुराना है। पुराणों में 'तुर्वसो यवना जाता', अर्थात् तुर्वसु से यवन पैदा हुए, ऐसा लिखा है। तुर्वसु याति का पुत्र था। इससे ज्ञात होता है कि यवन शब्द भी नवीन नहीं है। इस शब्द के विषय में स्वामी विवेकानन्द ने लिखा है कि मिस्त्र और बेबिलोनवाले भी बहुत समय पूर्व, शक, ग्रीक लोगों को यवन ही कहते थे। शक भी पुराना शब्द है। 'नरिष्यन्तः शकाः पुत्राः' वाक्य से प्रकट होता है कि शक इक्ष्वाकु का पौत्र था। शक इतना पुराना शब्द है कि यह ऋग्वेद में भी आया है। कहने का भाव यह कि आर्यों ने अपने अन्दर से जिन पतित आर्यों को निकालकर दस्यु, राक्षस आदि कहा है और चीना, यवन, शक आदि शब्दों से पुकारा है, वे शब्द आर्यों के पास आदिमकाल में भी उपस्थित थे और उनका कुछ अर्थ था। उसी अर्थ के अनुसार जिनमें जैसे गुण देखे उनके वैसे ही नाम रख दिये और उन्होंने भी वे नाम अपने साथ ले-जाकर अपने नवीन देशों के भी वही नाम रख दिये और स्वयं भी अब तक उन्हीं नामों को स्वीकार किये हुए हैं।

### आर्यों का विदेशगमन

#### पश्चिमी एशिया

भारत में पश्चिम की ओर सबसे प्रथम अफरीदी, काबुली और बलूचियों के देश आते हैं। इन देशों में इस्लाम-प्रचार के पूर्व आर्य ही निवास करते थे। यहीं पर गान्धार था जहाँ की गान्धारी राजा धृतराष्ट्र की रानी थी। गान्धार को इस समय कन्धार कहते हैं, जिसका अपभ्रंश कन्दार और खन्धार भी है। इसी के पास राजा गजसिंह का बसाया हुआ ग़ज़नी नगर अब तक विद्यमान

१. The name of China is of Hindu origin and came to us from India.

—Professor Heeren.

है। काबुल में जो पठानजाति रहती है वह प्रतिष्ठान (झूसी) राजधानी की रहनेवाली चन्द्रवंशी क्षत्रियजाति है। झूसी से आकर पहले यह सरहद (फ्रंटियर) में बसी और वहाँ इसने प्रजासत्तात्मक शासनपद्धति स्थापित की। प्रजासत्तात्मक शासनपद्धति को उस समय गणराज्य कहते थे। अफरीदी लोग उस समय के गण लोग ही हैं। रायबहादुर चिन्तामणि विनायक वैद्य ने अपने महाभारतमीमांसा नामी ग्रन्थ में इस विषय पर अच्छा प्रकाश डाला है। आप कहते हैं कि महाभारत में लिखा है कि 'गणानुत्सवसंकेतान् दस्यून् पर्वतवासिनः। अजयन् सप्त पाण्डवः' अर्थात् सप्त गणों को पाण्डवों ने जीत लिया। इन्हीं गणों ने तनिक आगे बढ़कर 'उपगण' या 'अपगण' राज्य स्थापित किया। इसी को इस समय अफगान कहते हैं और उनके स्थान का नाम अफगानिस्तान है। इसका असली उच्चारण 'उपगण-स्थान' है। यह पहले गणराज्य के अधीन था। ये गण (अफरीदी) आर्यों से द्वेष रखने के कारण ही आर्यों के शासन से अलग रहते थे। इसी प्रकार बलोचिस्तान भी बलोच्स्थान शब्द का अपभ्रंश है। इसमें केलात नामक नगर अब तक विद्यमान है। यह केलात तब का है जब किरात नामी पतित आर्यक्षत्रिय यहाँ आकर बसे थे। ये क्षत्रिय होने से ही बल में उच्चस्थान प्राप्त कर सके थे। मनुस्मृति में जहाँ अन्य पतित क्षत्रियों के नाम गिनाये गये हैं वहाँ 'किराता यवनाः शकाः' कहकर किरात भी गिनाये गये हैं। हम आगे विस्तारपूर्वक इनका वर्णन करेंगे और दिखलाएँगे कि ये किरात नेपाल और भूटान आदि में जाकर मंगोलियाजाति के मूलपुरुष भी बने हैं।

अफगानिस्तान के आगे ईरान है जिसको पारश्य देश भी कहते हैं। यहाँ पहले वह जाति बसी हुई थी जो आजकल हिन्दोस्तान में पारसी नाम से प्रसिद्ध है। यह जाति अति प्राचीन काल में ही आर्यों से पृथक् होकर ईरान में बसी थी। मैक्समूलर कहते हैं कि 'यह बात भौगोलिक प्रमाणों से सिद्ध है कि पारसी लोग फ़ारस में बसने से पहले भारत में बसे हुए थे। उत्तर भारत से जाकर ही पारसियों ने ईरान में उपनिवेश बसाया था'। वे अपने साथ यहाँ की नदियों के नाम ले-गये। उन्होंने सरस्वती के स्थान में 'हरहवती' और सरयू के स्थान में 'हरयू' नाम रखा। वे अपने साथ शहरों के नाम भी ले-गये। उन्होंने भरत को 'फरत' किया और वही फरत 'यूफरत' हो गया। उन्होंने भूपाल (न) को बेबिलन और काशी को कास्सी (Cassoci) तथा आर्यन को ईरान नाम से भी प्रसिद्ध किया। इस वर्णन से ज्ञात हुआ कि पारसी भी भारतीय आर्यों की ही शाखा हैं।

ईरान के पास ही अरब है। वैदिक भाषा में अर्वन् घोड़े को कहते हैं और जहाँ घोड़े रहते हैं उस स्थान को अर्व कहते हैं। जिस प्रकार गौओं की बड़ी गोचरभूमि को व्रज, और भेड़ी-बकरीवाले देश को गन्धार कहते हैं, उसी प्रकार जहाँ अच्छी जाति के घोड़े रहते हैं उसको अर्व कहते हैं। अब भी अरबी घोड़ा सर्वोपरि समझा जाता है। उत्तम घोड़े उत्पन्न होने से ही आर्यों ने इस देश का नाम अर्व रखा था। स्मृतियों के पढ़नेवाले जानते हैं कि आर्यों से उत्पन्न एक वर्णसंकर जाति को 'शैख' कहते हैं। यह संकरजाति ब्राह्मण के योग से उत्पन्न होती है<sup>१</sup>। प्रतीत होता है कि वही शैखजाति अरब में बसकर शैख हो गई है, क्योंकि शैखों का अरब में वही मान

१. It can now be proved even by geographical evidence that the Zoroastrian had been settled in India before they immigrated into Persia. —*Chips From a German Workshop*, p. 235.

The Zoroastrians were a colony from Northern India. —*Science of Language*.

२. ब्रात्यात् जायते विप्रात्पापात्मा भूर्जकण्टकः। आवन्त्यवाटधानौ च पुष्पधः शैख एव च।

है जो भारत में ब्राह्मणों का है। यह प्रसिद्ध बात है कि मुसलमान होने से पहले वहाँ के निवासी अपने को ब्राह्मण ही कहते थे। अरब से ही रामानुज सम्प्रदाय का मूलप्रचारक यवनाचार्य लगभग नवीं शताब्दी में यहाँ आया था, क्योंकि ग्यारहवीं शताब्दी में रामानुजाचार्य का जन्म हुआ। इनके दो सौ वर्ष पूर्व मद्रास प्रान्त में शूद्रजाति पर महान् अत्याचार होता था। उसी समय इस अरबदेशनिवासी ब्राह्मणकुलोत्पन्न दयालु यवनाचार्य का आना हुआ। उस समय वहाँ महात्मा शटकोप आदि आन्दोलनकर्त्ताओं की यवनाचार्य ने सहायता की।

एशियाटिक रिसर्चेज़ भाग १० में बिलफोर्ड नामी विद्वान् लिखित एक निबन्ध छपा है। उसमें लिखा है कि ‘यवनाचार्य का जन्म अरब देश के एक ब्राह्मणकुल में हुआ था और अलेक्जेंड्रिया के प्रसिद्ध विश्वविद्यालय में उन्होंने शिक्षा पाई थी’। अरब में अब तक बहुत-से आर्य निवास करते हैं, परन्तु उनका आचार यहाँ के हिन्दुओं का-सा नहीं है। जर्मनयुद्ध के समय यहाँ के कई फौजी सिपाही बगादाद, बसरा और मेसोपोटामिया आदि में रहकर यहाँ आये हैं। वे बतलाते हैं कि वहाँ अब तक पुराने हिन्दुओं के चिह्न पाये जाते हैं। इन घटनाओं से अच्छी प्रकार सिद्ध होता है कि अरबनिवासी आर्य ही हैं। इस अरब से आगे चलने के पूर्व, हम उन स्थानों के प्राचीन नाम और पते बतला देना चाहते हैं, जिनका इस समय एशिया माझनर या निकट ईस्ट में समावेश होता है। आजकल के नक्शे के अनुसार फ़ारस, मेडिटरेनियन समुद्र, अरब और मेसोपोटामिया को सब जानते हैं, इसलिए नीचे लिखे देशों की कल्पना कर लेना सहज होगा। फ़िनीशिया पश्चिमी एशिया में मेडिटरेनियन समुद्र के किनारे पर है। सीरिया देश फ़िनीशिया से मिला हुआ पूर्व की ओर है। बेबिलोनिया सीरिया के दक्षिण, फ़ारस के पश्चिम और अरब के उत्तर में है। चालिड्या भी इसी के पास है। जुडिया को सीरिया भी कहते हैं, वह भी यहीं पर है और मेसोपोटामिया असीरिया के पश्चिम में है। इन देशों के निवासियों का परिचय इस प्रकार है—

फ़िनीशिया प्रदेश मेडिटरेनियन समुद्र के किनारे पर स्थित है। पूर्व पृष्ठों में हम आर्यजाति के वैश्यवर्णन्तर्गत पणि नामक आसुरी वृत्तिवाले बनियों का वर्णन कर आये हैं। वैदिक भाषा में वैश्यवर्ण के बदमाश, ठग, धोखेबाज़ और धनलोलुप गिरोह को पणि कहते हैं। ये पणि आर्यों द्वारा निकाल दिये गये और दक्षिण-प्रदेश में एक अच्छा बाज़ार बनाकर बस गये। इस बाज़ार को लोग पण्य कहते थे। कुछ दिन में यही पण्य पाण्डय कहलाने लगा और इन्हीं पणियों के नाम से पाण्डय प्रदेश क्रायम हो गया<sup>१</sup>। इन्हीं की एक दूसरी शाखा चोर होने के कारण इनसे भिन्न स्थान में बसी और ‘चोल’ कहलाने लगी। इसी के नाम से चोलप्रदेश प्रसिद्ध हुआ। ये पाण्डय और चोल दोनों प्रदेश मद्रास प्रान्त में अब तक विद्यमान हैं। ये पणि लोभी थे और बहुत बड़े व्यापारी थे। जहाज बनाना भी जानते थे। मद्रास प्रान्त में सागवान की लकड़ी अधिक थी ही, अतः उसके

१. But before telling anything of these learned men, something needs to be said of that great man, Yawanacharya. He took his birth in a Brahman family in Arabia and was educated in the University of Alexandria. —Asiatic Researches, Vol. X.
२. पणियों के लिए ऋग्वेद ७। ६। ७ में लिखा है कि ‘अक्रतून् ग्रथिनो मृध्वाचः पर्णारश्रद्धान्’ अर्थात् गाँठ काटनेवाले, पाकेटमार पणि।

चेम्बर्स डिक्शनरी में लिखा है कि Punic—Pertaining to or like the ancient Carthaginians: faithless, treacherous, deceitful. (L. Punicus—Poeni, the Carthaginians.)

सकबर्ग (Suckburgh) नामी विद्वान् अपने रोम के इतिहास में लिखता है कि ‘The Roman words Poeni and Punicus are corruptions of Phoenix and Phoenician.’

जहाज बना-बनाकर ये पणि दूर देशों को प्रस्थित हुए और पश्चिमी एशिया में मेडिटरेनियन समुद्र के किनारे पर आबाद हुए। जिस प्रकार इनके नाम से यहाँ पाण्ड्य और चोलप्रदेश प्रसिद्ध हुए थे, उसी प्रकार पणियों से फ़िनीशिया और चोलों से चालिड्या देशों के नाम भी प्रसिद्ध हो गये। फ़िनीशियावाले पणि अथवा पणिकृ ही हैं, इसमें सन्देह नहीं है, क्योंकि बेबिलोनियावालों के मूलपुरुषों के विषय में ‘हिस्टोरिकल हिस्ट्री आफ दि वर्ल्ड’ में लिखा है कि ‘बेबिलोनियावालों के वायुदेवता का नाम ‘मतु या ‘मर्तु’ है। यह हमें वैदिक शब्द ‘मरुत’ ही प्रतीत होता है। यह पणियों और चोलों के द्वारा ही बेबिलोनिया में लाया गया है’। इस वर्णन से यह स्पष्ट हो गया कि पणियों का चोलों के साथ सम्बन्ध है और यह भी निश्चय हो गया कि इन्होंने ही बेबिलोनिया को भी बसाया था। राजनिधण्ट में लिखा है कि ‘वैश्यस्तु व्यवहर्ता विङ् वार्तिको पणिजो वणिक्’\* अर्थात् व्यवहर्ता, विट, वार्तिक, पणिकृ और वणिकृ वैश्य के ही भेद हैं। इस प्रमाण से सुलझ गया कि वे आर्य ही हैं। इसके अतिरिक्त तिलक महोदय ने लिखा है कि ‘वैदिक ‘मना’ और फ़िनीशिया का ‘मनह’ शब्द एक ही है और वहाँ भारत से ही गया है। मन के लिए ऋग्वेद ८।७८।२ में आया है कि ‘आ नो भर व्यंजनं गामश्वमभ्यज्जनम्। सचा मना हिरण्यया’। यह मन वजन के लिए काम में आता था और अब भी आता है। इसको लेटिन में मिन, ग्रीक में मिना, बेबिलोनियन में मिन और वर्तमान अंग्रेजी में माउण्ड कहते हैं<sup>१</sup>। इसी प्रकार फ़िनीशिया की भाषा में ऊँट को जिमल कहते हैं। वही अंग्रेजी में केमल कहलाता है। यह संस्कृत के क्रमेलक शब्द का ही अपभ्रंश है। क्रमेलक का कमेलक और कमेलक का केमल तथा केमल का जिमल हो गया है<sup>२</sup>, परन्तु यह अफ्रीका का प्राणी नहीं है<sup>३</sup>। इससे ज्ञात होता है कि ऊँट और उसका वाचक शब्द दोनों भारत से ही गये हैं और इनके ले-जानेवाले पणिकृ ही हैं।

इन समस्त प्रमाणों से सिद्ध होता है कि पणि और चोल ही फ़िनीशिया और चालिड्या में बसे। इस समस्त वर्णन का सारांश यह है कि आदि में वैश्यों से पणि हुए और वही पणिकृ हो गये। उन्होंने ही दक्षिण में जाकर पण्य, अर्थात् पाण्ड्य नाम का बाजार बसाया, जो कुछ दिन में उसी नाम का व्यापारी प्रदेश हो गया। इसी प्रकार अपने पड़ोस में चोलों—गाँठ काटनेवालों को भी चोलप्रदेश में बसाया। वहाँ से ये लोग पश्चिम दिशा को गये और वहाँ पाण्ड्यों ने प्यूनिक या प्यूनिक देश बसाया जो अब फ़िनीशिया कहलाता है और चोलों ने चालिड्या बसाया जो बहुत दिन तक इस देश के साथ व्यापार करता रहा। इस प्रकार आर्यलोग अपनी आर्यसभ्यता के साथ पूर्व से पश्चिम में पहुँचे।

अभी ऊपर हमने तिलक महोदय के जिस निबन्ध का प्रमाण दिया है उसमें उन्होंने अर्थर्ववेद और चालिड्यनवेद के कई शब्दों का मिलान करके बतलाया है कि दोनों की भाषा

१. The name of the Babylonian strom-God was Matu or Martu which, as we have seen, was the same as the Vedic Marut, and must have been taken by the Panis and Cholas to Babylonia.

—*Historical History of the World*, Vol. 1, p. 89.

२. Dr. Bhandarker Commemoration essays.

३. फ़िनीशिया लिपि के अबजद का ‘जीम’ ऊँट के ही आकार का है। इस जीम को पहले फ़िनीशिया भाषा में जिमल (ऊँट) कहते थे, क्योंकि यह अक्षर ऊँट से ही लिया गया है। अबजद का अंग्रेजी ‘A B C D’ (अबसद) हुआ है, परन्तु ‘सी’ का उच्चारण ‘क’ भी होता है, इसलिए जिमल का केमल हुआ है।

४. The other domestic animals have certainly been introduced from other continents, as for instance, the camel, which seems, to have been entirely unknown in Africa before the period of the great migration in Western Asia about 2,000 B.C. —*Harmsworth History of the World*, p. 2007.

\* राजनि० अष्टादशी० ५

दूसरे से मिलती है। इस मिलान का नमूना इस प्रकार है—

संस्कृत	चाल्डियन	अर्थ
सिनीवालि	सिनवुव्वुलि	अमावास्या
अप्सु	अब्जु (जुअब)	पानी
यह०	यहवे	महान्
ऋतु	इतु	मौसिम
परसु	पिलक्कु, बलगु०	शस्त्र
अलिगीविलगी०	विलगी०	सर्पदेव
तैमात	तिआमत०	देवता
उहगुला	उरुगुल०	देवता

इस शब्दसाम्य के अतिरिक्त, चाल्डिया की डैल्यूज टेबलेट, अर्थात् मनु के तूफान की कथा भी ज्यों-की-त्यों यहाँ के अनुसार ही लिखी हुई मिलती है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि वे आर्य ही हैं। हम अभी फ़िनीशियावालों के वर्णन के साथ लिख आये हैं कि बेबिलोनिया में पणियों और चोलों ने ही उपनिवेश बसाया था। ये चाल्डियन उन चोलों के अतिरिक्त और कोई दूसरे नहीं हैं जो आर्यों से पृथक् होकर पहले चोल देश में बसे थे, इसलिए चाल्डिया-निवासी भी भारतवासी आर्य ही हैं।

जुड़िया यहूदियों का देश है। इसी में हजरत मूसा और हजरत ईसा जैसे जगत् प्रसिद्ध धर्माचार्य उत्पन्न हुए हैं। बाइबिल में लिखा है कि पश्चिम में आनेवालों की एक ही भाषा थी और वे सब पूर्व ही से आये हैं०। इनके विषय में पोकाक नामी विद्वान् अपने ‘इण्डिया इन ग्रीस’ नामी ग्रन्थ में लिखता है कि युडा (जुडा) जाति भारत की यदु, अर्थात् यदुवंशीय क्षत्रिय जाति ही है०। इसके अतिरिक्त अभी हमने तिलक महोदय के लिखित शब्दसाम्य के हवाले से दिखलाया है कि यहूदियों का यहोवा शब्द संस्कृत के यहु शब्द का ही अपभ्रंश है। बाबू उमेशचन्द्र विद्यारत कहते हैं कि ज्यू शब्द संस्कृत का ही है। आप मेदिनी कोष का यह वचन उद्धृत करते हैं कि ‘जूराकाशे सरस्वत्यां पिशाचे यवनेऽपि च’ अर्थात् ‘जू’ शब्द यवन शब्द का ही अपभ्रंश है। मानवेर आदि जन्मभूमि पृष्ठ ३ पर आप कहते हैं कि राजा सगर की आज्ञा से यवनों ने जिस पल्ली स्थान में निवास किया था, वही पेलेस्टाइन हो गया है और यवन शब्द का ही विकार (यवन-जोन) ‘जू’ है०। इस

१. यह शब्द ऋग्वेद ९।७५।१, ३।१।१२ और ८।१३।२४ में ‘महान्’ अर्थ में आया है और ज़ेन्द में यही ‘यजु’ हुआ है। हजरत मूसा का जिहोवा शब्द इसी से निकला है। ग्रिफिथ ने इसका अर्थ ‘Lord’ किया है।

२. ‘पिलक्कु’, अकेडियन और ‘बलगु’ सुमेरियन भाषा का है।

३. यह शब्द अथर्ववेद ५।१३।७ में आया है। ४. यह शब्द असीरियन भाषा का है।

५. ये शब्द अकेडियन भाषा के हैं।

६. And the whole was of one language, and of one speech. And it came to pass, as they journeyed from the East. —Genisis, Chapter XI.

७. The tribe of Yudah is, in fact, the very Yadu of which considerable notice has been taken in my previous remarks. —India in Greece, p.22.

८. सगर आदेशे हिन्दू यवनगन प्रथमतः ये पल्लीस्थानेर प्रतिष्ठा करेन, ताहा Palastine बलिया प्रख्यात हय एवं उक्त यवनगन, यवन शब्देर विकार (यवन-जोन-जू) क्रमे ‘जू’ नामे प्रख्यात लाभ करेन।

—मानवेर आदि जन्मभूमि

वर्णन से सिद्ध होता है कि यदुवंशी क्षत्रिय राजा सगर के द्वारा यवन करके निकाले गये 'जू' पेलेस्टाइन में बसे। यही बात बाइबिल और पोकाक के वचनों से भी सिद्ध होती है। बाइबिल का नूह का वर्णन भी मनु के तूफान की ही सूचना देता है, अतएव यहूदियों के आर्य होने में कुछ भी सन्देह नहीं रह जाता। साथ ही यह भी सिद्ध हो जाता है कि वे भारत से ही जाकर वहाँ बसे हैं।

फिनीशिया के वर्णन में हम ऊपर लिख आये हैं कि बेबिलोनियावालों का वायु देवता जिसको वे मतु या मर्तु कहते हैं, वह वैदिक आर्यों का मरुत ही है। यह पणियों और चोलों के द्वारा बेबिलोनिया में गया है, अतः सिद्ध है कि पणिक् और चोल ही फिनीशिया और चालिड्या से जाकर बेबिलोनिया में बसे। ए० बेरीडल कीथ महोदय कहते हैं कि 'विशेष ध्यान देने योग्य शब्द 'सूरिआस' है, जो इनमें सूर्य के ही अर्थ में बोला जाता है और ई० मेयर साहब ने मान लिया है कि यह 'सूरिआस' वैदिक 'सूर्या (स) ही है'। यह सूरिआस शब्द सर्वथा सूर्याः का रूप है, क्योंकि विसर्ग का उच्चारण सकार ही होता है। इसके अतिरिक्त बेबिलोनिया की एक बहुत पुरानी सूची में सिन्धु नामक बारीक मलमल का नाम आता है। बेबिलन में इस सिन्धु शब्द का कुछ भी अर्थ नहीं है। जिस प्रकार कालीकट ग्राम से जाने के कारण यूरोप में एक छींट का नाम केलिको प्रसिद्ध है, उसी प्रकार सिन्धु हैदराबाद से जाने के कारण इस वस्त्र का भी सिन्धु नाम हो गया था। यही सिन्धु वस्त्र पुरानी बाइबिल सें सेडिन (Sadin), ग्रीक में सिण्डम् (Sindam) कहा गया है और अब अंग्रेजी में साटिन (Satin) नाम से बाजारों में बिकता है<sup>१</sup>।

कहने का तात्पर्य यह कि इन वर्णनों से यह सहज ही अनुमान हो सकता है कि पूर्वातिपूर्व काल में इस देश के साथ बेबिलन का घनिष्ठ सम्बन्ध था और सिन्धु नामक वस्त्र अपने नाम के साथ वहाँ पहुँचता था। हम जिन चोलों का वर्णन पहले कर आये हैं वे दक्षिण से सागौन की लकड़ी भी अपने नवीन देशों में ले-जाया करते थे। अभी कुछ समय हुआ मुघेर के खण्डहरों से पाँच हजार वर्ष की पुरानी सागौन की लकड़ी का टुकड़ा मिला है<sup>२</sup>। बेबिलोनिया के प्रथम बादशाह की बनवाई हुई इमारत से इस टुकड़े का प्राप्त होना यह सूचित करता है कि ये निस्सन्देह भारतवासी ही हैं—आर्य ही हैं और दक्षिण के पाण्ड्य और चोल से ही वहाँ जाकर अपने वंश और अपनी सभ्यता का विस्तार किया है।

असीरिया में भी आर्यों का ही निवास था। ए० बेरिडेल कीथ ने वहाँ के सुवरदत्त, जशदत्त और सुबन्धि आदि राजाओं के नामों से सिद्ध किया है कि वे आर्य ही थे<sup>३</sup>। इन देशों के निवासियों को आर्यलोग असुर कहा करते थे, इसीलिए ये सदैव अपने नाम के साथ असुर शब्द का प्रयोग करते रहे हैं। प्रसिद्ध बादशाह असुर नासिरपाल और असुर वाणीपाल इस बात के उदाहरण हैं। इनके नाम असुर शब्द के साथ आर्यभाषा के ही हैं। हमने आरम्भ में ही कहा था कि आर्यों ने जिन गुण-दोषों के सूचित करनेवाले नामों को रखकर दुष्ट आर्यों को अपने से अलग किया था

१. More noteworthy is Sūrias, since it is explained as meaning the sun. And E. Meyer has yielded to the temptation to accept equation with the Vedic Surāyas. —Dr. Bhandarker Commemoration Essays, The Early History of Indo-Iranians by A. Berriedale Keith.
२. Dr. Bhandarker Commemoration Essays, Chaldian and Indian Veda by B. G. Tilak.
३. In the ruins of Mugheir, ancient Ure of the Chaldees, built by Uria (or Ur—Bagash), the first king of Babylonia who ruled not less than 3,000 years B. C., was found a piece of Indian teak. —Vedic India by A. Ragozin.
४. Aryan names among the princes in Syria such as Suwordatta, Jasdatta, Arzawiya, Artamanya, Rasmany, Subandhi and Sutarana....—Dr. Bhandarker Commemoration Essays, The Early History of Indo-Iranians by A. Berriedale Keith.

वे नाम उन्होंने भी स्थिर रखके थे तथा उन्हीं नामों से अपने देशों को भी प्रसिद्ध किया था, जैसे चीना से चीन, आन्ध्र से आन्ध्रालय (आस्ट्रेलिया) आदि। कहने का तात्पर्य यह कि असीरियानिवासी भी आर्य ही हैं और भारत से ही जाकर वहाँ बसे हैं।

मेसोपोटामियावाले भी आर्य हैं। इनके विषय में ए० बेरिडल कीथ ने लिखा है कि दसरथ नाम का मितानी राजा इजिप्ट के एक राजा का साला था। यह आर्य था और ई० सन् के १३००—१४०० वर्ष पूर्व राज्य करता था। इसी प्रकार मितानियों के दूसरे राजा का हरि नाम भी आर्यों का ही सिद्ध होता है<sup>१</sup>। अभी हाल में जो मेसोपोटामिया के पुराने मकानों की खुदाई से मिट्टी की पकी हुई लिखित ईंटें प्राप्त हुई हैं, उन ईंटों में मितानी और हिट्टाई राजों का सन्धिपत्र लिखा हुआ मिला है, जिसमें मित्र, वरुण, इन्द्र और नासत्य आदि वैदिक देवताओं के नाम लिखे हुए हैं<sup>२</sup>। इस घटना से यह बात पूर्णरूप से सिद्ध हो जाती है कि ये दोनों जातियाँ आर्य ही थीं, क्योंकि हिटी (Hittite) लोगों के लिए अब सिद्ध हो गया है कि वे क्षत्री थे। क्षत्री का ही अपभ्रंश ‘खत्ती’ है। जिस प्रकार पंजाब के रहनेवाले खत्री अपनी उत्पत्ति क्षत्रियों से ही बतलाते हैं, उसी प्रकार ये खत्ती भी जो इस समय हिट्टी (Hittite) लिखे जाते हैं, क्षत्री ही हैं।

इस प्रकार हमने यहाँ तक एशिया माइनर के तमाम प्राचीन देशों को देखा तो ज्ञात हुआ कि वहाँ प्राचीन काल में ही आर्यजाति जाकर बसी और उसी ने अपनी सभ्यता का वहाँ प्रचार किया है। यही थोड़ा-सा पश्चिमी एशिया में आदिकालीन आर्यों के गमन का इतिहास है।

### उत्तरी एशिया

हम आरम्भ में लिख आये हैं कि किरात लोग पतित क्षत्रिय हैं। ये दो भागों में बँट गये थे। एक दल बलूचिस्तान में जाकर बसा और दूसरा हिमालय पर जाकर बसा। हम अभी पहले दल का वर्णन कर आये हैं, अब दूसरे दल का वर्णन करते हैं। नेपाल में जितने ब्राह्मण बसते हैं, वे सब कान्यकुञ्ज हैं और जितने क्षत्रिय हैं वे सब रामचन्द्र के वंशज सूर्यवंशी हैं। कहा जाता है कि इनका सम्बन्ध महाराणा उदयपुर से है, इसलिए इनके आर्य होने में तो कोई शंका ही नहीं है, किन्तु नेपाल में एक चपटे चेहरेवाली मंगोलियन जाति भी रहती है। यह जाति अति प्राचीन काल में आर्यों की ही एक शाखा थी, परन्तु यह दीर्घातिदीर्घ काल पूर्व ही आर्यों से पृथक् होकर चीना नामक हिमालय के उत्तर ओरवाली गहराई में बस गई थी, इसलिए अब उसके आकार, रंग और भाषा आदि में बहुत अन्तर आ गया है।

बाबू उमेशचन्द्र विद्यारत्न ने लिखा है कि किरात लोग नेपाल के उत्तर-पश्चिम में बसते थे और पतित क्षत्रिय थे और हमने बतलाया है कि चीना हिमालय के नीचे उत्तर पूर्व में रहते थे और ये भी क्षत्रिय ही थे। इन्हीं दोनों के मेल से मंगोलियाजाति के पूर्वजों की उत्पत्ति हुई है। यही

१. Dasratta, the Mitani King, brother-in-law of Amenholeb of Egypt (1414—1379 B. C.). The name Harri, used of the Mitani, is really the Aryan name. —Dr. Bhandarkar Commemoration Essays, The Early History of Indo-Iranian by A. Berriedale Keith.

The obvious conclusion that the Aryan of Mitani and Syria penetrated these lands from the east..... —Ibid.

२. एशिया माइनर के बग़ज़कोई (Baghazkoi) स्थान पर हिटीशिया (Hetitia) के बादशाह सुब्बिलुलिउमा (Subbiliuma) और मितानी (Mitani-Modern Mesopotamea) के बादशाह मुट्टीवुज्जा (Muttivuza) के बीच के (ई० सन् पूर्व १४०० के) कुछ सन्धिपत्र मिले हैं, जिनमें मित्र, वरुण, इन्द्र और नासत्य आदि वैदिक देवताओं की वन्दना की गई है।

—रायल एशियाटिक सोसाइटी का सन् १९१० का जर्नल पृ० ७२१ और ४५६

नेपालनिवासी चपटे मुँहवाली जाति है। यही जति मंगोलियन विभाग की जननी है। उमेश बाबू कहते हैं कि नवीन जाति का रंग वाल्मीकि रामायण में सुवर्ण का-सा लिखा है। जिस समय की यह बात है उस समय जिस प्रकार तनिक साँवले रंगवाले श्याम और श्यामा बड़े सुन्दर समझे जाते थे, उसी प्रकार ये पीत, अर्थात् सुवर्ण के-से रंगवाले भी बहुत उत्तम समझे जाते थे। महाभारत मीमांसा में रायबहादुर चिन्तामणि विनायक वैद्य ने महाभारत के प्रमाणों से लिखा है कि कौरव-पाण्डवों की गौरवर्ण स्त्रियों का रंग तप्त सुवर्ण का-सा था। यह उस समय के रंग की विशेषता का वर्णन है। दक्षिण के गुजराती और महाराष्ट्र आदिकों का भी प्रायः यही रंग है। वे न तो सफेद हैं और न लालिमा लिये हुए ही हैं। आदिम काल में आर्यों ने तनिक साँवले और तनिक पीले रंग को ही अपने मन में उत्तम समझा था, इसीलिए माताओं के संस्कार प्रबल हुए और अधिक प्रजा इसी रंग की हो गई। हम देखते हैं कि नेपाल में बसनेवालों का भी प्रायः यही रंग है। वहाँ चपटे चेहरे और पीतवर्णवालों में कुछ ताम्रवर्ण के श्याम लोग भी पाये जाते हैं। अभी हमने जिस श्याम रंग का वर्णन किया है ये लोग उसी रुचि के परिणाम हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि ये चपटे चेहरे और पीले तथा श्याम रंगवाले मंगोलियन आर्यों से भिन्न किसी अन्य जाति के मनुष्य नहीं हैं।

नेपाल से आगे हिमालय के नीचे रूसी तुर्किस्तान है। वहाँ बहुत पूर्व काल से आर्यों का निवास है<sup>१</sup>। इसके आगे बाबू उमेशचन्द्र विद्यारत्न ने आर्यों का मूल स्थान मंगोलिया के अलताई पहाड़ पर सिद्ध करने के लिए 'मानवेर आदि जन्मभूमि' नामक ग्रन्थ लिखा है। उस ग्रन्थ के पढ़ने से अधिक तो नहीं, परन्तु इतना अवश्य भासित होता है कि पूर्वातिपूर्वकाल में आर्य लोग अलताई, अर्थात् इलावृत में रहते थे और यह अलताई शब्द इलावृत का ही अपभ्रंश है। मानवेर आदि जन्मभूमि पृष्ठ ११९ पर वायुपुराण पूर्वार्द्ध अध्याय ३४ के कुछ श्लोक उद्धृत किये गये हैं, जिनसे ऊपर की बात पुष्ट होती है। उनमें से दो श्लोक ये हैं—

वैद्यद्व्यं दक्षिणे त्रीणि वर्षाणि त्रीणि चोत्तरे ॥ ३२ ॥

तयोर्मध्ये तु विज्ञेयं मेरुमध्यमिलावृतम् ॥ ३३ ॥

तत्र देवगणाः सर्वे गन्धर्वोरगराक्षसाः । शैलराज्ये प्रमोदन्ते<sup>२</sup> शुभाश्चाप्सरसांगनाः ॥ ५५ ॥

अर्थात् इलावृतवर्ष के दक्षिण में हरिवर्ष, किम्पुरुषवर्ष और भारतवर्ष ये तीन वर्ष हैं और उत्तर की ओर रम्यकवर्ष, हिरण्यवर्ष और उत्तरकुरुवर्ष ये तीन वर्ष हैं। इनके बीच में इलावृतवर्ष है।

इस वर्णन से स्पष्ट हो जाता है कि मंगोलिया में आर्यलोगों ने ही अपना उपनिवेश बसाया था।

सिथिया देश किसी समय भारत से निकाले हुए शक नामी पतित क्षत्रियों द्वारा बसाया गया था। इन शकों के विषय में पुराणकार लिखते हैं कि—

इक्ष्वाकुशचैव नाभागो धृष्टः शर्यातिरेव च । नरिष्वन्तश्च विष्वातो नाभानेदिष्ठ एव हि ॥

करुषश्च पृष्ठधश्च वसुमान् लोकविश्रुतः । मनोर्वैवस्वतस्यैते नव पुत्राश्च धार्मिकाः ॥

—विष्णुपुराण [ ३।१। ३३-३४ ]

अर्थात् वैवस्वत मनु के इक्ष्वाकु, नाभाग, धृष्ट, शर्याति, नाभानेदिष्ठ, करुष, पृष्ठध, वसुमान्

१. It appears very probable that at the dawn of history, East Turkistan was inhabited by an Aryan population.  
—Lassen's Indische Alterthumskunde.

२. वर्तमान पाठ है—शैलराजैः प्रदृश्यन्ते ।

और नरिष्वन्त—ये नव पुत्र थे।

हरिवंश अध्याय १० श्लोक २८ में लिखा है कि—

**नरिष्वन्तः शकाः पुत्रा नाभागस्य तु भारत । अम्बरीषोऽभवत् पुत्रः पार्थिवर्षभसत्तमः ॥**

अर्थात् नरिष्वन्त के पुत्रों का ही नाम शक है। इन शकों को राजा सगर ने ‘अर्धमुण्डान् शकान्’ (विष्णुपुराण अं० ४ अ० ३ श्लोक २१), अर्थात् आधा शिर मुंडवाकर निकाल दिया था। यही लोग सिथिया (जिसको शकावस्था कहना चाहिए) में जाकर बस गये, इसलिए इनके आर्य होने में कोई सन्देह नहीं है<sup>१</sup>।

उत्तरकुरु प्रदेश साइबीरिया से लेकर आगे तक है। इसके विषय में वायुपुराण पूर्वार्द्ध अध्याय ४५ के ये श्लोक पढ़ने योग्य हैं—

**उत्तरस्य समुद्रस्य समुद्रान्ते च दक्षिणे । कुरवस्तत्र तद्वर्ष पुण्यं सिद्धनिषेवितम् ॥ ११ ॥**

**देवलोकात् च्युतास्तत्र जायन्ते मानवाः शुभाः ॥ १६ ॥**

अर्थात् उत्तर महासमुद्र के दक्षिण किनारे पर अति पवित्र उत्तरकुरुवर्ष है, जहाँ देवलोक से गये हुए उत्तम पुरुष निवास करते हैं।

यह देवलोक हिमालय के सिवा और कुछ नहीं है। आर्यलोग हिमालय से जाकर उत्तर समुद्र, अर्थात् शीतकटिबन्ध के इस पार तक और साइबीरिया के उस पार तक कुरुदेश में निवास करते थे। जिस प्रकार भारत में कुरुक्षेत्र था उसी प्रकार उतनी दूर जाने पर भी उन्होंने कुरु नाम से ही उस देश को सम्बोधित किया था। आर्यलोग सदैव ही अपने साथ अपने-अपने स्थानों के नाम ले-गये हैं। उसी प्रकार उत्तरकुरु का नाम भी कुरु शब्द से ही रखा गया है।

यहाँ तक हमने एशिया की उत्तरी सीमा को देखा तो वहाँ सर्वत्र आर्यजनता को ही भारत से जा-जाकर बसते हुए पाया, परन्तु इस उत्तरकुरु से आगे जहाँ ध्रुवप्रदेश है वहाँ आर्यलोग कभी नहीं जाते थे। वहाँ उनको यज्ञ-याग करने का सुभीता नहीं था। वहाँ महा विकट अँधेरा था और वह आसुरी भूमि आर्य स्वभाववालों के लिए अनुकूल नहीं थी। यही कारण है कि सुग्रीव ने वानरों को उत्तर की ओर भेजते समय कह दिया था कि तुम लोग उत्तरध्रुव में मत जाना। यह वैदिक आदेश था, क्योंकि वेदों में दीर्घरात्रि और उस रात्रि में पड़े हुए रोनेवालों के अलङ्कार से उपदेश दे दिया गया है कि वहाँ किसी को न जाना चाहिए, परन्तु वहाँ एक ‘*Navya Zimala*’ अर्थात् नव्य हिमालय का पता मिलता है, जिससे सूचित होता है कि कभी ईरानियों के बुजुर्गों ने वहाँ जाकर उपनिवेश बसाया था। उनकी भाषा में संस्कृत के ‘ह’ का ‘ज’ हो जाता है, इसीलिए प्रतीत होता है कि ‘नव्य जिमालय’ नाम उन्हीं ने रखा है और पुराने हिमालय के साथ मिलाया है। यदि वैदिक आर्य नाम रखते तो ‘नव्यहिमालय’ ही रखते। इस नव्यजिमालय को उर्दू ज्योग्रूफ़ी में ‘नवज़ुमला’ लिखा हुआ है। इसका वर्णन इनसाइक्लोपेडिया ब्रिटानिका में भी आया है<sup>२</sup>।

१. Their original home was in Mongolia. Seythia is only corruption from Sakavastha or ‘the abode of the Sakas on the west bank of Kasyapia (Caspean) sea.’ Hence the Northern Sakasun proceeded still more to the North-West and thus became the Saxons of Saxony.

—Reproduced from *Manavera Adi Janma Bhumi*, p. 13.

२. The original people of the farthest north of Europe are now represented by the Lapps, who lead a migratory life. Further east their place is taken by the Somoyedes, who live along the coast of the Karases and the Yalmal Peninsula. They have also a small settlement in *Navya Zemla*.

—Encyclopaedia Britannica.

आइसलैंड और ग्रीनलैंड यद्यपि यूरोप से उत्तर की ओर हैं, परन्तु वहाँ के निवासियों का सम्बन्ध आर्यों से ही है, अतः कुरु के इन पड़ोसी देशों का भी वर्णन कर देना चाहिए। इनके विषय में प्रोफेसर हीर्ट नामक विद्वान् कहता है कि आइसलैंड और ग्रीनलैंड के निवासियों की भाषा जर्मनभाषा से मिलती है, अतः अनुमान होता है कि वे भी आर्य ही हैं, हमने इन लोगों के विषय में अधिक स्वाध्याय नहीं किया। सम्भव है ये यूरोप से गये हों, परन्तु यूरोप की प्रजा स्वयं आर्यों की भाषा बोलनेवाली निग्रो-तुरानी प्रजा है, इससे अनुमान होता है कि आइसलैण्ड और ग्रीनलैण्ड भी निग्रो-तुरानी ही होंगे जो निश्चत ही पतित आर्य हैं।

यहाँ तक हमने उत्तरी एशिया से सम्बन्ध रखनेवाले उन आर्यों का वर्णन किया जिनको इस समय मंगोलिया या तुरानी टाइप के कहा जाता है, परन्तु हमारे अब तक के विवेचन से यही ज्ञात होता है कि वे आर्य ही हैं। उनकी सभ्यता, भाषा, रूप और रंग बदल जाने से अब उनको चाहे जो कुछ कहा जाए, परन्तु उनके मूल में आर्यों का ही रुधिर प्रवाहित है।

### पूर्वी एशिया

भारतवर्ष से पूर्व सबसे नज़दीक जो पहला देश है वह बर्मा है। इसको संस्कृत में ब्रह्मदेश कहते हैं। वामनपुराण में लिखा है कि तिब्बत में रहनेवाले असुरों के द्वारा सताये जाने पर पूर्व कथित कुछ पीतवर्ण आर्य ब्रह्मदेश में जाकर बस गये। ये असुर भी कोई दूसरे नहीं थे। वायुपुराण में लिखा है कि असुर आर्यों के दायाद बान्धव ही हैं<sup>१</sup>। दायाद बान्धव उन्हीं को कहते हैं जिनका पैतृक सम्पत्ति में हक्क हो। इनके विषय में महाभारत में लिखा है कि जो कुरुक्षेत्र में बसते हैं वही तिब्बत में बसते हैं<sup>२</sup>। इससे स्पष्ट हो गया कि ये आर्य ही हैं जो पतित होकर तिब्बत में गये हैं। रामायण में इनका सुवर्ण का-सा रंग लिखा है। वामनपुराण में इनका तिब्बत से ब्रह्मदेश को जाना भी पाया जाता है<sup>३</sup>। इससे ज्ञात होता है कि ये भी वही किरात नामी क्षत्रिय ही हैं जो नेपाल से लेकर तिब्बत तक बसते थे। उन्होंने ही बर्मा में जाकर अमरावती और मिथ्यला नगरी बसायी है, जो अब तक हैं। इससे स्पष्ट हो जाता है कि ये आर्य ही हैं और उक्त नगरों के बसाते समय तक इनकी भाषा संस्कृत ही थी। इतना ही नहीं, प्रत्युत बुद्धधर्मप्रचार के समय भी ये हिन्दूधर्म के अनुयायी थे, इसी से ये सबके सब बौद्ध हो गये। ब्रह्मदेश नाम से भी ज्ञात होता है कि वह वैदिक आर्यों के ही द्वारा रक्खा गया है और ब्रह्मनिवासी आर्य ही हैं।

चीनदेश के विषय में लिखा जा चुका है कि आर्यों के प्रारम्भिक काल में ही कुछ लोग पतित होकर चीना (नीचे दर्जे के) हो गये थे और हिमालय से नीचे चीना—गहराई में जा बसे थे। समस्त भाषाओं के एक ही व्याकरण के विषय में हम लिख आये हैं कि सामोपेडिक भाषा जो चीन देशान्तर्गत पैतिसी और ओब नदियों के किनारे पर बसनेवालों में बोली जाती है उसमें आर्यभाषाओं की भाँति तीन वचन और आठ विभक्तियाँ हैं। इससे पाया जाता है कि चीन में बसनेवाले मूलपुरुष आर्य ही थे। चीनीयों के विषय में टाड इण्टर साहब ने अपने राजस्थान के इतिहास, परिशिष्ट, अध्याय दूसरे में इनके वंश का वृत्तान्त लिखा है। उसका सारांश यह है कि ‘मोङल, तातार और चीनी लोग अपने को चन्द्रवंशी क्षत्रिय बतलाते हैं। इनमें से तातार के लोग अपने को ‘अय’ का वंशज कहते हैं। यह अय पुरुषवा का पुत्र आयु ही है। इस आयु के वंश ही

१. असुरा ये तदा आसन् तेषां दायादबान्धवाः।

—वायुपुराण

२. ये वसन्ति कुरुक्षेत्रे ते वसन्ति त्रिविष्टपे।

—महाभारत [वन० ८३। २०५]

३. ततोऽसुरा यथाकामं विहरन्ति त्रिविष्टपे। ब्रह्मलोके च त्रिदशाः संस्थिता दुःखकर्षिताः।

—वामनपुराण [७८। १८]

में यदु था और उसका पौत्र हय था। चीना लोग इसी हय को ह्यु कहते हैं और अपना पूर्वज मानते हैं। उक्त अय की नवीं पीढ़ी में एलखाँ के दो पुत्र हुए। उनके नाम काइयान और नगस थे। इसी नगस से नागवंश की उत्पत्ति प्रतीत होती है। चीनवालों के पास यू की उत्पत्ति इस प्रकार लिखी है कि एक तारे का समागम यू की माता के साथ हो गया। इसी से यू हुआ। यह बुद्ध और इला के समागम की-सी बात ज्ञात होती है। इस प्रकार तातारों का अय, चीनियों का यू और पौराणिकों का आयु एक ही व्यक्ति है। इन तीनों का आदिपुरुष चन्द्रमा था और ये चन्द्रवंशी क्षत्रिय हैं, यह अच्छी प्रकार सिद्ध होता है। चीनियों के आदिपुरुष के विषय में प्रसिद्ध चीनी विद्वान् यांगत्साई ने सन् १५५८ में एक ग्रन्थ लिखा था। इस ग्रन्थ को सन् १७७६ में हुया नामी विद्वान् ने फिर सम्पादित किया। उसी पुस्तक का पादरी क्लार्क ने अनुवाद किया है। उसमें लिखा है कि 'अत्यन्त प्राचीनकाल में भारत के मो०लो०ची० राज्य का आह०य० नामक राजकुमार यूनन प्रान्त में आया। इसके पुत्र का नाम ती० भोगंगे था। इसके नौ पुत्र हुए। इन्हीं के सन्तति विस्तार से समस्त चीनियों की वंश वृद्धि हुई है'। इसके अतिरिक्त चीनदेश में होम (हवन) को घोम कहते हैं। इससे प्रतीत होता है कि उनमें आर्यों का कर्मकाण्ड दीर्घकाल तक प्रचलित था। चीनवालों का भारत से इतना अधिक सम्बन्ध रहा है कि यहाँ से ब्राह्मण लोग धर्मप्रचार के लिए चीन को जाते थे और चीन-निवासी यहाँ आकर फिर से आर्यों के समाज में मिल जाते थे। हिन्दी विश्वकोश पृष्ठ ३१८ पर उपनिवेश शब्द पर लिखा है कि 'चीन देश की पुरातत्त्व आलोचना से यह सिद्ध होता है कि ई० सन् पूर्व ८वीं शताब्दी में भारतीय आर्य वणिकों ने चीन देश के बहुत-से स्थानों में अपना प्रभाव फैलाया था और बहुत-से स्थानों में उपनिवेश भी किया था', तभी तो दारुचीनी जिसे दालचीनी कहते हैं वहाँ से आती थी। दारु लकड़ी को कहते हैं, इसलिए एक विशेष प्रकार की चीन की लकड़ी को दारुचीनी कहा जाता था। यह लगभग तीन हजार वर्ष के पूर्व की बात है, परन्तु हमने चन्द्रवंश और आर्यभाषा की जो बात लिखी है वह तो उस समय की है जब सर्वप्रथम आर्यलोग चीना होकर चीन गये थे, इसलिए चीनियों के आर्य वंशज होने में तनिक भी सन्देह नहीं है।

लोग कहते हैं कि जापान में जो जाति निवास करती है वह चीन से ही जाकर वहाँ बसी है, क्योंकि दोनों की भाषा आदि में बहुत अन्तर नहीं है। यह बात ठीक है, परन्तु हमारा अन्वेषण इतना और बतलाता है कि चीन की ही भाँति जापान में भी अभी उस आर्यजाति की एक शाखा विद्यमान है, जिसकी अन्य शाखाओं से जापानियों की उत्पत्ति हुई है। उस मूलनिवासिनी जाति का नाम 'ऐन्यू' है। इसको काकेशियन विभाग के अन्तर्गत समझा जाता है<sup>१</sup>; ऐन्यू लोग अब तक प्राचीन ऋषियों के भेष से रहते हैं, अर्थात् डाढ़ी और केश नहीं निकालते, इसीलिए इनको आजकल Hairy man, अर्थात् बालवाले लोग कहा जाता है। चाहे जापानी इन काकेशियन की सन्तति हों और चाहे चीनियों की, दोनों दशाओं में वे आर्य क्षत्रिय ही हैं। जापानियों का 'बुशीडो', अर्थात् क्षात्रधर्म अब तक प्राचीन क्षत्रियपने का स्मरण दिला रहा है। ऐन्यू लोगों का विद्यमान होना, जापान की स्त्रियों में भारतीयपन का होना और पुरुषों का क्षात्रधर्म-पालन आदि बातें एक स्वर से पुकार रही हैं कि वे आर्यवंशज ही हैं।

१. Ainus.—An aberrant family of Caucasian man in the Far East. They were probably the aboriginal inhabitants of Japan, but are now few in number and confined to Yezo, the Kurile Islands, and part of Sakhalin.

—Harmsworth History of the World, p. 312.

## दक्षिणी एशिया

दक्षिणी एशिया पर कुछ लिखने से पूर्व दक्षिण भारत में बसी हुई द्रविड़ जाति की उत्पत्ति का विवरण विस्तारपूर्वक हो जाना चाहिए, क्योंकि पाश्चात्यों और उनके द्वारा शिक्षा पाये हुए कलिपय एतदेशीय विद्वानों का मत है कि भारतवर्ष के मूलनिवासी कोल और द्रविड़ ही हैं। आर्य लोग तो यहाँ कहीं बाहर से आकर बसे हैं। यहाँ के स्वामी कोल और द्रविड़ ही थे, परन्तु आर्यों ने यहाँ आकर उनको युद्धों में परास्त करके जंगलों में भगा दिया, आप राजा हो गये और मूलनिवासियों को दास, दस्यु, राक्षस, असुर और यातुधान आदि नामों से पुकारने लगे। ये विद्वान् अपने इस आरोप की पुष्टि में कहते हैं कि

१. वेदों में आर्य और दस्यु दो जातियों का वर्णन है। २. दस्युओं के श्याम वर्ण और उनकी म्लेच्छ भाषा का वर्णन है। ३. उनके साथ युद्धों का वर्णन है और ४. यहाँ के मूलनिवासी कोल, भील, संथाल, नट, कंजर और द्रविड़ों में श्यामवर्ण और अनार्यभाषा पाई भी जाती है, अतएव ये समस्त वर्णन उन्हीं के लिए हैं।

हम देखते हैं कि इन वर्णनों और अवलोकनों से उपर्युक्त आरोप को सहारा मिलता है, अतएव इस बात के जाँचने की आवश्यकता है कि यह आरोप और ये प्रमाण परस्पर कितने सहायक हैं। सबसे पहले हम देखना चाहते हैं कि

१. आर्यों के बाहर से आने और उनके पूर्व यहाँ के मूलनिवासियों के विषय में क्या-क्या प्रमाण हैं। २. दस्युओं के रूप-रंग, भाषा और युद्धों का वेदों में क्या उल्लेख है और ३. मूलनिवासियों की मौलिकता का क्या रहस्य है। इन तीन ही वाक्यों में समस्त जिज्ञासा भरी हुई है। इन सबमें पहला प्रश्न यह है कि क्या आर्यलोग बाहर से आये?

इस प्रश्न के उत्तर के लिए आर्यजाति का साहित्य ही आदरणीय हो सकता है, क्योंकि यह बात सर्वमान्य हो चुकी है कि आर्यों के वैदिक साहित्य (वेद) से पुराना साहित्य आर्यों की किसी शाखा के पास नहीं है, अतः हम सबसे प्रथम यही देखना चाहते हैं कि आर्यों ने अपने साहित्य में भारत आगमन के विषय में स्वयं क्या लिख रखा है। आर्यों ने अपने इतिहास में कहीं नहीं लिखा है कि वे कहीं बाहर से आये। आर्यों को विदेशी सिद्ध करनेवाले विद्वानों में मिं० मूर प्रसिद्ध हैं। आप आर्यसाहित्य को दीर्घकाल तक उलटने-पलटने के पश्चात् हताश होकर लिखते हैं कि 'जहाँ तक मुझे ज्ञात है संस्कृत की किसी पुस्तक से अथवा किसी प्राचीन पुस्तक के अवतरण से यह बात सिद्ध नहीं होती कि भारतवासी किसी अन्य देश से आये'।

आर्यों के साहित्य से न सही मूलनिवासियों की ही किसी कथा से यह बात सिद्ध होती कि आर्यलोग कहीं बाहर से आये और हमको जंगलों में निकाल दिया, परन्तु यह बात भी अब तक किसी ने नहीं ढूँढ़ निकाली। इसके अतिरिक्त यदि आर्यों के पहले कोल और द्रविड़ यहाँ के मूलनिवासी होते तो उनकी भाषा में इस देश का कुछ नाम अवश्य होता, परन्तु अनार्यों की भाषा में आर्यवर्त और भारतवर्ष नाम के पहले का कोई भी नाम नहीं मिलता। इससे तो यह बात बिलकुल ही उड़ जाती है कि यहाँ आर्यों के पूर्व कोल और द्रविड़ रहा करते थे। कुछ समय से पढ़े-लिखे द्रविड़ों ने अपना कुछ इतिहास लिखना शुरू किया है, परन्तु उन्होंने अपना इतिहास किन्हीं अनार्य नामों से आरम्भ न करके अगस्त्य और कण्व आदि ऋषियों के चरित्रों से ही

१. That so far as I know, none of the Sanskrit books, not even the most ancient, contain any distinct reference or allusion to the foreign origin of the Indians.

आरम्भ किया है। अगस्त्य और कण्व निस्सन्देह आर्य नाम हैं। इतिहास के मूल में इन नामों के होने से यह बात बिलकुल स्पष्ट हो जाती है द्रविड़ों के पूर्व भी यहाँ आर्य ही निवास करते थे। इस विषय पर एक द्रविड़ पण्डित मद्रास प्रान्त से लिखते हैं कि द्रविड़ों की भाषा, रूप, विश्वास, धर्म और इतिहास से मुझे पूर्ण सन्तोष हो गया है कि वे लगभग ५०० वर्ष ईस्वी सन् पूर्व पश्चिमी एशिया के समुद्र पार से यहाँ आये। यह एक पढ़े-लिखे द्रविड़जाति के आधुनिक विद्वान् की सम्मति है। सभी जानते हैं कि बुद्ध भगवान् के जन्म का संवत् ईस्वी सन् के पूर्व छठी शताब्दी है। उस समय से हजारों वर्ष पूर्व तक आर्यों के यहाँ बसने का प्रमाण मिलता है, परन्तु उपर्युक्त द्रविड़ विद्वान् ने स्पष्ट ही कह दिया है कि द्रविड़ लोग ईस्वी सन् से ५०० वर्ष पूर्व बाहर से आये। ऐसी दशा में द्रविड़ों के मत से भी आर्यलोग द्रविड़ों से पूर्व यहाँ बसे हुए पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त आर्यों की किसी भिन्न शाखा ने भी स्वीकार नहीं किया कि वैदिक आर्य हमसे पृथक् होकर भारत को गये। कहने का तात्पर्य यह कि संसार में इस प्रकार का कोई इतिहास उपलब्ध नहीं है, जिसमें लिखा हो या कहा जाता हो कि आर्यलोग भारत में कहीं बाहर से आये। इसके विरुद्ध वैदिक आर्यों ने अपने प्राचीनतम इतिहास में लिख रखा है कि ब्रह्मावर्त के जंगलों को काटकर सबसे प्रथम हमने ही बसती की है।

द्वितीय खण्ड में हम लिख आये हैं कि आर्यों की उत्पत्ति हिमालय के 'मानस' स्थान पर हुई। बहुत दिन तक आर्य लोग हिमालय पर ही रहे। सन्ततिविस्तार के कारण उन्होंने हिमालय से नीचे उत्तरकर भूमि तलाश की। जिस रास्ते से वे आये उस रास्ते का नाम उन्होंने हरद्वार (हर=हिमालय और द्वार=दरवाजा), अर्थात् हिमालय का दरवाजा रखा। यहाँ आकर वे कुछ दिन तो रहे, परन्तु जंगली जल-वायु के कारण सब रोगी हो गये और फिर अपने पूर्वनिवास हिमालय को छले गये, परन्तु कुछ समय बाद वे फिर यहाँ आये। अब की बार उन्होंने यहाँ के जंगलों को काटकर देश को बसने योग्य बनाया और हरद्वार, कुरुक्षेत्र, अर्थात् सरस्वती नदी से लेकर पूर्व की गण्डकी नदी (जिसको सदानीरा और दृष्टद्वती कहते हैं) तक जंगलों को जलाकर बसावट की और इस बसी हुई भूमि का नाम ब्रह्मावर्त रखा<sup>१</sup>। इसके आगे के देश का नाम विदेह हुआ जिसका अर्थ शरीरशून्य, अर्थात् निर्जन है<sup>२</sup>। इस इतिहास से ज्ञात होता है कि इसके पूर्व यहाँ कोई भी निवास नहीं करता था। यदि बसावट होती तो जंगल न जलाने पड़ते और देशों का नाम विदेह न रखना पड़ता। जिन दस्युओं को मूलनिवासी कहा जाता है, वे युद्ध करना जानते थे, उनके बड़े-बड़े नगर थे, क्योंकि 'असुरः पुरो प्रकुर्वीत' शतपथ में लिखा हुआ है। वे व्यापारी थे और जहाज चलाना भी जानते थे। ऐसे लोगों ने जंगलों में ही निवास रखा हो यह युक्तियुक्त प्रतीत नहीं होता, क्योंकि कोल-भील तो जंगल काटने में अब तक बड़े प्रबल होते हैं, परन्तु आर्यों के उपर्युक्त वर्णन से पाया जाता है कि आर्यों के पूर्व यहाँ बसने योग्य स्थान ही न था। इस प्रकार न तो यहाँ आर्यों के पूर्व किसी के बसने का पता मिलता है और न यहाँ कोई

१. दोषं मत्वा पूर्वनिवासं हिमवन्तं जग्मुः।

—चरकसंहिता

२. तर्हि विदेधो माथव आस। सरस्वत्या ४४ स तत एव प्राङ् दहन भीयायेमां पृथिवीं तं गोतमश्च राहूगणो विदेधश्च माथवः पश्चाद्दहन्तमन्वीयतुः। स इमाः सर्वा नदीरतिददाह, सदानीरेत्युत्तराद् गिरेनिर्धावति ता ४४ हैव नातिददाह। ताऽथ स्म तां पुरा ब्राह्मणा न तरन्त्यनतिदग्धाग्निना वैश्वानरेणेति।

—शतपथब्राह्मण १।४।१।१४

३. सरस्वतीदृष्टद्वत्योर्देवान्योर्यदन्तरम्। तं देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्तं प्रचक्षते ॥

—मनुस्मृति [ २।१७ ]

४. एतर्हि कोसलविदेहानां मर्यादा ।

—शतपथ १।४।१।१७

पराजित या विजित ही था। पाश्चात्य विद्वानों की इस ऊलजलूल श्वरी का तीव्र प्रतिवाद करते हुए प्रसिद्ध विद्वान् नैसफील्ड साहब लिखते हैं कि 'भारतीयों में आर्यविजेता और मूलनिवासी जैसे कोई विभाग नहीं हैं। ये विभाग बिलकुल आधुनिक हैं। यहाँ तो समस्त भारतीय जातियों में अत्यन्त एकता है। ब्राह्मणों से लेकर सड़क झाड़नेवाले भंगियों तक का रूप, रंग और रक्त एकसमान ही है'।

हमने यहाँ तक यह दिखलाने का यत्न किया कि इस देश में न तो आर्यों के पूर्व कोई मूलनिवासी नाम के कोल, द्रविड़ आदि ही रहते थे और न आर्यों के साहित्य से आर्यों का बाहर से आना ही सिद्ध होता है। इसी प्रकार न मूलनिवासियों की किसी कथा या नाम से ही सिद्ध होता है कि आर्य बाहर से आये और कोल, भील, द्रविड़ यहाँ के मूलनिवासी थे और न इस बात को आर्यों की किसी अन्य शाखा ने ही स्वीकार किया है कि हमारा एक दल भारत को गया। जब यह हाल है तब फिर नहीं मालूम होता कि संसारभर के प्रमाणों के विरुद्ध किस आधार से कहा जाता है कि आर्यलोग कहीं बाहर से आये और यहाँ के मूलनिवासी कोल और द्रविड़ ही हैं, इसलिए पाश्चात्यों का यह आरोप कि आर्यलोग बाहर से आये, सर्वथा निराधार है। इसी प्रकार यह भी निराधार है कि आर्यों के पूर्व यहाँ कोल और द्रविड़ रहते थे। इसके बाद अब हम इस प्रश्न का उत्तर ढूँढ़ते हैं कि दस्युओं के रूप, रंग, भाषा और युद्धों का वेदों में क्या उल्लेख है?

एक व्यक्ति ने प्यार करते-करते बच्चे को कहा कि यह बड़ा शैतान है। इस बात पर पास बैठे हुए उसके दोस्त ने कहा कि जी हाँ, इसका वर्णन तो बाइबिल और कुरान में भी आया है। जो बात इस विनोद में दिखलाई पड़ती है ठीक वही बात वेदों में दस्यु आदि शब्द देखकर कोल-भीलों के लिए बताई जाती है, किन्तु वेदों को ध्यान से पढ़नेवाले इस बात से इनकार करते हैं। वेदों में आये हुए दस्यु आदि शब्दों पर मिस्टर मूर लिखते हैं कि 'मैंने ऋग्वेद के दस्यु या असुर आदि नामों को इसलिए पढ़ा कि वे अनार्यों' के हैं या मूलनिवासियों के, परन्तु मुझे कोई भी नाम न मिला जो इस प्रकार का हो<sup>२</sup>। इसी प्रकार प्रो० मैक्समूलर कहते हैं कि दस्यु का अर्थ केवल शत्रु है<sup>३</sup>। ए० रागोजिन कहते हैं कि दस्यु का अर्थ केवल लोग है और ईरानियों की अवस्था पुस्तक में उनका दह्यु शब्द इसी अर्थ में आया है<sup>४</sup>। जन्दावस्था के इस प्रमाण से रागोजिन ने सिद्ध कर दिया कि ईरानी लोग अपने ईरानी लोगों को ही दह्यु, अर्थात् दस्यु कहते थे। मैक्समूलर ने स्पष्ट कर दिया कि दस्यु दुश्मन को कहते हैं। तात्पर्य यह हुआ कि चाहे अपनी जाति का हो अथवा दूसरी जाति का, जो द्वेष करने योग्य है, वही दस्यु है। यदि ऐसा न होता तो ईरानी लोग अपनी ही

२. There is no division of the people as the Aryan conquerors of India and the aborigines of the country, that division is *modern* and that there is essential unity of the Indian races. The great majority of Brahmins are not of lighter complexion or of finer or better red features than any other caste, or distinct in race and blood from the scavengers who swept the road.

—*Brief View of the Caste System of the North-West Provinces and Oudh*, p. 271.

३. I have gone over the names of the Dasyus or Asuras mentioned in the Rigveda with the view of discovering whether any of them could be regarded as of non-Aryan or indigenous origin, but I have not observed any that appear to be of this character. —*Original Sanskrit Texts*, Vol. II, p. 387.

४. Dasyu simply means enemy. —*Last Results of the Turanian Research*, p. 344.

५. Dasyu meaning simply people, a meaning which the word under the Iranian form 'Dahyu' retain all through the Awastha and Akhaeminian inscription. —*Vedic India*, p. 113.

दह्यु शब्द दस्यु का अपभ्रंश है, क्योंकि संस्कृत का 'स' ज़ोंदभाषा में 'ह' हो जाता है, जैसे सप्त का हप्त और मास का माह आदि।

जाति को दह्यु न कहते, क्योंकि उनके यहाँ तो कोई श्याम वर्ण और भिन्न भाषाभाषी था ही नहीं।

भाषा के विषय में जो वर्णन वेद में आये हैं वे भी मूलनिवासियों की भाषा के लिए नहीं हैं। वेदों में आये हुए 'मृध्रवाचा' आदि शब्द जिनको अनार्यों की भाषा कहा जाता है, जाँच से सिद्ध नहीं होते कि वे अनार्यों की भाषा के लिए आये हैं। मिस्टर मूर कहते हैं कि 'मृध्रवाचा' से अनार्यों की भाषा किसी प्रकार भी सिद्ध नहीं होती<sup>१</sup>। इसी प्रकार श्याम वर्ण का वर्णन भी अनार्यों की त्वचा के लिए नहीं आया। प्रो० रॉय अपने कोष में लिखते हैं कि कृष्णगर्भा और कृष्णयोनि आदि शब्द कृष्ण मेघ के लिए आये हैं, जो काला ढक्कन है। यही अभिप्राय ए० मारेनीरने के लेख का भी है<sup>२</sup>। बाबू अविनाशचन्द्र दास कहते हैं कि जिस प्रकार एक अंग्रेज किसी डाकू अंग्रेज को 'ब्लैक गार्ड' कहता है उसी प्रकार श्याम चर्म का वर्णन, जो आर्यों ने अपने एक दल के लिए किया है, वह उपमा काले बादलों से ही आई है, जिसे वे वृत्र की खाल कहते हैं<sup>३</sup>।

इस छानबीन से यह पता लग गया कि वेदों में आये हुए कृष्णयोनी और मृध्रवाचा आदि शब्द मूलनिवासियों के लिए प्रयुक्त नहीं हुए। उलटा यह सिद्ध हो रहा है कि वेदों में श्याम त्वचा, मृध्रवाचा और दस्यु आदि शब्द बादलों के लिए प्रयुक्त हुए हैं और युद्धों के वर्णन इन्द्र और वृत्र के हैं जो वास्तव में विद्युत्, सूर्य तथा मेघों के अतिरिक्त और कुछ नहीं हैं। यहाँ दस्यु और वृत्र आदि शब्दों पर विचार कर लेने से ही यह सारी उलझन सुलझ जाएगी। वेद के पढ़नेवाले जानते हैं कि वेदों में इन्द्र और वृत्र का वर्णन बहुत आता है। यह वर्णन युद्ध के रूप में भी आता है। हम चाहते हैं कि यहाँ वेदों के थोड़े-से वे वाक्य, जिनमें इन्द्र, वृत्र, दस्यु, मृध्रवाचा, कृष्णयोनि आदि शब्दों की व्याख्या की गई है, लिख दें जिससे स्पष्ट हो जाए कि यह सब वर्णन पृथिवी पर का नहीं है। ऋग्वेद में एक सूक्त केवल इसलिए आता है जिससे इन्द्र का वास्तविक स्वरूप समझ में आ जाए। इस सूक्त का नाम 'स जना स इन्द्रः' है। इसके आवश्यक अंश इस प्रकार हैं—

यो जात एव प्रथमः । यः पृथिवीं व्यथमानामदृंहद् । पर्वतान्प्रकुपिताँ अरण्णात् । यो अन्तरिक्षं विममे । यो द्यामस्तभात् । यो हत्वाहिमरिणात् सप्तसिन्धून् । यो अश्मनोरन्तरगिनं जजान् । यो दासं वर्णमधरं गुहाकः । यस्याश्वासः प्रदिशि । यः सूर्यं य उषसं जजान् । यो अपां नेता । यो विश्वस्य प्रतिमानं बभूव । यो दस्योर्हन्ता । यः शम्बरं पर्वतेषु क्षियन्तम् । यो अहिं जघान । यः सप्तरश्मिर्वृषभस्तुविष्मान् । यो वज्रहस्ता...स जनास इन्द्रः ।

—ऋ० २ । १२

अर्थात् जो सबसे प्रथम उत्पन्न हुआ, जो पृथिवी को कम्पायमान करता है, जो पर्वतों, अर्थात् बादलों को कुपित करता है, जो अन्तरिक्ष में है, जो द्यौं को रोके हुए हैं, जो बादलों को मारकर सातों किरणों को मुक्त करता है, जो बादलों में अग्नि उत्पन्न करता है, जो बादलों को नीचे गिराता है, जिसकी किरणें सब दिशाओं में फैली हैं, जो सूर्य और ऊषा को उत्पन्न करता है, जो जलों का नेता है, जो संसार का पैमाना है, जो दस्युओं—बादलों—का मारनेवाला है, जो शंबर को—पर्वतों—बादलों को छिन्न-भिन्न करता है, जो बादलों को मारता है और जो वज्रहस्त है, उसे हे मनुष्यो ! इन्द्र समझो ।

१. In any case, the sense of the word मृध्रवाचा is too uncertain to admit of our referring it with confidence to any peculiarity in the speech of the aborigines. —Original Sanskrit Texts, p. 378.

२. Etude Sur I' Idiome Deo Vedas, p. 154.

३. Just as an Englishman would call an English robber or swindler a black guard, the analogy of the 'black skin' was possibly drawn by the Rigvedic Aryan from the colour of clouds which was regarded as the body demon, Vritra. —Rigvedic India, p. 123.

अब विचार करके देखना चाहिए कि क्या यह उपर्युक्त इन्द्र कोई पृथिवी का देहधारी राजा है या आकाशीय सर्वप्रधान शक्ति है। यदि यह आकाशीय शक्ति हैं तो फिर यह आकाशीय पदार्थों को ही मारता है और उन्हीं के साथ युद्ध करता है। ऊपर के पर्वत, अहि, दास, दस्यु, शम्बर आदि सब शब्द आकाश के ही पदार्थ हैं। निघण्टु में ये सब नाम बादलों के लिए ही आये हैं। इन्द्र के लिए ही वेद में और भी वर्णन देखने योग्य हैं। एक स्थान पर लिखा है कि—

**अयमिन्द्रो मरुत्सखा वि वृत्रस्याभिनच्छिरः । वज्रेण शतपर्वणा ॥**

**वावृधानो मरुत्सखेन्द्रो वि वृत्रमैरयत् । सृजन्त्समुद्रिया अपः ॥** —ऋ० ८ । ७६ । २-३

अर्थात् इस इन्द्र ने वज्र से मरुत् के सिर के सौ टुकड़े कर दिये। हे मरुत् के सखा इन्द्र! वृत्र को मारकर समुद्र के जलों को उत्पन्न कीजिए।

यहाँ स्पष्ट हो गया कि इन्द्र मरुतों, अर्थात् हवाओं का सखा है जो बादलों को मारकर समुद्र बनाता है। ऋग्वेद ८ । २५ । ४ में स्पष्ट कह दिया है कि 'महान्ता मित्रावरुणा सप्त्राजा देवावसुरा' अर्थात् मित्र और वरुण दोनों देवों और असुरों के राजा हैं। मित्र सूर्य है और सभी जानते हैं कि वरुण जल का स्वामी है। सूर्य देवों का राजा और वरुण असुरों का राजा है। ऐसी दशा में यह वरुण बादलों के सिवा और क्या हो सकता है? ऋग्वेद में स्पष्ट लिखा है कि—

**इन्द्रो मध्यर्मघवा वृत्रहा भुवत् ।**

—ऋ० १० । २३ । २

**वृत्रहणं पुरन्दरम् ।**

—ऋ० ६ । १६ । १४

**यो दस्योर्हन्ता स जना स इन्द्रः ।**

ऋ० २ । १२ । १०

अर्थात् इन्द्र ही मघवा वृत्र को मारनेवाला हुआ। वृत्र को मारनेवाला ही पुरन्दर है और जो दस्यु को मारनेवाला है, वही इन्द्र है।

यहाँ वृत्र और दस्यु शब्द एक ही पदार्थ के वाचक हैं। इन्द्र और दस्यु शब्द पर मैक्समूलर कहते हैं कि 'तब इन्द्र की स्तुति की जाती है, क्योंकि उसने दस्युओं का नाश किया और आर्य-रङ्गों की रक्षा की'। हम पहले ही लिख आये हैं कि मैक्समूलर दस्यु को शत्रु कहते हैं और मिस्टर मूर कहते हैं कि वेदों में अनेक प्रमाण हैं, जिनमें वृत्र को शत्रु कहा गया है<sup>१</sup>। इससे ज्ञात हुआ कि वृत्र और दस्यु एक ही पदार्थ हैं। दस्यु शब्द की निरुक्ति करते हुए यास्क कहते हैं कि 'दस्युर्दस्यते: क्षयार्थादुपदस्यन्त्यस्मिन् रसा उपदासयति कर्माणि'<sup>२</sup>, अर्थात् दस्यु शब्द क्षयार्थक 'दस' धातु से बना है, अतः जो रसों का क्षय करता है और यज्ञों को नष्ट करता है, वही दस्यु है। संसार के सब रस खिंचकर बादलों में ही जाते हैं, इसलिए सच्चे दस्यु बादल ही हैं। इसी प्रकार वृत्रों की निरुक्ति में यास्काचार्य कहते हैं कि 'तत्को वृत्रः ? मेघ इति नैरुक्ता:'<sup>३</sup>, अर्थात् वृत्र कौन है? उत्तर देते हैं कि नैरुक्तों के मत से मेघ ही वृत्र हैं, इसीलिए ऋग्वेद में आया है कि 'इन्द्रो यो दस्यूर्धराँ अवातिरन्'<sup>४</sup>, अर्थात् जो इन्द्र दस्युओं को नीचे गिराता है। अर्थ स्पष्ट हो गया कि इन्द्र, अर्थात् विद्युत् या सूर्य ताड़न के द्वारा बादलों को भगा देता है तथा बादल ही कृष्णयोनि हैं और वही मृध्ववाचा हैं।

१. When Indra is praised because he destroyed the Dasyus and protected the Aryan Colour.

—Last Results of the Turanian Research, p. 344.

२. And yet there are many passages in which, the word, Vritra, has the signification of enemy in general.

—Muir's Original Sanskrit Texts, Vol. II, p. 389.

३. निरुक्त ७ । ६ । २३

४. निरुक्त २ । ५ । १७

५. ऋ० १ । १०१ । ५

ऋग्वेद २।२०।७ में लिखा है कि 'स वृत्रहेन्द्रः कृष्णयोनीः', अर्थात् वृत्र ही निश्चयपूर्वक कृष्णयोनि हैं और 'दनो विश इन्द्र मृध्वाचः' (ऋ० १।१७४।२), अर्थात् इन्द्र ही वृत्र में घुसकर मृध्वाचा बोलता है। तात्पर्य यह कि काले बादल कृष्णयोनि हैं और बादलों में विद्युत् की गड़गड़ाहट ही मृध्वाचा है।

वेदों में आया हुआ इन्द्र और वृत्र का अलङ्कार ही देव और असुर तथा आर्य और दस्यु के संग्राम के नाम से प्रसिद्ध है। आर्यों का विश्वास है कि उन्होंने संसार में जितने पदार्थों का ज्ञान प्राप्त किया है उनका नाम वेदशब्दों से ही रक्खा है। प्रकाश के विरुद्ध आनेवाले बादलों को जिस प्रकार वेद ने दस्यु कहा है उसी प्रकार श्रेष्ठ आर्यों से विरोध करनेवालों को भी दस्यु कहा है, इसीलिए आर्यों ने वेदों से नामकरण की यह सच्ची कुंजी पाकर अपनी जाति को दो भागों में बाँट दिया, क्योंकि ऋग्वेद में लिखा है कि 'विजानीह्यार्यन् ये च दस्यवः', अर्थात् आर्य और दस्यु को अलग-अलग जानो। दस्यु का लक्षण करते हुए वेद ने बताया है कि—

अन्यद्रत्तमानुषमयज्वानमदेवयुम् ।

—ऋ० ८।७०।११

अकर्मा दस्युरभि नो अमन्तुरन्यव्रतो अमानुषः ।

—ऋ० १०।२२।८

अर्थात् कर्महीन—यज्ञहीन, अविचारी—अनीश्वरवादी अमानुषों को दस्यु समझना चाहिए। इनके विरुद्ध आर्य का लक्षण करते हुए निरुक्तकार कहते हैं कि 'आर्य ईश्वरपुत्रः', अर्थात् आर्य परमेश्वर के पुत्र हैं। तात्पर्य यह कि जैसे बादल सूर्य के प्रकाश को रोककर अन्धकार फैलाते हैं वैसे ही अनार्य—दस्यु भी आर्यों के श्रेष्ठ कर्मों में विज्ञ करते हैं और जिस प्रकार सूर्य अपनी प्रखर किरणों से बादलों को नष्ट करते हैं वैसे ही आर्य भी दुष्टों का दमन करते हैं, इसीलिए आर्य ईश्वरपुत्र कहलाते हैं। वेद की इस अलंकृत शिक्षा के द्वारा प्राचीन आर्यों ने अपनी जाति के भीतर ही दुष्ट स्वभाव के मनुष्यों को अनार्य कहा है—दस्यु कहा है और उत्तम स्वभाववालों को आर्य कहा है।

वेदों में इतिहास माननेवाले भी स्वीकार करते हैं कि सुदास, दिवोदास और त्रिसदस्यु आदि राजा आर्य ही थे। पारसी भी अपने गोल में ही दह्यु की कल्पना करते थे, अतः इसका यह अर्थ नहीं है कि दस्यु कोई दूसरी जाति थी। वेदों में किसी जाति का दस्यु नाम से वर्णन नहीं है, न आर्यों के पूर्व किसी मूलनिवासिनी जाति का पता मिलता है, इसलिए दूसरा प्रश्न भी निराधार ही सिद्ध होता है। इतना वर्णन कर चुकने के बाद अब आगे तीसरे प्रधान प्रश्न पर विचार करते हैं कि मूलनिवासियों की मौलिकता का क्या रहस्य है?

जब से यह बात सिद्ध हो गई है कि द्रविड़ लोग बाहर से आकर आबाद हुए हैं और उनकी आबादी का समय बहुत ही न्यून है तब से पाश्चात्यों ने मूलनिवासियों के दो विभाग कर दिये हैं। इन दोनों विभागों में एक का नाम कोलारियन विभाग है और दूसरे का द्रविड़ियन। कोलारियन विभाग को द्रविड़ियन विभाग से पृथक् मानते हुए भी दोनों को न तो वे लोग स्पष्ट रीति से पृथक् करते हैं और न एक में मिलाते हैं। कुछ समय पूर्व वे दोनों दलों को एक ही मानते थे और दोनों को मूलनिवासी, अर्थात् 'एबॉरिजिनीज़' कहते थे, परन्तु अब मूलनिवासियों के दो विभाग मानते हैं। हम यहाँ देखना चाहते हैं कि क्या कोलारियन और द्रविड़ियन एक ही दल के हैं या पृथक्-पृथक्। साथ ही यह भी देखना चाहते हैं कि इन दोनों दलों की वास्तविकता क्या है।

मिस्टर हॉजसन, कर्नल डालटन और मिस्टर क्लाडवेल आदि विद्वानों ने द्रविड़ों और कोलों की भाषा, रूप-रंग और उनकी जातिविभाग के विषय में बड़ी खोजें की हैं, बड़े-बड़े ग्रन्थ लिखे हैं और उनमें अपना मत प्रकट किया है। यहाँ हम मिस्टर क्लाडवेल के ग्रन्थ से इस

विषय के प्रमाण उपस्थित करते हैं कि द्रविड़ और कोल एक ही जाति की दो सभ्य-असभ्य शाखाएँ हैं। मिस्टर क्लाडवेल कहते हैं कि द्रविड़ भाषाओं के १२ विभाग हैं—

परिमार्जित विभाग	अपरिमार्जित विभाग
१. तामिल	१. तूदा
२. मलयालम	२. कोटा
३. तेलुगू	३. गोंड
४. कनाडी	४. खोंड या कू
५. तूलू	५. उराँव
६. कुडग (कुर्ग)	६. राजमहाल

- |                 |               |
|-----------------|---------------|
| १. तामिल        | १. तूदा       |
| २. मलयालम       | २. कोटा       |
| ३. तेलुगू       | ३. गोंड       |
| ४. कनाडी        | ४. खोंड या कू |
| ५. तूलू         | ५. उराँव      |
| ६. कुडग (कुर्ग) | ६. राजमहाल    |

तूदा, कोटा, गोंड और कू आदि भाषाएँ यद्यपि असभ्य और असंस्कृत हैं तथापि निस्सन्देह तामिल, कनाडी और तेलुगू के समान द्रविड़ियन हैं। उसी क्रम में राजमहाल और उराँव भाषाओं को रखने में मुझे संकोच होता है, क्योंकि उनमें कोलभाषा की बहुत-सी धातुएँ मिली हैं, तो भी मैं उनको द्रविड़ियन विभाग में रखता हूँ।

उराँव भाषा के लिए मिस्टर हॉज़सन का विचार है कि वह द्रविड़ और कोलभाषा के बीच की कड़ी है<sup>२</sup>। कर्नल डालटन इससे भी आगे बढ़कर कहते हैं कि 'द्रविड़ तत्त्व बंगाल' के निवासियों तक फैला हुआ है<sup>३</sup>। इन वर्णनों से यहाँ यह स्पष्ट हो गया कि कोल, भील और बंगाल के संथालों से लेकर दक्षिण के समस्त द्रविड़ एक ही जाति के लोग हैं और एक ही मूलभाषा की शाखाओं को बोलते हैं। यही नहीं, प्रत्युत विद्वानों की खोज से यह भी सिद्ध हो गया है कि यहाँ के कोलों और द्रविड़ों से लेकर लंका, मेडेगास्कर, अफ्रीका और आस्ट्रेलिया तक जितने लोग इथिओपिक विभाग के हैं, वे सब एक ही भाषा बोलते हैं और सब एक ही जाति के हैं<sup>४</sup>।

- 
१. The idioms which I designated as Dravidian are twelve in number exclusive of the Brahvi. They are as follows—

Cultivated Dialects	Uncultivated Dialects
1. Tamil	1. Tuda
2. Malyalam	2. Kota
3. Telgu	3. Gond
4. Canarese	4. Khond or ku
5. Tulu	5. Oraon
6. Kudagin (Coorg)	6. Rajmahal

Tuda, Kota, Gond and Ku, though rude and uncultivated, are undoubtedly to be regarded as essentially Dravidian dialects equally with the Tamil, the Canarese and Telugu. I feel some hesitation in placing in the same category the Rajmahal and the Oraon, seeing that they appear to contain so large an admixture of roots and tongues, probably the Kolarian. I venture, however, to classify them as in the main Dravidian.

—Comparative Grammar of Dravidian Languages

२. The Oraon was considered by Mr. Hodgson as a connecting link between the Kol dialects and distinctively Tamilian family. —Comparative Grammar of Dravidian Languages, p. 49
३. Colonel Dalton carries the Dravidian element still further than I have ventured to do. He says (Ethnology of Bengal, p. 243) the Dravidian element enters more largely into the composition of the population of Bengal than in general, supposed. —Ibid, p. 41
४. Whilst the base of this pronoun seems to be closely allied to the corresponding pronoun in Tibetan and in the Indo-Chinese family generally, the manner in which it is pluralised in the Australian dialects bears a marked resemblance to the Dravidian and especially to Telugu. —Ibid, p. 78

Some resemblance may be treated between the Dravidian languages and the Bārnū or rather

इथिओपिक विभाग की पहिचान श्याम रंग, घुँघराले बाल, चौड़ी खोपड़ी और तंग जबड़ा हैं। यह विभाग उक्त समस्त विभागों को एक में जोड़ता है।

ऊपर के वर्णन में यह स्पष्ट दिखलाई पड़ता है कि कोल और द्रविड़ों की कड़ियाँ जुड़ी हुई हैं। मध्यप्रान्त का गेजेटियर भी इसी परिणाम पर पहुँचा है। यही नहीं, प्रत्युत भारतवर्ष का प्राचीनतम इतिहास भी यही कहता है कि आन्ध्र, द्रविड़, शबर और किरात आदि सब एक ही हैं। हम यहाँ मिस्टर क्लाडवेल की एक खोज लिखते हैं। वे कहते हैं कि 'ऊपर कही हुई द्रविड़ भाषाओं की सूची में मैंने मुण्डा, हो, कोल और शबर भाषाओं को नहीं रखा, जो कोलारियन भाषाएँ हैं' १। क्लाडवेल शबरजाति को कोलारियन विभाग में गिनते हैं। अब हम दिखलाना चाहते हैं कि द्रविड़ और शबर एक ही जाति के हैं।

कोलों और द्रविड़ों को एक ही समुदाय के बतानेवाले और दोनों की मौलिकता का पता देनेवाले प्रमाण आर्यजाति के प्राचीनतम ग्रन्थों में सुरक्षित हैं। हम ऐतरेयब्राह्मण के प्रमाण से लिख आये हैं कि विश्वमामित्र आर्यराजा और ऋषि थे। उनके एक सौ पुत्र (शिष्य) थे। उनमें पचास लड़के दुष्ट हो गये और प्रजा को दुःख देने लगे। विश्वमित्र ने उनको आर्यसमाज से निकाल दिया। वही सब आन्ध्र, पुण्ड्र, शबर, पुलिन्द आदि हो गये और दस्यु कहलाने लगे २। मनुस्मृति में लिखा है कि ब्राह्मणों के न मिलने से वृषल हुई क्षत्रियजाति बाहर निकाल दी गई जो औण्ड्र, पौण्ड्र, द्रविड़, कम्बोज, यवन, शक, पारद, पह्लव, चीन, किरात, दरद और खश नाम से प्रसिद्ध हो गई ३। ये दोनों ऐतिहासिक प्रमाण किसी सामान्य गन्थ के नहीं हैं, प्रत्युत ऐतरेयब्राह्मण और मनुस्मृति के हैं जिनकी प्रामाणिकता के विषय में किसी को इनकार नहीं हो सकता। इनमें आये हुए नामों में से आन्ध्र, शबर, द्रविड़ और किरात शब्द विशेष ध्यान देने योग्य हैं ४। आन्ध्र और द्रविड़, द्रवीड़ियन विभाग के हैं और शबर तथा किरात कोलारियन विभाग के हैं। ये दोनों विभाग क्षत्रियजाति से उत्पन्न कहे गये हैं। क्षत्रियजाति निस्सन्देह आर्य ही है, इसलिए अब हमारा प्रबलतापूर्वक दावा है कि कोल और द्रविड़ दोनों एक ही आर्यजाति की शाखाएँ हैं और आर्यावर्त में ही आर्यों से उत्पन्न हुई हैं।

the Kanari, one of languages spoken in the Bārnū country in Central Africa. —*Ibid.* p. 80

Even this, however, as has been shown, is common to the Dravidian with Brahvi, Chinese, the languages of the second Behistan tables and the Australian dialects. —*Ibid.* p. 80

१. Ethiopic—One of the four great divisions of the human races, occupying Africa, Australia and many islands of Eastern Ocean. Its members are typically black skinned and wooly haired with projecting jaws and broad skull. —*Harmsworth History of the World*, p. 326.
२. In the above list of the Dravidian languages I have not included the Ho, the Munda, or any of the rest of the languages of the kols, the *savaras* and other rude tribes of Central India and of Bengal called Kolarian by Sir George Campbell, and included by Mr. Hodgson under the general term Tamilian. —*Comparative Grammar of Dravidian Languages*, p. 42.
३. विश्वमित्रस्यैकशं पुत्राऽसुः । पञ्चाशदेव ज्यायांसः । ताननु व्याजहार तान्वः प्रजा भक्षीष्टेति । त एतेऽन्नाः पुण्ड्राः शबराः पुलिन्दा मूर्तिवा इत्युदन्त्या बहवो भवन्ति । विश्वमित्रा दस्यूनां भूयिष्ठाः । —ऐतरेयब्रा० ७।१८
४. शनकैस्तु क्रियालोपादिमा: क्षत्रियजातयः । वृषलत्वं परिगता ब्राह्मणादर्शनेन च ॥ पौण्ड्रकाश्चौण्ड्रद्रविडः काम्बोजाः यवनाशकाः । पारदा पह्लवाशीनाः किराता दरदा: खशाः ॥ —मनुस्मृति
५. इस शबर जाति की ही प्रसिद्ध शबरी थी, जो रामचन्द्र के समय में उपस्थित थी। यह भिल्हनी भी कही जाती है। भिल्ह और कोल एक साथ ही 'कोलभिल्ह' कहलाते हैं, अतएव शबरजाति निश्चय ही कोलारियन विभाग की है।

हमने पहले ही कहा है कि आर्यलोग अपने ही पतित आर्यों को उसी प्रकार दस्यु कहा करते थे जिस प्रकार ईरानी लोग अपने ही पतित भाई को 'दह्यु' कहा करते थे। हमने ही नहीं कहा प्रत्युत यूरोप के विद्वान् भी इसी बात को स्वीकार करते हैं कि आर्यों ने दुष्ट आर्यों को ही दस्यु, राक्षस और यातुधान आदि कहा है। प्रो० मैक्समूलर कहते हैं कि वसिष्ठ एक शुद्ध ब्राह्मण था, परन्तु विश्वामित्र ने उसे यातुधान तक कह डाला है<sup>१</sup>। यही क्यों, कृष्ण भगवान् ने तो अर्जुन जैसे आर्यवीर को भी जब कायरता की बातें करते सुना तो तुरन्त ही कह दिया कि 'अनार्यजुष्टमस्वर्गर्यम्', अर्थात् तू अनार्य स्वभाव धारण कर रहा है। वायुपुराण में स्पष्ट ही लिखा है कि 'असुरा ये तदा आसन् तेषां दायादबान्धवाः', अर्थात् असुर तो आर्यों के दायाद (उत्तराधिकारी) बन्धु ही हैं। इसी प्रकार महाभारत शान्तिपर्व में भी लिखा है कि 'दृश्यन्ते मानुषे लोके सर्ववर्णेषु दस्यवः', अर्थात् आजकल तो सभी वर्णों में दस्यु दिखलाईं पड़ रहे हैं। अब सोचना चाहिए कि दस्यु अगर कोई भिन्न जाति होती या उसके रूप, रंग, भाषा में भेद होता तो सब वर्णों में दस्यु कैसे दिखलाईं पड़ते। वास्तविक बात तो यह है कि आर्यलोग सदैव दुष्टों को दस्यु कहते रहे हैं, चाहे वे अपनी जाति के हों या अन्य जाति के। मनु महाराज स्पष्ट शब्दों में कहते हैं कि—

**मुखबाहूरूपज्ञानां या लोके जातयो बहिः ।**

**म्लेच्छवाचाश्चार्यवाचः सर्वे ते दस्यवः स्मृताः ॥**

—मनुस्मृति [१०।४५]

अर्थात् वर्णाश्रमहीन जातियाँ, चाहे आर्यभाषा बोलनेवाली हों और चाहे म्लेच्छभाषा बोलती हों, सब दस्यु ही हैं।

रहा यह कि आर्यों का दस्युओं को मारना लिखा है वह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। वेदों में तो आर्य को भी मारना लिखा है, परन्तु वह राजा के लिए है, क्योंकि राजा तो युद्ध में शत्रु को दण्ड देता ही है, चाहे शत्रु आर्य हो या दस्यु। जिस मन्त्र में आर्यों के मारने के लिए लिखा है, वह यह है—

**त्वं तां इन्द्रोभयाँ अमित्रान् दासा वृत्राण्यार्या च शूर ।**

**वधीर्वनेव सुधितेभिरक्तैरा पृत्सु दर्धि नृणां नृतम् ॥**

—ऋ० ६।३३।३

अर्थात् हे मनुष्यों के श्रेष्ठ नेता पराक्रमी इन्द्र ! तू उन दोनों पापात्मा अमित्रों, दस्युओं और आर्यों को मार। जैसे कुलहाड़ों से वन काटे जाते हैं वैसे ही तू उनको तीक्ष्ण किये हुए शस्त्रों से युद्धों में अच्छी प्रकार काट।

इन वर्णनों से स्पष्ट हो जाता है कि दस्यु, असुर, राक्षस, यातुधान आदि शब्द किसी अन्य जाति के लिए नहीं हैं, प्रत्युत उनके लिए हैं जो वर्णाश्रमधर्म के विपरीत आचरण करते हैं, अधर्मी और बदमाश हैं। यह प्रमाणित हो जाने पर कि अनार्य, दस्यु आदि आर्यों की ही शाखाएँ हैं और द्रविड़, शबर आदि मूलतः आर्य ही हैं तथा वेदों के वर्णनों से इनका सम्बन्ध नहीं है तब उनका रूप, रंग और भाषा पृथक् क्यों हैं ?

रूप, रंग और भाषा के विषय में हम द्वितीय खण्ड में सप्रमाण सिद्ध कर आये हैं कि कारणवश गोरी जातियाँ काली हो जाती हैं और अन्य जाति की भाषा अन्य जाति के लोग बोलने लगते हैं। इसी प्रकार हम यह भी सिद्ध कर आये हैं कि आर्यों से ही सब रंगों और रूपों की उत्पत्ति हुई है, इसलिए श्याम रंग और भिन्न भाषा के कारण ये आर्यों से पृथक् नहीं हो सकते।

१. Vasistha himself, the very true Aryan Brahman, when in feud with Vishwamitra is called not only an enemy but a Yatudhan and other names, which in common parlance are only bestowed on barbarian savages and evil spirit.

—Original Sanskrit Texts, Vol. II, p. 389, by Muir.

इस प्रकार यहाँ तक हमने भारत के मूलनिवासियों के विषय में उसी ढंग से खोज की जिस ढंग से पाश्चात्य विद्वान् या उनसे शिक्षा पाये हुए देशी विद्वान् करते हैं। हमने उन्हीं की खोजों और वेदों के उद्धरणों से ही अपने सिद्धान्त की पुष्टि और उनके मत का निरसन किया है, इसलिए अब यहाँ साहसपूर्वक कहते हैं कि मद्रास प्रान्त में बसनेवाले द्रविड़ तथा दक्षिणी प्रदेशों में बसनेवाले कोल आर्य ही हैं और आर्यजाति के लोग ही समस्त दक्षिणी एशिया में बसते हैं।

दक्षिण में सबसे निकट सीलोन (लंका) है, परन्तु पूर्वकाल में केवल सीलोन का ही नाम लंका नहीं था। सीलोन तो लंकादेश का एक टुकड़ा है। इसके आगे जो भूमि समुद्र में डूब गई है उसको और दक्षिणी द्वीपसमुदाय तक फैले हुए एक बड़े भूभाग को लंका कहते थे। इस वर्तमान सीलोन का नाम तो सिहलद्वीप है। सिंहल क्षत्रियों को कहते हैं। जिस प्रकार वृष के मारनेवाले को वृषल कहते हैं उसी प्रकार सिंह के मारनेवाले को सिंहल कहते हैं। पहले जो क्षत्रिय सिंह को मारते थे उनको सिंहल कहते होंगे, किन्तु पीछे से 'ल' निकल गया और केवल अमुक सिंह ही नाम रखने का रिवाज हो गया। कहते हैं कि जब से यह द्वीप लंका से अलग होकर इस आकार में आया तभी से उत्तर के क्षत्रियों ने जाकर वहाँ अपनी सत्ता जमाई और जंगलों के सिंहों को मारकर सिंहलद्वीप नाम रखा, परन्तु इस द्वीप में मद्रास के द्रविड़ लोग तो आदि से ही—वास्तविक लंका के समय से ही बसे हुए थे। अभी हाल में नवीन खोजों से ज्ञात हुआ है कि मलय और सुमात्रा की ही भूमि में लंका थी। हमारा तो अनुमान है कि आरम्भ में मेडेगास्कर, सीलोन और द्वीपपुंज एक में मिले थे और इस विशाल समस्त भूभाग को लंका कहा जाता था। मलय-सुमात्रा से लंका-सम्बन्धी जो प्रमाण मिले हैं उनमें कतिपय प्रमाण इस प्रकार हैं। ब्रह्मण्डपुराण में लिखा है कि—

**तथैव मलयद्वीपमेव सुसंवृतम् । नित्यप्रमुदिता स्फीता लङ्घनाम महापुरी ।**

—ब्रह्मण्डपुराण

इस श्लोक से लंका मलयद्वीप में ही पाई जाती है। इसके अतिरिक्त अन्य खोजों से ज्ञात हुआ कि सुमात्रा द्वीप के उत्तर-पूर्ववाले पर्वत के पास समुद्रतट पर सोनीलंका नामक स्थान है और इसी सुमात्रा में ही लङ्घत नामी एक द्वीप भी है। लंका के साथ सुवर्ण का नाम बहुत प्रसिद्ध है। लोग समझते हैं कि लंका में सोना बहुत था। अब ज्ञात हुआ है कि यह बात कल्पना नहीं है। इन द्वीपों में पहले बहुत सोना निकलता था। इसी से असुरों ने भी इस स्थान को राजधानी बनाया था और वह सुवर्ण-भूमि के नाम से प्रसिद्ध भी था। इस बात से जाना जाता है कि यहाँ भारत के लोग, अर्थात् पतित क्षत्रियगण और अन्य लोग भी सुवर्ण के ही लिए उपनिवेश बनाकर बसते थे। नारदखण्ड में लिखा है कि—

**भविष्यन्ति काले कलि दरिद्रा नृपमानवः । तेऽत्र स्वर्णस्य लोभेन देवतादर्शनाय च ॥**

**नित्यं चैवागमिष्यन्ति त्यक्त्वा रक्षः कृतं भयम् ।**

अर्थात् कलियुग में राजा-प्रजा दरिद्री हो जाएँगे, इसलिए यहाँ लोभ के कारण नित्य ही आया करेंगे।

प्रतीत होता है कि इस द्वीपपुंज में सुवर्ण की अधिकता के ही कारण ये श्लोक बनाये गये हैं। इन श्लोकों से सोनीलंका और सुवर्णमय लंका की बात एकदम पुष्ट हो जाती है और यह भी ज्ञात हो जाता है कि वर्तमान लंका—सीलोन द्वीपपुंज तक फैला था। सीलोन भी सिंहल का ही अपभ्रंश है। सिंहल का सिंलन और सिंलन का सीलोन हो गया है। यहाँ तक के वर्णन का भाव यह है कि सीलोन में पहले पहल द्रविड़ गये और पीछे से सिंहल नामी क्षत्रिय गये। दोनों

आरम्भ में आर्य ही थे, अतः लंका में भी आर्यों का ही विस्तार सिद्ध होता है।

इस द्वीपुंज में प्रधानतया छह-सात द्वीप हैं। यूरोपनिवासी अब तक यहाँ के निवासियों के लिए नाना प्रकार की कल्पना करते हैं, परन्तु संस्कृत के प्राचीन साहित्य से सिद्ध होता है कि मलय, जावा, सुमात्रा आदि देशों में आर्यों ने ही सबसे प्रथम उपनिवेश किया था। वाल्मीकि रामायण में लिखा है कि 'यत्नवन्तो यवद्वीपः सप्तराज्योपशोभितः', अर्थात् यवद्वीप सात राज्यों से सुशोभित है। इन द्वीपों के लिए वायुपुराण में भी लिखा है कि—

**अङ्गद्वीपं यवद्वीपं मलयद्वीपमेव च । शंखद्वीपं कुशद्वीपं<sup>१</sup> वराहद्वीपमेव च ॥**

**एवं षडेते कथिता अनुद्वीपाः समन्ततः । भारतं द्वीपदेशो वै दक्षिणे बहुविस्तरः ॥**

—वायुपुराण

अर्थात् अङ्गद्वीप, यवद्वीप, मलयद्वीप, शंखद्वीप, कुशद्वीप और वराहद्वीप आदि भारतवर्ष के अनुद्वीप ही हैं, जो दक्षिण की ओर दूर तक फैले हैं।

इन श्लोकों से स्पष्ट हो जाता है कि यह द्वीपुंज भारतीयों का ही उपनिवेश था। इन छह के सिवा सातवाँ बालिद्वीप भी है। इस बालिद्वीप में अब तक मनुस्मृति का क्रानून चल रहा है। डॉक्टर देसाई ने वहाँ से प्राप्त महाभारत की पुस्तक से ७० श्लोक की गीता की खोज की है। वहाँ के रहनेवाले द्रविड़, मंगोल और भारतीयों की मिश्रित सन्तान हैं। द्रविड़ और मंगोल एक ही तुरानी भाषा बोलते हैं और आर्यों के ही वंशज हैं, अतः द्वीपुंज के रहनेवाले भी आर्यों की ही उपशाखा में गिने जाते हैं। इस प्रकार एशिया का यह दक्षिण प्रदेश भी भारतीय आर्यसन्तति से ही भरा हुआ और बसा हुआ दिखलाई पड़ता है। कहा नहीं जा सकता कि आर्यों ने कितने काल पूर्व, सुवर्ण निकालने के लिए इन द्वीपों की खोज करके वहाँ अपना उपनिवेश बसाया था।

इस प्रकार हमने एशिया की चारों सीमाओं के प्रधान-प्रधान और प्रसिद्ध-प्रसिद्ध नये तथा पुराने देशों, प्रान्तों और जातियों को देखा तो ज्ञात हुआ कि सर्वत्र ही आर्यसभ्यता, आर्यवंश और आर्यगौरव की जयध्वनि गूँज रही है। सर्वत्र ही यह प्रमाणित हो रहा है कि समस्त मानवजाति जो एशियाखण्ड में निवास करती है चाहे काली, पीली, सफेद आदि किसी रंग-रूपवाली हो तथा आर्य, सेमिटिक और तुरानी आदि कोई भाषा बोलती हो, परन्तु वह आर्यों की ही शाखा या उपशाखा है।

### अफ्रीकाखण्ड

अफ्रीकाखण्ड में मिस्र देश है। मिस्र को आजकल इजिप्ट कहते हैं। लोगों का विचार है कि मिस्रनिवासियों की सभ्यता बहुत पुरानी है, परन्तु आगे आनेवाले वर्णन से ज्ञात हो जाएगा कि मिस्रनिवासी भारतवासी ही हैं। इसके पहले पश्चिमी एशिया के वर्णन से ज्ञात हो चुका है कि फ़ारस, अरब, मेसोपोटामिया, जुड़िया, बेबिलन, चालिड्या और फ़िनीशिया में आर्य ही निवास कर रहे हैं। भारतीय आर्यों ने ही पंजाब, मद्रास और द्वीपुंज तथा नेपाल से जाकर उक्त देशों में निवास किया था। उक्त देशों से मिस्र में जाने के लिए एक छोटा-सा समुद्र पार करना

१. कुशद्वीप में, रामचन्द्र के लंका विजय के पश्चात्, उनके पुत्र कुश ने सर्वप्रथम राज्य किया। यह कुशद्वीप द्वीपुंज में से ही है। यहाँ से भी बहुत प्राचीन काल में पणिकू लोग बेबिलोन को गये हैं।

The people who brought its culture to the southern coast of Babylonia, and probably also to the coast of Elam and communicated it to the still uncultured races living there, seems to have belonged to that peaceful commercial race which the Hebrews designated as the 'Son of Kush' which was not unlike the Phoenicians and was placed in the same category.

—Historical History of the World, Vo. I, p. 536.

पड़ता था। जिस प्रकार अफ्रीका और एशिया को स्वेज नहर ने इस समय पृथक् कर रखा है, उसी प्रकार वे पहले भी पृथक् थे। जहाँ इस समय स्वेज नहर है वहाँ छोटी-सी नदी की भाँति पहले भी समुद्र भरा था। इस छोटी-सी नदी को लाँचकर आर्यों ने ही मिस्त्र को बसाया था। इस विषय में बूग्सवे नामक विद्वान् ने लिखा है कि 'इतिहास पूर्व भारतीय आर्यों ने स्वेज पुल को पार करके नील नदी के किनारे अपना उपनिवेश बनाया था' १। इसी प्रकार हिस्टोरिकल हिस्ट्री आप दि वल्ड, भाग १ पृष्ठ ८९ में लिखा है कि 'इजिप्टनिवासी पणिकों की शाखा हैं। ये लोग परशियन गल्फ होते हुए लाल समुद्र के दक्षिण में पान्त नामक देश से गये' २। हमारा विश्वास है कि यह पान्त देश पाण्ड्य के सिवा और कुछ नहीं है और पणिक् भी वही पणि हैं, जिन्होंने पाण्ड्य और फिनीशिया बसाया था। विद्वानों ने प्राचीन खोपड़ियों के मिलान से भी निश्चित किया है कि मिस्त्रनिवासी भारतीय आर्य ही हैं<sup>३</sup>, परन्तु भारत के पाण्ड्य देश के निवासी होने से यह न समझ लेना चाहिए कि मिस्त्रनिवासी श्याम वर्ण के मद्रासी द्रविड़ हैं। मिस्त्रवालों का रंग श्याम नहीं है, न उनकी भाषा द्रविड़ है। वे तो गौर वर्ण और हेमिटिक भाषा के बोलनेवाले हैं। मद्रास के श्याम रंगवालों का यह रंग आस्ट्रेलिया के कारण हुआ है, परन्तु इनका आस्ट्रेलिया से कोई सम्बन्ध नहीं रहा, इसलिए वे गौर वर्ण आर्य ही हैं।

इजिप्ट देश के तीन नाम हैं कमित, हपि और मिस्त्र। कमित 'कुमृत्' का अपभ्रंश है। मृत् मिट्टी को कहते हैं, इसलिए कुमृत् का अर्थ काली मिट्टी होता है। यह नाम नील नदी के कारण ही रखा गया है। नील नदी की काली मिट्टी पर इजिप्ट बसा हुआ है, इसीलिए उसका नाम कुमृत् है। इसी प्रकार हपि शब्द 'अप' का अपभ्रंश है और अप जल को कहते हैं। मिस्त्र तो मिलावट को कहते ही हैं। इसलिए संस्कृत के अप और मिस्त्र नाम रखने से भी वे आर्य ही सिद्ध होते हैं।

मिस्त्र में एक दानवजाति भी थी। यह दानव शब्द आर्यों का ही है। वहाँ की कब्रों से नील रंग और इमली की लकड़ी भी मिली है, जो केवल भारतीय उपज है। माशा, सिलक, मन आदि वज्जनसम्बन्धी शब्द भी भारतीय ही हैं, जो वहाँ पहले चलते थे। वहाँ के स्थानों के नाम भी शिव और मेरु आदि हैं, जिनसे वे आर्य ही सिद्ध होते हैं<sup>४</sup>। 'इण्डया इन ग्रीस' नामी पुस्तक में पोकाक कहते हैं कि वे (मिस्त्र-निवासी) अपने को सूर्यवंशी कहते हैं, सूर्य की पूजा करते हैं और मनु को अपना मूलपुरुष समझते हैं<sup>५</sup>। इसी प्रकार उनके पुराने लिखित पत्रों से पाया जाता है कि वे

१. Indians migrated from India long before Historic memory and crossed that bridge of nations, the isthmus of Suez to find a new fatherland on the banks of the Nile.

—हिन्दी विश्वकोष 'उपनिवेश शब्द'

२. It seems probable that they came up from the land of Pant, at the south of the Red sea, and they may have been a branch of the punic-race in its migration from the Persian Gulf round by sea to the Mediterranean.

—*Historical History of the World*, Vol. 1, p. 89.

३. Heeren was prominent in pointing out an alleged analogy between the form of skull of the Egyptian and that of Indian races. He believed in the Indian origin of the Egyptian.

—*Historical History of the World*, Vol. 1, p. 77.

४. हिन्दी विश्वकोष 'उपनिवेश शब्द'।

५. The reader will not readily forget the renowned City of the Sun, Heliopolis, nor 'Menes' the first Egyptian King of the race of the Sun, the Manu Vaivaswat for Patriarch of the Solar race, nor his statue, that of the great Menoo, whose voice was said to salute the rising sun.

—*India in Greece*, p. 178.

भारत के पुनर्जन्म के सिद्धान्त के माननेवाले भी थे<sup>१</sup>। कर्नल आलकट कहते हैं कि आठ हज़ार वर्ष पूर्व उन्होंने भारत से जाकर मिस्र में उपनिवेश बसाया और भारतीय सभ्यता का विस्तार किया<sup>२</sup>। इस प्रकार इतने स्पष्ट और विस्तृत प्रमाणों के होते हुए कौन कह सकता है कि वे आर्यवंशज नहीं हैं और भारत से वहाँ नहीं गये?

मिस्र से आगे दक्षिण अफ्रीका में भी बहुत प्राचीन काल में आर्यों के जाने का पता मिलता है। हमने आरम्भ में ही लिखा है कि ब्रात्य क्षत्रिय 'झल' होकर अफ्रीका गये और वहाँ 'जूलू' हो गये। इनके बाद वहाँ आर्यों का जाना शुरू हुआ। स्वर्गवासी शास्त्री काशीनाथ वामन लेले के एक लेख के आधार पर अकूबर सन् १९२२ के दीपमालिका अंक में 'गुजराती' नामक पत्र लिखता है कि 'ऐतरेयब्राह्मण के ३९वें अध्याय के अन्त में वह मन्त्र है कि 'हिरण्येन परिवृत्तान्कृष्णान्शुक्लदतो मृगान्। मष्णारे भरतोऽददाच्छतं बद्वानि सप्त च'। इस मन्त्र पर सायणाचार्य कहते हैं कि 'मृगशब्देन गजाः विवक्षितास्ते च गजा हिरण्येन परिवृत्ताः सर्वभरणयुक्ताः कृष्णाः शुक्लाभ्यां दन्ताभ्यां तादृशान् गजान् मष्णारनामके देशे भरतो राजा दत्तवान्। शतमित्यादि तत्पञ्च्योच्यते। बद्वं वृन्दमित्येतौ पर्यायौ। बद्वानि सप्ताधिकशत-सांख्याकानि तावतो गजान् दत्तवनित्यर्थः', अर्थात् दुष्यन्त के पुत्र राजा भरत ने मष्णार नामक देश में, सुवर्ण अलंकारों से युक्त बड़े-बड़े श्वेत दाँतवाले हाथियों के एक सौ सात वृन्द दान में दिये। इस महान् हस्तिदान से भरत राजा को महाकर्म की उपाधि मिली। जिस प्रकरण में यह वर्णन आया है, वहाँ पाँच मन्त्र हैं। अन्तिम मन्त्र में इस महाकर्म की व्याख्या लिखी है कि 'महाकर्म भरतस्य न पूर्वे नापरे जनः। दिवं मर्त्यं इव हस्ताभ्यां नोऽ दापुः पंच मानवः', अर्थात् ऐसा महाकर्म भरत राजा के न तो पूर्वजों ने किया और न पीछेवालों ने और न किसी अन्य मनुष्यजाति ने। इस बात पर अब प्रश्न होता है कि वह मष्णार देश कहाँ है, जहाँ इतने अधिक हाथी थे और इतना अधिक सोना पाया जाता था।

मेन्युअल आफ जिओग्राफी के देखने से ज्ञात होता है कि अफ्रीकाखण्ड में दक्षिणी रोडेशिया देश है, जहाँ 'मष्णा' नामक स्थान है। पूर्वकाल में वहाँ बहुतायत से सोना होता था और हाथियों की भी बहुतायत थी। वहाँ के खण्डहरों के देखने से ज्ञात होता है कि वहाँ कोई सभ्य जाति रह चुकी है। भूगोल की पुस्तकों में वहाँ का वर्णन दिया गया है, जिससे अच्छी प्रकार प्रकट हो जाता है कि बहुत काल पूर्व वहाँ किसी सभ्य जाति ने सोना निकाला था और मकान तथा मन्दिर आदि बनवाये थे। वहाँ हाथी भी बहुतायत से होते थे, परन्तु अब उनकी संख्या इसलिए कम हो गई है कि वहाँ के सब हाथी मार डाले गये हैं<sup>३</sup>। वही स्थान 'मष्णा' है। संस्कृत में उसी का नाम

१. Undated Hemitic Writings, p. 90.

२. We have a right to more than suspect that India, eight thousand years ago, sent a colony of emigrants who carried their arts and high civilization into what is now known to us as Egypt.....The old civilization of Egypt is the direct outcome of that of the older India.

—Theosophist for March 1881, p. 123.

३. In southern Rhodesia, which includes both Matabole land and Mashna land, extensive gold-fields have been discovered. —Manual of Geography.

Remarkable ruins of stone-built fortifications and temples, curiously carved and containing evidence that the builders worked in gold, are scattered over the plateau. They point to the early possession of the country by a civilised people.

Elephants once very plentiful throughout the greater portion of Rhodesia, had become so much reduced in numbers by constant hunting and the indiscriminate slaughter of females and calves as well as males. —The Inter Geography by Seventy Authors, p. 1000 and 1001.

‘मष्णार’ लिखा है। ‘र’ का लोप हो जाना सहल है। हमेशा ‘र’ का विसर्ग होकर अथवा विसर्ग का ‘र’ होकर अपभ्रंश हुआ ही करता है, इसलिए वह स्थान मष्णार ही है। राजा भरत ने इसी में सुवर्ण के साथ कोटि हाथियों का दान किया था।

यह मध्यकालीन सभ्यता है जो आर्यों के द्वारा अफ्रीका पहुँची है। इसके भी पूर्व, अर्थात् आरम्भ काल में भी दक्षिण से झल्ल लोग जाकर वहाँ रहे थे। उनको इस समय जूलू कहते हैं। उनके विषय में आधुनिक पुस्तकों में लिखा है कि—

रथक्रान्ते नराः कृष्णाः प्रायशो विकृताननाः। आममांसभुजाः सर्वे शूराः कुंचितमूर्द्धजाः।

— भविष्यपुराण

अर्थात् यहाँ के मनुष्य काले, विकृत मुँहवाले, कच्चा मांस खानेवाले और सिर में घुँघराले बालवाले होते हैं।

इस प्रकार अफ्रीका में आर्यों की तीन धाराएँ तीन बार पहुँची हैं। झल्लकाल, अर्थात् आदिमकाल, भरतकाल, अर्थात् मध्यम काल और पणिकाल, अर्थात् अन्तिम मिस्त्रकाल। हमारा अनुमान है कि पुराने आर्यों में नवीनों का मिश्रण होने से ही इस देश का नाम मिस्त्र रक्खा गया होगा। यही थोड़ा-सा अफ्रीका खण्ड में आर्यों के विस्तार का वर्णन है।

### यूरोपखण्ड

यूरोप के विद्वानों ने हल्ला मचा दिया है कि हम भी आर्य हैं। दूसरे खण्ड में हमने स्पष्ट रीति से दर्शा दिया है कि आर्य सर्वश्रेष्ठ को कहते हैं, लम्बी नाक, सफेद चेहरा और केन्तुम अथवा शतम् भाषा बोलनेवालों को नहीं। यद्यपि वैदिक आर्यों के विद्या, बुद्धि, सभ्यता आदि के इतिहास से प्रभावित होकर यूरोपनिवासी आर्यों का वह लक्षण करते हैं जो उनमें घट जाए, परन्तु खोज करनेवालों ने पता लगा लिया है कि यूरोपनिवासी प्राचीन वैदिक आर्यों के वंशज नहीं हैं। हाँ, उन्होंने आर्यों की भाषा अवश्य स्वीकार की है। जिस प्रकार आजकल गोआ प्रदेश में बसनेवाले देशी क्रिश्चियन अंग्रेजी को अपनी भाषा बना रहे हैं उसी प्रकार यूरोपवालों ने भी आर्यभाषा ग्रहण की है। हम लिख आये हैं कि यूरोपनिवासी दो भिन्न-भिन्न मनुष्यसमुदायों के मिश्रण से पैदा हुए हैं। वे दोनों समुदाय किसी युग में आर्य थे, परन्तु आर्यत्व नष्ट करके एक दल मंगोल हुआ और दूसरा नियो। इन्हीं मंगोल और नियो लोगों के मिश्रण से यूरोपनिवासीयों का प्रादुर्भाव हुआ है। वैदिक आर्यों की उच्च सभ्यता उस समय प्रज्वलित थी, अतः इस काले-पीले रंगों के मिश्रित वंश ने आर्यों की भाषा और उच्च सभ्यता से प्रभावित होकर उसे स्वीकार किया।

विद्वानों की जाँच से ज्ञात होता है कि यूरोप में मनुष्यों की बस्ती बहुत पीछे हुई है। तिलक महोदय के निष्कर्ष से तो यूरोप की बस्ती दश हजार वर्ष से अधिक पुरानी सिद्ध ही नहीं होती, परन्तु दूसरे विद्वान् इसको बहुत अधिक मानते हैं। चाहे जो हो, परन्तु यूरोप में अन्य भूभागों की अपेक्षा मनुष्यजाति बहुत ही पीछे बसी है, इसलिए प्रश्न होता है कि यह मिश्रित जाति कहाँ पर उत्पन्न हुई और कहाँ पर इसने आर्यभाषा सीखी। इसकी निष्पत्ति पर दो-एक मत है, परन्तु सबसे उत्तम मत यह है कि एशिया माइनर में ही यह सब रचना हुई। एशिया माइनर के वर्णन में हम पहले ही दिखला चुके हैं कि वहाँ द्रविड़ भाषा बोलनेवाली हिटी (Hittite)=खत्तीजाति निवास

- आदि में केन्तुम और शतं बोलनेवाले दो प्रकार के लोग थे। ग्रीस और ईरान में भी केन्तुम विभाग था। ये ‘श’ के स्थान पर क्राफ़ (क) का उच्चारण करते थे। ग्रीक में श्वान को क्कान और ज़ेंद में श्वसुर को कुसुर कहते थे।

करती थी। स्वेज ब्रिज से अफ्रीका के काले रंगवाले निग्रो भी वहाँ आया करते थे और वहीं पर तुरानीजाति भी विद्यमान थी। डॉक्टर भण्डारकर के स्मृतिनिबन्ध में तिलक महोदय ने भी यही बात लिखी है। उधर 'हार्म्स्वर्थ हिस्ट्री आफ दी वल्ड' में लिखा है कि वहाँ मंगोलिक जाति भी रहती थी।<sup>१</sup> हमारी खोज बतलाती है कि वैदिक काल की पतित क्षत्रियजाति किरात होकर हिमालय पर गई और केलात नाम धारण करके उसकी एक शाखा बहुत दिन बाद तातारवालों की पूर्वज होकर एशिया माइनर में भी बसी और यूरोप देश की केल्टजाति की जन्मदात्री हुई। इसी प्रकार मद्रास के झळ अफ्रीका के झूलू हुए और स्वेज पुल से एशिया माइनर में आकर केल्ट नामक तातारियों से मिलकर पीले और काले रंग को मिलाकर श्वेत रंग की उत्पत्ति की तथा वहीं पर बसे हुए अन्य शुद्ध आर्यों की भाषा सीखकर आर्यमणि—आरमेनिया—नामक स्थान में अपना निवास किया।

यहीं से यूरोप में मनुष्यजाति के—एक प्रकार से आर्यजाति के पदार्पण का आरम्भ हुआ। उनकी भाषा आर्यभाषा हो चुकी थी। इसी आर्यभाषा के कारण उन्होंने आर्यनन्द, अर्थात् आयलैंड और शम्देशीया, अर्थात् सरमेशिया आदि नाम रखे। रोम शब्द लेटिन का नहीं,<sup>२</sup> किन्तु भास्कराचार्य द्वारा ढूँढ़ा हुआ संस्कृत का ही है। वेद में रुमे, रुशमे शब्द आते हैं। ये लोग पहले पहल 'श' का उच्चारण नहीं कर सकते थे, इसीलिए लेटिन में शतं (सौ) को 'केन्तुम्' ग्रीक में 'कातोन', प्राचीन जर्मन में 'हुण्ड' (Hund) गाथिक में 'खन्तु' और अंग्रेजी में 'हण्ड्रेड' कहते हैं, किन्तु कुछ दिन के बाद आर्यों की एक अन्य शाखा भी यूरोप में निवास करने के लिए गई। यह बराबर शतं बोलती थी। अवस्था में शतेम और रशिया की भाषा में स्तो बोलते थे। यह शुद्ध उच्चारण पीछे से जिस शुद्ध वैदिक आर्यजाति से यूरोपवालों ने सीखा, वह जाति अब तक वहाँ विद्यमान है।

इसके लिए वहाँवालों ने न जाने क्या-क्या कल्पना कर डाली है, परन्तु जब उनकी भाषा का मिलान किया गया तब वे ठीक हिन्दी-जैसी भाषा बोलनेवाले निकले। पहले यह प्रसिद्ध किया गया कि ये सभी हाल ही में भारतवर्ष से यूरोप में गये हैं, परन्तु अब ज्ञात हुआ है कि ये बहुत पुराने समय से वहाँ रहते हैं और लोहे की विद्या यूरोप में इन्होंने फैलाई है। हम द्वितीय खण्ड में इस जिप्सीजाति का वर्णन करके इसका परिचय दे आये हैं।

आगे हम उन प्रमाणों को उद्धृत करना चाहते हैं जिनमें यह दिखलाया गया है कि यूरोपनिवासी काली और पीली जातियों के वंशज हैं और केवल आर्यभाषा ही बोलते हैं। इस विषय में मिस्टर टेलर, लो० तिलक और अविनाशचन्द्र दास ने पर्याप्त प्रकाश डाला है, अतः उन्हीं के आधार से हम दिखलाना चाहते हैं कि यूरोपनिवासी आर्यों की शाखा नहीं, प्रत्युत प्रशाखा हैं।

टेलर महोदय अपने 'ओरिजिन आफ आर्यन्स' नामक ग्रन्थ में लिखते हैं कि यूरोपनिवासी अफ्रीका और मंगोलनिवासीयों के मिश्रण से उत्पन्न हुए हैं और एशिया की मूल आर्यभाषा बोलते हैं<sup>३</sup>। इस विष का स्पष्टीकरण करते हुए 'ऋग्वेदिक इण्डिया' में दासबाबू कहते हैं कि 'सबसे

१. Chinese—One of the most numerous races of the world inhabiting the Chinese Empire. They are a stock of the southern Mongolic family and it is thought by some ethnologists that they are descended from the Mongolic Akkads of Mesopotamia. —Harmsworth History of the World, p. 329

२. That Rome, writes Neibuhr, was not a Latin name. —India in Greece

३. Europe may have been the place where the African and Asiatic types must have met and mingled.

The latter opinion may maintain that while Aryan speech came originally from Asia, it was subsequently acquired by men who were largely of African origin. —Origin of the Aryans, p. 66.

प्रथम जंगली आर्यों का जंगली मंगोलियनों के साथ मिश्रण हुआ। इस मिश्रित दल की भाषा आर्यभाषा ही हो गई। कुछ दिन के बाद इस मिश्रित दल का मिश्रण उस अफ्रीका की जाति के साथ हो गया जो यूरोप में पहले से ही बसी हुई थी। इस दुबारा मिश्रित दल की भाषा भी आर्यभाषा ही हो गई। यही आर्यभाषाभाषी मिश्रित दल वर्तमान समस्त यूरोप की जातियों का पूर्वज है”।

‘आर्यों का उत्तरध्रुवनिवास’ नामी ग्रन्थ में इस मत की पुष्टि करते हुए तिलक महोदय कहते हैं कि प्राचीन खोपड़ियों की परीक्षा से विद्वानों ने यूरोप में चार प्रकार की खोपड़ियाँ निश्चित की हैं। वर्तमान यूरोपनिवासी इन्हीं के वंशज हैं। इन चारों में दो वर्ग तो बड़े सिरवाले हैं और दो छोटे सिरवाले। इनमें एक वर्ग ऊँचा था दूसरा ठिंगना। यूरोपनिवासी सब आर्यभाषा बोलते हैं, इससे यह तो स्पष्ट ही है कि इन दो में से एक वर्ग आर्यों का है। विद्वानों में यह प्रश्न बहुत दिन तक होता रहा है कि इनमें से कौन आर्य और कौन आर्येतर हैं। कई एक जर्मन पण्डितों का मत है कि इस समय के पूर्वज वही थे, जो बड़े सिर और लम्बे क्रद के थे। इस विवाद पर कैनन् टेलर नामक एक अंग्रेज ग्रन्थकार कहता है कि जब दो जातियों का संघट्ट होता है तब उनमें जो अधिक सभ्य होती है उसी की भाषा दूसरी असभ्य जाति स्वीकार करती है। इस महान् नियम के अनुसार बाल्टिक समुद्र के किनारे पर बसनेवाले बड़े सिर और लम्बे जंगलियों ने जब छोटे सिर और ठिंगने आर्यों की सङ्झति की तो उन्होंने आर्यों की ही भाषा सीख ली। यही मत सत्य प्रतीत होता है।

इसके अतिरिक्त उनकी भाषा में अब तक कुछ-न-कुछ तुरानी शब्द पाये जाते हैं, क्योंकि अफ्रीका के निय्यो और एशिया के मंगोल तुरानी भाषा ही बोलते हैं<sup>१</sup>। इन प्रमाणों से सिद्ध है कि यूरोपनिवासी वैदिक आर्य नहीं हैं। इनकी उत्पत्ति दो पतित आर्यजातियों के विचित्र (काले-पीले) मिश्रण से हुई है और केवल आर्यों की भाषा ही बोलने को मिली है, अर्थात् ये आर्यों की दो पतित शाखाओं के संकरमिश्रण से ही हुए हैं। इसलिए हमारा ऊपर का वर्णन और लोगों का यह अनुमान कि वे आर्य ही हैं, दोनों आरोप यह बात सिद्ध करते हैं कि ये आर्यों की शाखा नहीं, किन्तु प्रशाखा हैं, क्योंकि यह बात सिद्ध हो चुकी है कि आदि में सभ्य वैदिक आर्यों का ही प्रादुर्भाव हुआ और उनकी ही शाखाएँ अथवा उपशाखाएँ या प्रशाखाएँ ही संसार के भिन्न-भिन्न प्रदेशों में बसी हैं। ऐसी दशा में यूरोपवालों के आर्य होने में तो बहुतों को शक ही नहीं है, परन्तु जो उन्हें मिस्त्रवंशज कहते हैं उनके अनुसार भी वे आर्यों की ही प्रशाखा सिद्ध होते हैं, क्योंकि तुरानी और निय्यो दोनों ही पतित आर्य हैं, इसलिए यूरोप-निवासीयों के आर्य होने में कुछ भी सन्देह नहीं है।

- From the evidence about the hoary antiquity of the Aryans of Saptasindhu, and the proofs we have adduced of the savage Aryan tribes having gradually migrated Westward through Western Asia to Europe. We hold the opinion that Aryan speech went originally from Sapta-Sindhu to Europe along with the savage Aryan nomads who got mixed with the Mongolian savages in western Asia and imposed their speech upon them, and that these savages having commingled their blood, afterwards came in contact with the early inhabitants of Europe, who had immigrated from Africa with the retreat of the great ice-sheet northward at the end of the Glacial Epoch.

—Rigvedic India, p. 313.

- My own theory is that the Dravidian languages occupy a position of their own between the languages of the Indo-European family and those of the Turanian or Scythian group.

—Dravidian Grammer by Dr. Cladwell

इनके आदिमकालीन पुरोहित ‘द्वृइड’ कहलाते हैं। यह द्वृइड शब्द ‘द्रविड़’ का ही अपभ्रंश है।

## आस्ट्रेलिया खण्ड

हमने अभी थोड़ी देर पहले दक्षिणी भारत के लंका और द्वीपपुञ्ज आदि का वृत्तान्त लिखा है और बतलाया है कि वहाँ आर्य और द्रविड़ों का ही निवास था और है। ये सब दक्षिण भारत, अर्थात् मद्रास प्रदेश से ही उक्त द्वीपों में पहुँचे हैं। जिस प्रकार ये सब मद्रास प्रान्त से इन द्वीपों में पहुँचे हैं उसी प्रकार उनकी एक आन्ध्रशाखा जो महाराज विश्वामित्र के पतित पुत्रों से उत्पन्न हुई थी आदिमकाल ही में आन्ध्रालय, अर्थात् आस्ट्रेलिया में जाकर बसी थी। आधुनिक खोजों के अनुसार विद्वानों का विचार है कि आस्ट्रेलिया में मनुष्यों की बस्ती बहुत प्राचीन काल से है। यह बात उक्त घटना से सिद्ध होती है। विश्वामित्र के पुत्रों की घटना अत्यन्त प्राचीन है। इसका वर्णन ऐतरेयब्राह्मण में आया है, अतः पूर्वकाल में ही आर्यलोग पतित होकर आन्ध्रालय को गये थे। कहते हैं उस समय भारत और आस्ट्रेलिया के बीच इतना बड़ा अन्तर न था। उस समय सीलोन और मेडेगास्कर की भूमि बहुत चौड़ी थी और भारत तथा आस्ट्रेलिया को जोड़ती थी तथा समस्त टापुओं में एक ही जाति निवास करती थी, क्योंकि आस्ट्रेलियावालों की और भारती द्रविड़ों तथा कोल, भील और सन्थालों की भाषा एक ही है। इससे यह बात सुदृढ़ हो जाती है कि सब एक ही जाति के हैं। पतित आर्यों से ही इन सबकी उत्पत्ति हुई है, अतः सबके पूर्वज आर्य ही थे, इसीलिए धर्मोपदेश के लिए यहाँ के आर्य ऋषि (पुलस्य) बहुत ही प्राचीन काल में राजा तृणबिन्दु के यहाँ आस्ट्रेलिया गये थे। यह बात वाल्मीकि रामायण से अच्छी प्रकार सिद्ध होती है।

नवीन खोजों से भी वहाँ के निवासी आर्य ही सिद्ध होते हैं। सन् १९२२ में गुजरात के एक सुयोग्य लेखक ने 'गुजराती' नामक पत्र के दीपमालिका अंक में वहाँ की बहुत-सी बातें लिखकर अन्त में लिखा है कि 'आस्ट्रेलिया के मूलनिवासीयों की रूप-रेखा आदि से यूरोपवालों ने उनका नाम इण्डियन रखखा है। इन लोगों में हिन्दुओं की भाँति बहुत बड़ा जातिभेद है। ये लोग परस्पर एक-दूसरे के हाथ का छुआ हुआ नहीं खाते। इसी प्रकार वे अपनी जाति में किसी दूसरी जाति का मिश्रण नहीं होने देते। आर्यजाति के स्वभाव से मिलती हुई इन बातों से ज्ञात होता है कि ये लोग आदि में आर्यकुल के ही होंगे। आर्य क्षत्रियों का एक बहुत बड़ा चिह्न इनके पास अब तक विद्यमान है। यह क्षत्रियों का अक्षयतूण शस्त्र है। यह अपने शत्रु को मारकर मारनेवाले के पास फिर वापस आ जाता है। इसको ये लोग 'बूमरांग' कहते हैं। इस शस्त्र के चलाने की विधि और बनाने की विधि बड़ी ही विज्ञानपूर्ण है। अब तक हम सुनते थे कि आगे के क्षत्रियों के बाण शत्रु को मारकर लौट आते थे तो इसे हम चण्डूखाने की गप समझते थे, परन्तु अब आस्ट्रेलिया के बूमरांग ने इस विषय को सत्य कर दिया है<sup>१</sup>। इस शस्त्र के सिवा उनके पास आर्यों की एक खास धरोहर अब तक विद्यमान है और वह है पुनर्जन्म पर विश्वास। आस्ट्रेलिया के मूलनिवासी पुनर्जन्म मानते हैं। अगस्त १९१४ के थियॉसॉफिस्ट में जिनराज दास एम०ए० ने Northern Tribes of Central Australia Baldwin Spencer and H.G. Gilen के हवाले से

१. आस्ट्रेलिया ना मूल वतनी लोकोने तेमना रूप विगोरे ऊपरथी यूरोपीअन लोकोए 'इंडियन' एवुं नाम आपेलुं छे। ए लोको मां हिन्दुओनी पेठे जातिभेद घणो छे अने एक बीजाना हाथ नुं राधेलूं खावा न खावानी बाबत मां पण ते लोकोनो रिवाज विचित्र छे। तेज प्रमाणो पोतानी जाति मां बीजी जातनुं मिश्रण न आय, ते बाबत पण ते लोको बहु काळजी राखे छे। आर्यजाति ना स्वभाव ने मळती आवनारी आ बाबतो छे अने तेथी ए लोको मूल आर्यकुल ना होवा जाइये एम लागे छे।
२. Boomerang—A hard wood missile used by the natives of Australia shaped like the segment of a circle and so balanced that when thrown to a distance it returns towards the thrower.

एक लेख लिखा है। उसमें इस विषय का सविस्तर वर्णन है<sup>१</sup>। उनकी भाषा द्रविड़ भाषा से मिलती है। उनका रूप-रंग भी वही होता है। वे अनेक जातियों (वर्णों) में विभक्त हैं। वे किसी का छुआ हुआ नहीं खाते। वे अपनी जाति को दूसरी जातियों के साथ मिश्रित नहीं करना चाहते, उनके पास आर्य क्षत्रियों का अक्षयतूण शास्त्र अब तक विद्यमान है और वे पुनर्जन्म पर विश्वास करते हैं। उनके यहाँ अति प्राचीन काल में ही ऋषि-मुनि जाते थे और उनके राजाओं के नाम आर्यों के ही (तृणबिन्दु आदि) थे। इन तमाम बातों से यह स्पष्ट हो जाता है कि वे आदि में आर्य थे। कारणवश पतित होकर मद्रास प्रान्त में गये और वहाँ से आस्ट्रेलिया में बस गये, अतः उनके पूर्वज आर्य थे और भारत निवासी थे, इसमें सन्देह नहीं।

आस्ट्रेलिया से आगे दक्षिणदिशा में कोई देश नहीं है। उसके आगे दक्षिणीध्रुव है। जिस प्रकार उत्तरध्रुव की ओर जाना आर्यों के यहाँ निषिद्ध था, उसी प्रकार दक्षिणध्रुव में भी जाना अच्छा नहीं समझा जाता था। वाल्मीकि रामायण में ही लिखा है कि सीता की खोज करने के लिए वानरों को भेजते समय सुग्रीव ने जिस प्रकार उत्तरध्रुव में जाना मना किया था उसी प्रकार दणिकध्रुव (मेरु) में भी जाना मना किया था। सुग्रीव ने कहा था कि—

**अन्ते पृथिव्या दुर्धर्षास्ततः स्वर्गजिताः स्थिताः ।**

**ततः परं न वः सेव्यः पितृलोकः सुदारुणः ॥** —वा० रामायण कि० ४१। ४४

अर्थात् पृथिवी के अन्तिम भाग दक्षिणीध्रुव में पितर निवास करते हैं। वह स्थान महा भयंकर है, अतः वहाँ न जाना।

ध्रुवों में जाने से मना करने का कारण यही है कि वहाँ वैदिक आर्य अपने धर्म-कर्म के साथ जीवन नहीं बिता सकते। इसी से वेद ने भी मना किया है, अतः दक्षिणध्रुव के उत्तरप्रदेश आस्ट्रेलिया तक ही आर्यों की बस्ती थी। इसके आगे आर्यलोग नहीं जाते थे।

### अमेरिकाखण्ड

हमारा विश्वास है कि अमेरिका में शुद्ध आर्यों का निवास पूर्वातिपूर्व काल में ही हो गया था, परन्तु किसी-किसी का ऐसा भी विचार है कि पुरानी दुनिया से—एशिया यूरोपादि से अमेरिका जाने का कोई रास्ता ही नहीं था, इसलिए अमेरिका-निवासी एशिया आदि से नहीं गये, प्रत्युत उन्होंने स्वयं अपना विकास प्राप्त करके मनुष्यता प्राप्त कर ली है, किन्तु हाल में वैज्ञानिक रीति से—भौगोलिक, भौगोर्भिक और प्राणिशास्त्रसम्बन्धी खोजों से जो परिणाम निकला है, वह इसके सर्वथा विरुद्ध है। ‘हार्म्सवर्थ हिस्ट्री आफ दि वल्ड’ नामक महान् ग्रन्थ में इस खण्ड का विस्तृत वर्णन है। इसके पृष्ठ ५६७५ पर लिखा है कि उत्तरीय अटलांटिक समुद्र सदा से ही जलमय नहीं था। वहाँ की भूमि पुरानी दुनिया से मिली थी और अमेरिका में मनुष्य पुरानी दुनिया से ही प्रविष्ट हुए हैं<sup>२</sup>। इसके आगे पृष्ठ ५६७६ पर लिखा है कि अमेरिका में मनुष्य की उत्पत्ति

१. When the idea of reincarnation is heard of for the first time, the student naturally supposes that it is a Hindu doctrine.....but the strong fact is that reincarnation is found everywhere as a belief.....We hear of it in far off Australia, and there is a story on record of an Australian aborigine who went cheerfully to the gallows and replied on being questioned as to his levity—"Tumble down black fellow, jump up white fellow and have lots of sixpences to spend."

२. On the other hand, geologists of note believe that they can prove that the northern part of the Atlantic Ocean was not always covered by water, and they think it was by this way that man came from the Old World to the New, in times when the climatic conditions of our parts of the globe were still considerably different from those of history.

हो ही नहीं सकती, क्योंकि मनुष्य का विकास होने के लिए वनमनुष्यों की आवश्यकता होती है, किन्तु अमेरिका में इस प्राणी का न तो पूर्व में अस्तित्व था और न अब है, इसलिए अमेरिका में मनुष्यजाति का विकास नहीं हुआ<sup>१</sup>।

इस वर्णन से इतना तो निर्विवाद हो गया कि अमेरिका में मनुष्य का विकास नहीं हुआ और वहाँ जो मनुष्य बसते हैं वे प्राचीन दुनिया से ही गये हैं, परन्तु प्रश्न यह है कि वहाँ वे किस देश से गये? हमारी समझ में इस प्रश्न का उत्तर १. उनके धार्मिक विश्वासों, २. उनकी शक्ल-सूरत के मिलानों, ३. उनकी कारीगारी और रिवाजों, ४. उनके पूर्वकालिक गमनागमनों और ५. उनके विषय में स्थिर की हुई विस्तृत जानकारी से ही मिल सकता है और ज्ञात हो सकता है कि वे किस देश के हैं, अतः हम यहाँ क्रम से इन सभी बातों का उत्तर ढूँढ़ते हैं।

१. उनके धार्मिक विश्वासों के विषय में कहा जाता है कि वे नागपूजक थे। उनके यहाँ पंखधारी सर्प पर अब भी विश्वास किया जाता है<sup>२</sup>। इसीलिए भारतवासी उनको नाग कहते हैं। यह इतिहास-सिद्ध बात भारत में प्रसिद्ध है कि अमेरिका (पाताल) में नागलोग ही वास करते हैं। यह बात केवल प्रसिद्ध ही नहीं प्रत्युत यहाँ नागलोक विद्यमान है, जहाँ से ये वहाँ गये हैं। बंगाल का नागा पर्वत अब तक प्रसिद्ध है। बंगाल में एक कुल का नाग नामक आस्पद अब तक विख्यात है। प्रोफेसर नाग, जो हिन्दू विश्वविद्यालय में अध्यापक हैं, उसी कुल के हैं। 'मानवेर आदि जन्मभूमि' की भूमिका में लिखा है कि 'इन नाग महाशयों का गोत्र भी वासुकी ही है'। छोटा नागपुर इन्हीं के नाम से बसा हुआ है। उत्तरीय एशिया के वर्णन में हमने दिखलाया है कि नेपाल में एक लाल रंग की जाति भी पाई जाती है। इसके भी पूर्व हमने लिख दिया है कि काकेसिक दल में ही एक जाति ने रक्तवर्ण प्राप्त कर लिया था। यह दल बड़ा बलवान् था। इसकी उत्पत्ति क्षत्रियजाति से हुई थी। उसी के प्रभाव से कुछ दिन तक क्षत्रियवर्ण लाल रंग का ही आदर्श रूप माना जाता था, किन्तु कारणवश यह दल पतित हुआ और वह दल पाताल देश को चला गया। यही नाम अपने साथ ले-गया और नाग शब्द का असली इतिहास भूलकर अपने को नागों का वंशज मानने लगा और नागों की पूजा करने लगा। इस दल के कुछ लोग प्राचीन काल में यहाँ आते-जाते थे। इस विषय की भागवत में कथा है। वहाँ लिखा है कि—

**नर्मदा भ्रातृभिर्दत्ता पुरुकुत्साय यो नगैः । तथा रसातलं नीतो भुजगेन्द्रप्रयुक्त्या ॥**

—भागवत [९।७।२]

अर्थात् वासुकी की मदद से नागों द्वारा दी हुई नर्मदा पुरुकुत्स को रसातल ले-गई।

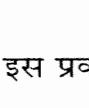
इस वर्णन से स्पष्ट हो जाता है कि उनको यहीं पर नागत्व प्राप्त हुआ और वे अपने साथ ये विचार वहाँ भी ले-गये, और पीछे से इतिहास के स्थान में वही विचार धार्मिक पूजा बन गये। इस देश के जंगलियों में भी अब तक नागपूजा होती है। इससे ज्ञात होता है कि यह रिवाज उनके ही पूर्वजों से चला है, जो बीजरूप से अब तक विद्यमान है।

इसके अतिरिक्त इनके आर्यत्व का बोध करानेवाला और इनको असल भारतीय सिद्ध

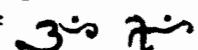
१. Since it has been proved that the human race in American soil can be traced back to the same periods of the earth's history as in the Old World, the question whence the first man came there has lost much of its importance. It is true that the cradle of the human race can hardly have been in America, to cite one objection, the anthropoid apes, which are indispensable to the theory of evolution as the connection-link between the animal world and man, have at no time been native there any more than they are now, as the fossil finds in all American excavation have proved.

—Harmsworth History of the World, p. 5676.

करनेवाला एक प्रबल प्रमाण यह है कि अमेरिका में ये एक देवता बनाते हैं जिसका धड़ आदमी का और सिर हाथी का होता है। यह विचित्र जन्तु गणेश की मूर्ति से बिलकुल मिलता है। प्राच्यविद्यामहार्षव नगेन्द्रनाथ सेन हिन्दी विश्वकोष में उपनिवेश शब्द पर लिखते हैं कि 'अमेरिका में तो हाथी होता ही नहीं, फिर यह हाथी का चित्र उनके यहाँ सिवा भारत के और कहाँ से गया'? हम भी कहते हैं कि हाथी अमेरिका में नहीं होता, अतः यह देवता भारत से ही वहाँ गया है, परन्तु प्रश्न यह है कि भारत में यह इस प्रकार से क्यों बनाया जाता है। यह सभी जानते हैं कि गणेश आरम्भ का देवता है। इसकी उत्पत्ति ओ३म् से हुई है, क्योंकि यही आरम्भ में मंगलाचरण के लिए लिखा जाता है। यही लिखते-लिखते शीघ्रता के कारण गजानन बन गया है। ओ३म् का

रूप,  ३०३ होता हुआ  इस प्रकार बन गया है।

इसमें अकार सिर और शरीर है, ओं (ॐ) का '।' यह भाग सूँड है, ओं का '॥' यह भाग एकदन्त है और ओं का (०) यह भाग मोदक है। प्लुत का '३' यह चिह्न मूषक वाहन है। इस प्रकार मोदकभोजी, मूषकारोही और एकदन्तधारी गजानन की उत्पत्ति हुई है।

तिलक महोदय ने C. Reginald Enock की 'The Secret of the Pacific' नामी पुस्तक के पृष्ठ २४८-५२ के आधार से गीतारहस्य पृष्ठ २९० पर लिखा है कि 'प्राचीन शोधकों ने यह भी निश्चय किया है कि मिथ्या आदि पुथिकी के पुरातन खण्डों के देशों में ही नहीं, किन्तु कोलम्बस के कुछ शतक पहले अमेरिका के पेरू तथा मेक्सिको देश में भी स्वस्तिक चिह्न शुभदायक माना जाता था'। यह स्वस्तिक भी ओ३म् का ही अपभ्रंश है। यहाँ भी ओंकार ही, ओं 

 हो गया है। जिस प्रकार यहाँ ओं का स्वस्तिक और गणपति बना है उसी प्रकार अमेरिका में भी बनाया गया है। हमने ओं और गजानन के विषय में जो कुछ लिखा है यह हमारी कल्पना नहीं है। गणेशपुराण में यह वर्णन शुरू में ही आया है। वहाँ स्पष्ट लिखा है कि—

ओंकाररूपी भगवान् यो वेदादौ प्रतिष्ठितः । यं सदा मुनयो देवा स्मरन्तीन्द्रादयो हृदि ॥  
आकाररूपी भगवानुक्तस्तु गणनायकः । यथा सर्वेषु कर्मेषु पूज्यते सो विनायकः ॥

—गणेशपुराण

अर्थात् गणपति ओंकाररूप ही हैं। इसी से सब कर्मों के आदि में उसकी पूजा होती है।

इस प्रमाण से हम कह सकते हैं कि ओंकार और स्वस्तिक की दुर्गति भारत अथवा अमेरिका में हुई, क्योंकि दोनों देशों में एक ही जाति के लोग हैं, अतः दोनों में ओंकार का एकसमान ही रूप पाया जाता है।

२. उनका रूप-रंग वैसा ही है जैसा नेपाल में बसे हुए कुछ लाल वर्णवाले मंगोलियनों का है। आर्यक्षत्रियों का रंग पूर्व में ही लाल हो चुका था, अतः पातालवासियों का रंग-रूप आर्यों के प्रारम्भिक रंग-रूप से दूर नहीं जाता। यद्यपि अमेरिका के जल-वायु ने भी उनपर बहुत बड़ा प्रभाव डाला है, जिससे उनके रूप-रंग में अन्तर पड़ा है, परन्तु वह इतना दूर नहीं गया कि आर्यों के साथ उनका मेल ही न हो सके।

१. The religious conception, on which the symbol of the feathered snake is based, is so widely spread over American soil that we can not at once assume it to have been borrowed from any similar neighbouring worship.—Harmsworth History of the World, p. 5771

३. उनकी कारीगरी और रिवाज भी उनको आर्य सिद्ध करते हैं। दुनिया में इजिप्ट के पिरामिड बहुत प्रसिद्ध हैं और उनमें रक्खे हुए हजारों वर्ष के मुर्दे भी प्रसिद्ध हैं। ये दोनों बातें कारीगरी की दृष्टि से बहुत अद्भुत हैं, परन्तु मज़ा यह है कि अमेरिका में भी ये दोनों बातें उसी प्रकार पाई जाती हैं, जिस प्रकार इजिप्ट (मिस्र) में<sup>१</sup>। इसके अतिरिक्त इजिप्ट से मिलती हुई इनकी दूसरी बात सूर्यपूजा है। वहाँ सूर्यदेवता के भी चिह्न पाये जाते हैं<sup>२</sup>।

हम गत पृष्ठों में अच्छी प्रकार सिद्ध कर आये हैं कि इजिप्टनिवासी भारतीय आर्य हैं। 'हार्म्सर्वर्थ हिस्ट्री आफ़ दी वर्ल्ड' में लिखा है कि 'इजिप्टवाले उत्तर अमेरिकन की ही भाँति हैं'<sup>३</sup>। इससे और भी दृढ़ हो जाता है कि पातालनिवासी भी आर्य ही हैं।

४. उनके इतिहास से तथा पूर्वकाल में उनके यहाँ भारतीयों के आने-जाने से भी ज्ञात होता है कि वे आर्य ही हैं। 'हार्म्सर्वर्थ हिस्ट्री आफ़ दी वर्ल्ड' में लिखा है कि उनके यहाँ अब तक रामसीतव नामी उत्सव होता है<sup>४</sup>। इस उत्सव के लिए 'मानवेर आदि जन्मभूमि' में बाबू उमेशचन्द्र विद्यारत्न लिखते हैं कि 'आज भी अमेरिका में रामसीतोत्सव होता है'<sup>५</sup>। इस प्राचीन इतिहास से भी वे भारतीय आर्य ही सिद्ध होते हैं। इसके अतिरिक्त उनके यहाँ वैवस्वत मनु की जलप्लावनवाली कथा भी अब तक चल रही है। इससे भी वे आर्य ही सिद्ध होते हैं और इसीलिए उनके यहाँ अनेक बार आर्यगण गये हैं। आर्य ही नहीं प्रत्युत अनेक बार यहाँ के निकाले हुए अत्याचारी आर्य, जिनको असुर वा राक्षस कहा जाता था, वे भी वहाँ गये हैं। चण्डीपाठ में लिखा है कि—

दैत्याश्च देव्या निहते शुम्भे देवरिपौ युधि । निशुम्भे च महावीर्ये शेषाः पातालमाययुः ।

—सप्तसती [८९। ३२]

अर्थात् जब शुम्भ और निशुम्भ राक्षसों को देवी ने मार डाला तब शेष जो बचे, वे भागकर पाताल (अमेरिका) को चले गये।

इनके सिवा यह सभी जानते हैं कि बलि नामक किसी राजा को भी पाताल देश में भेज दिया गया था। अमरकोष में लिखा है कि 'अधोभुवनपातालबलिसद्वरसातलम्। नागलोकोऽथ कुहरं सुषिरं विवरं बिलम्'\*, अर्थात् पाताल, रसातल और बलि का घर आदि सब एक ही वस्तु हैं। नागलोक भी उसी को कहा गया है। इस नागलोक या पातालदेश में राजा बलि की राजधानी दक्षिण अमेरिका में बलिविया (Bolivia) नाम से प्रसिद्ध है। अमेरिकावालों का आदिस्थान

१. The question may be left undecided as to whether the modern designation of the most important Pyramids of Teotihuacan as 'the hill of Sun, the hill of the Moon' has been justified by archaeological inquiry, at any rate, the name 'path of the dead' is correct for the long range of little hills which stretches out behind the larger Pyramids. Teotihuacan was, like Mitla, not only a place of pilgrimage for the living, but also a sacred place in which to be buried was to be sure of salvation.

—Harmsworth History of the World, p. 5775.

The custom of preserving the bodies of the dead prevailed among the early people of America. The illustration shows a mummified body prepared for burial.

—Ibid. p. 5829.

२. The Piece of terra-cotta here illustrated showing the sun-god of the ancient people of Chimu was discovered near Trujillo by Mr. T. Hewitt Myring. Its antiquity is undoubtedly dating possibly to 5,000 B.C.

—Ibid. p. 5817.

३. Its people were more like north American Indian than anything else.

—ibid. p. 2014.

४. Of a different character was the third feast or Situa Raimi, which fell at the time of the spring equinox in September.

—Ibid. p. 2014.

५. एखनउ दक्षिण अमेरिकाय रामसीताया उत्सव सम्बन्ध हइया थाके।

—मानवेर आदि जन्मभूमि

\* अमर० प्रथम० पाताल० १

यही है<sup>१</sup>। हिन्दी विश्वकोष के उपनिवेश शब्द में लिखा है कि 'आनाम में खोदने पर बहुत-से शिलालेख निकले हैं, जिनसे पाया जाता है कि इनके राजाओं की उपाधि सूर्यवंशी इन्द्र थी। सम्भव है, अङ्गदेश से सूर्यवंशी राजकीय शाखा अमेरिका में 'इङ्ग' नाम से प्रसिद्ध हुई हो। पीरू के भवनों और पहाड़ों में बनाई हुई गुफाएँ भारत से मिलती हैं'। इन इतिहासों से भी उनका आर्य ही होना पाया जाता है।

५. भारतदेश में ही उनके सम्बन्ध में अधिक जानकारी पाई जाती है। अब तक जो कुछ लिखा गया है क्या उससे यह नहीं पाया जाता कि भारतदेश उस देश के मूल को केवल जानता ही नहीं था, प्रत्युत भारत के ही निवासी वहाँ जाकर बसे हैं? भारत में प्राचीन-से-प्राचीन और नवीन-से-नवीन साहित्य में अमेरिकावालों की चर्चा विद्यमान है। ऐतरेयब्राह्मण ८। ३८। ३ के ऐन्द्रा महा अभिषेक प्रकरण में लिखा है कि 'तस्मादेतस्यां प्रतीच्यां दिशि ये के च नीच्यानां राजानो येऽ पाच्यानां स्वाराज्यायैव तेऽ भिषिच्यन्ते स्वराक्षित्येनानाभिषिक्तानाचक्षते'। इसमें नीच्यों और अपाच्यों के राजाओं का वर्णन है और कहा गया है कि ये पश्चिम दिशा में हैं। भूगोल के ज्ञाता जानते हैं कि अमेरिका का मध्यभाग भारत से पश्चिम में ही है। उत्तर अमेरिका के मेक्सिको स्टेट में अपाच्य नामक मूल निवासी अब तक रहते हैं, जिससे जाना जाता है कि अति प्राचीन आर्यसाहित्य में पातालवासियों का वर्णन है। इसके अतिरिक्त महाभारत में लिखा है कि उद्धालक मुनि पाताल में ही निवास करते थे, अर्जुन की उलोपी स्त्री भी वहीं की थी और वेदव्यास भी एक बार वहाँ गये थे। ये सब बातें स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपने 'सत्यार्थप्रकाश' में लिखी हैं। इससे ज्ञात होता है कि महाभारत के युद्ध तक आर्यों का अमेरिका में गमनागमन अच्छी प्रकार था, किन्तु वहाँ सर्वप्रथम वह आर्यजाति गई जो अपने साथ स्वस्तिक, गजाननपूजा, नागपूजा और रामसीतोत्सव आदि भाव ले-गई।

इस प्रकार उक्त पाँचों प्रश्नों का यही उत्तर आता है कि मूल अमेरिका-निवासी भारतीय आर्य ही हैं, इसमें सन्देह नहीं। हमने इस प्रकार से यहाँ तक सारे भूगोल के प्रधान-प्रधान देशों में शुद्ध आर्यों की शाखा अथवा उनकी मिश्रित प्रशाखाओं को ही बसते हुए पाया, अतः हमारा यह दावा है कि आदि में वैदिक आर्य ही पैदा हुए और उन्हीं की शाखा-प्रशाखाएँ सारे संसार में फैली हैं। यहाँ तक वर्णित देशों के अतिरिक्त हमने जिन देशों का वर्णन नहीं किया, वे बहुत थोड़े हैं और उनमें इन वर्णित देशों की ही शाखा-प्रशाखाएँ बसती हैं, अतएव आर्यों से ही सारी पृथिवी बसी हुई दिखाई देती है। 'हार्म्सवर्थ हिस्ट्री आफ दी वर्ल्ड' में संसार की समस्त पुरानी जातियों के चित्र दिये हुए हैं। उन चित्रों में सबके पास धनुषबाण पाया जाता है, जिससे ज्ञात होता है संसार की समस्त जातियाँ आदि में धनुषबाण चलाती थीं। धनुषबाण आर्यों का ही शस्त्र है, इसमें प्रमाण देने की आवश्यकता नहीं है, अतः सिद्ध है कि संसार के भिन्न-भिन्न देशों में बसनेवाले एक वंश के हैं और वह महान् वंश आर्यवंश ही है।

दुःख से कहना पड़ता है कि आर्यों से पृथक् होकर समस्त शाखाएँ आचारहीन होकर अनार्य हो गई। वैदिकता नष्ट होने से ही अनार्यता होती है। वैदिकता का अर्थ वर्णाश्रम धर्म का पालन है। वर्णाश्रमधर्म के नष्ट होते ही वैदिकता नष्ट हो जाती है और अनार्यता आ जाती है।

१. Now as we find them on the Eastern slopes of the Cordillers from the peninsula of Goujira in the north down to the borders of Chili and in specially large numbers in Eastern Bolivia, the original home of all these tribes is probably to be sought in this direction.

अब तक के विस्तृत वर्णन के द्वारा हम दिखला आये हैं कि वैदिक आर्यों में विद्या न पढ़ने, आचारहीन होने और पूज्यों की आज्ञा भंग करने से ही अनार्यता का प्रवेश आरम्भ हुआ। उन्होंने उसे तुरन्त ही ताड़ लिया और आचारहीनों को जाति बाहर करके ही शेष आर्यसमाज को पवित्र रखने का प्रबन्ध किया, परन्तु त्यक्त समुदाय जाति अपमान से लज्जित होकर शत्रुभाव से वैदिकों से लड़ता रहा, अतः कभी पराजित होकर, कभी अपनी इच्छा से और कभी निर्वासित होकर पृथिवी के अन्य भागों में जा-जाकर बस गया। उन बसे हुओं के साथ व्यापार करने, उनपर राज्य करने और उपदेश करने के लिए भी यहाँ से आर्यगण समय-समय पर जाते रहे और वहाँ बस गये तथा पूर्व बसे हुओं के साथ मिल भी गये। इस प्रकार समस्त भूभाग पतित आर्यों से वासित हो गया और यहाँ की परिभाषा के अनुसार पतित विदेशी आर्य असुर, राक्षस, अनार्य, कपि, महिष, नाग और जाने किन-किन नामों से पुकारे जाने लगे। कुछ ही समय में शुद्ध वैदिक धर्म और शुद्ध आर्य शासन के अभाव से उनके बिंगड़े हुए स्वभाव और भी अधिक उग्र हो गये और नाना प्रकार के अनाचार, असभ्य रिवाज, मूर्खताजन्य पाप, और जंगली स्वभाव ने उनको मनुष्य-शरीर में ही पशु बना दिया।

जिन देशों का वर्णन हमने इस प्रकरण में किया है उन देशों के रहनेवालों के रीति-रिवाजों, आचार व्यवहारों और धर्म-कर्मों तथा विश्वासों का विस्तारपूर्वक वर्णन उन-उन देशों का इतिहास लिखनेवालों ने किया है, जिससे उनकी असभ्यता और अनार्यता का पता मिल जाता है। हम यहाँ विस्तारभय से वह सब नहीं लिखना चाहते। हम तो यहाँ केवल यही दिखलाना चाहते हैं कि भारतीय आर्यों ने उनको इस पतित दशा से छुड़ाने के लिए उनमें धर्मप्रचार का आयोजन किया। उन्होंने देखा कि बहिष्कार से लाभ के स्थान में हानि भी हुई है। एक बहुत बड़ा मनुष्यसमाज आचारहीन और पापी हो गया है तथा शत्रु होकर समय-समय पर दुःख देने लगा है और आर्यजनता उनसे सर्वकित रहने लगी है। इस शंका के उद्धार के लिए आर्यों ने धर्मप्रचार की सर्वोत्कृष्ट नीति का आयोजन किया। जातिबहिष्कार अथवा कठोर शासन की अपेक्षा धर्मप्रचार के द्वारा लोगों के मन पवित्र कर देना सब सुधारों की जड़ समझा, इसलिए उन्होंने एक बहुत ही उत्तम क्रान्तून बनाया। उस क्रान्तून में लिखा कि—

**एतदेशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः । स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ।**

—मनुस्मृति [ २। २० ]

अर्थात् ब्रह्मावर्त के रहनेवाले ब्राह्मणों से समस्त पृथिवी के मनुष्य अपने चरित्र सीखें।

क्रान्तून तो बन गया, परन्तु संसार के लोग इसे मानें कैसे और अपने-अपने चरित्र सुधारें कैसे? सुधार तभी हो सकता था कि या तो संसार के लोग यहाँ आवें या यहाँवाले उन-उन देशों में जाएँ। दोनों दशाएँ उपस्थित हुईं। इतिहास से पता मिलता है कि ईरान, सीरिया, ग्रीस और चीन आदि देशों से लोग यहाँ शिक्षा ग्रहण करने के लिए आया करते थे<sup>१</sup>। यहाँवाले भी

१. ईरान का जामास्प हकीम भारत में प्रतिवर्ष आया करता था और जैमिनि का शिष्य हुआ था। इसी प्रकार तिब्बत में हज़रत ईसा का एक पुराना जीवन-चरित्र मिला है उससे पाया जाता है कि हज़रत ईसा ने भारत में आकर धर्म के सिद्धान्त सीखे और बहुत दिन तक काशी आदि स्थानों में रहे। चीन निवासी सोमाचीन तथा फ़ाहियान और ह्यूनत्सांग आदि भी विक्रम की चौथी शताब्दी में यहाँ से पुस्तकें ले-गये, संस्कृत जानेवाले अनेक ब्राह्मण ले-गये और स्वयं अनेक बातें सीखकर गये।

The doctrine of the transmigration of souls indigenous to India was brought into Greece by Pythagoras. —History of Literature.

We find that it (India) was visited for the purpose of aquiring knowledge by Pythagoras, Anaxarches, Pyrrhs, and others who afterwards became eminent philosophers in Greece. —History of Philosophy.

आस्ट्रेलिया, अमेरिका, सीरिया, ग्रीस और चीन आदि देशों में शिक्षा देने के लिए जाया करते थे। ऋषि पुलस्त्य धर्मप्रचार करने के लिए आस्ट्रेलिया गये, वेदव्यास अमेरिका और बलख को गये, बौद्ध संन्यासी पेलिस्टाइन, ग्रीस और चीन को जाते रहे,<sup>१</sup> अर्थात् पुलस्त्य से लेकर सन् ईस्वी के आरम्भ तक आर्य ऋषि-मुनि और संन्यासी वैदिक धर्म का प्रचार दूसरे देशों में करते रहे और वहाँ के असभ्य लोगों में सभ्यता का संचार होता रहा। धर्मप्रचार होता रहा, परन्तु इस गमनागमन से जहाँ कुछ लाभ हुआ होगा वहाँ हानि भी इतनी हुई है कि जिसकी पूर्ति होना कठिन है। हम देखते हैं कि गमनागमन के संसर्ग से उन-उन देशों के पतित मनुष्यों का आगमन इस देश में समय-समय पर हुआ, जिससे आर्यों में भी अवैदिकता का समावेश हुआ। इस प्रकार जातिबहिष्कार, धर्मप्रचार और पुनः जातिसम्मिलन आदि जितने कुछ आर्योंचित मृदु उपाय अब तक हुए हैं सबके परिणाम में लाभ के साथ-साथ कुछ-न-कुछ हानि भी हुई है। आगे हम उसी आगमन, सम्मेलन और तज्जन्य हानि का वर्णन करते हैं।

### विदेशियों का भारत में आगमन

गत पृष्ठों में हम लिख आये हैं कि भारतवर्ष से अनेक जातियाँ पृथिवी के अनेक भागों में जाकर बस गईं और दीर्घकाल तक वैदिक आर्यों से पृथक् रहने के कारण अपने स्वभाव, रूप-रंग, शकल-सूरत और आचार-व्यवहार को बदल-बदलकर कुरुप और अनाचारिणी हो गई। यहाँ के प्रवासियों, धर्मप्रचारकों और व्यापारियों तथा राजनैतिक यात्रियों ने उन-उन देशों में सभ्यता का प्रचार किया, इसलिए उनके सहारे विदेशियों का इस देश में फिर आना शुरू हुआ।

हमारा दृढ़ विश्वास है कि जिन लोगों ने अनार्यता को जन्म दिया था और अपनी अनार्यता के कारण विदेश को भागे थे, उन्हीं लोगों ने यहाँ आकर, आर्यों में मिलकर, अवैदिकता और अनार्यता का प्रचार किया, जिससे आर्यों का हर प्रकार से पतन हुआ। यह इतिहास-सिद्ध बात है कि इस देश में पृथिवी के प्रायः सभी प्रधान-प्रधान देशों के लोग आकर बसे हैं। यहाँवालों ने उनके साथ रोटी-बेटी का व्यवहार करके अपने में सम्मिलित किया है। बहुतों को तो अपना गुरु मान लिया है और उनके उपदेशों को मानकर अपना सर्वस्व नष्ट कर लिया है। यह सर्वथा सत्य है कि प्राचीन काल में अनार्यों को आर्यधर्म में सम्मिलित करने का रिवाज था। पण्डित गौरीशंकार हीराचन्द्र ओझा राजपूताने के इतिहास में लिखते हैं कि 'वैदिक काल में ब्रात्य, अर्थात् पतित एवं विधर्मियों को वैदिक धर्म में लेने के समय 'ब्रात्यस्तोम' नामक शुद्धि की एक क्रिया होती थी, जिससे उन ब्रात्यों की गणना द्विजवर्णों में हो जाती थी। ब्रात्यस्तोम का वर्णन सामवेद के ताण्ड्यब्राह्मण प्रकरण १७ और लाट्यायनश्रौतसूत्र (६।८) में मिलता है। इससे विदितो होता है कि आर्यों ने बिछुड़े हुए अपने पतित भाइयों को फिर से आर्यसमाज में प्रविष्ट किया। यहाँ हम इस प्रकरण में विदेशियों का इस देश में आना, उनके आचार-व्यावहार की रूपरेखा, आर्यों के साथ उनका सम्मेलन और साहित्य-प्रचार आदि विषयों को विस्तारपूर्वक लिखते हैं जिससे ज्ञात हो जाएगा कि किस प्रकार इन विदेशियों ने वेदों की उपेक्षा की और वह उपेक्षा किस प्रकार हमारे पतन का कारण बनी।

### विदेशियों के प्रथम दल का आगमन

सबसे प्रथम जिन विदेशियों के भारत-प्रवेश का इतिहास मिलता है, वह आस्ट्रेलिया

१. A very considerable portion of these people was of the Budhistic faith and by their number and material powers ultimately succeeded in expelling from northern Greece the classes of the Solar race.  
—India in Greece

निवासियों का है। हमने पूर्व पृष्ठों में कहा है कि ऋषि पुलस्त्य धर्मप्रचार के लिए आस्ट्रेलिया गये थे, परन्तु वहाँ के राजा तृणबिन्दु की पुत्री से उनका विवाह हो गया। उसी से विश्रवा पैदा हुआ जो प्रसिद्ध राजा रावण का पिता था<sup>१</sup>। रावण कैसा विद्वान् और योद्धा था, यह किसी से छिपा नहीं है। उसने राजा होकर समस्त दक्षिणी टापुओं (आस्ट्रेलिया, अफ्रीका, मेडेगास्कर और उस समय के अन्य खुले द्वीपों) को अपने अधिकार में करके चारों ओर से समुद्र द्वारा घिरा और बड़ी-बड़ी सोने की खानों से भरा हुआ लङ्घाद्वीप अपनी राजधानी के लिए चुना और वहाँ पर अपनी राजधानी निश्चित कर दी। कुछ काल के पश्चात् रामेश्वर के पास से लङ्घा तक पढ़े हुए खण्ड पहाड़ों के द्वारा थोड़े-से नावों के बेड़ों के सहरे लङ्घानिवासी रावण आदि दक्षिण भारत में आने-जाने लगे। वे जिस मार्ग से आते-जाते थे उस मार्ग के चिह्न अब तक बने हुए हैं। भगवान् रामचन्द्र ने पूर्वकाल में उन्हीं पहाड़ी भग्नावशेषों पर पुल बनाया था। इस पुल के इस पार मद्रासप्रान्त में आर्यों द्वारा निर्वासित कुछ पतित आर्य ही रहते ही थे और जाति-अपमान के कारण आर्यों से द्वेष भी रखते थे, अतः इनकी उनके साथ मित्रता होना सरल और सहज था। हुआ भी वही, दोनों दल दक्षिणप्रान्त के अनेक स्थानों में रहने लगे। पहले के पतित आर्य अपने को आर्य और आनेवाले नवीनों को अनार्य कहा करते थे। ये दोनों शब्द मद्रास-निवासियों में अब तक अन्यर और नन्यर के रूप से प्रचलित हैं, जो वास्तव में आर्य और अनार्य के अपभ्रंश हैं। मद्रास प्रान्तवाले महाशय या जनाब के स्थान में अब तक 'अन्य' शब्द का प्रयोग करते हैं जो आर्य का ही रूपान्तर है। इन दोनों दलों में नवीन दल बहुत ही काले रंग का था। वह असभ्य भी था, इसीलिए उसे अनार्य कहा करते थे। दुर्देव से रावण का उसके बहनोई, अर्थात् सूर्पणखा के पति से युद्ध हो गया। युद्ध में रावण के हाथ से सूर्पणखा का पति मारा गया। सूर्पणखा विलाप करती हुई रावण के पास गई और कहने लगी कि तूने मुझे विधवा कर डाला अब मैं क्या करूँ। सान्त्वना के लिए रावण ने सूर्पणखा से कहा कि तू शोक मत कर, मैं तुझे खर नामक योद्धा की सरदारी में चौदह सहस्र फौज देकर भारत के दक्षिण अरण्य की स्वामिनी बनाता हूँ। वहाँ जा और आनन्द कर। तदनुसार वह राक्षसों की फौज के साथ दण्डकारण्य मेरहने लगी<sup>२</sup>।

इस प्रकार रावण का सैनिक बल आर्यों के देश में जम गया। इसी बीच में कारणवशात् रामचन्द्र को वनवास हुआ। वे धूमते हुए दण्डकारण्य पहुँचे। उनपर सूर्पणखा आसक्त हुई और आगे जो हाल हुआ वह सबको ज्ञात है। इस प्रकार मद्रास प्रान्त में वैदेशिक अनार्यों का आगमन और सम्मिश्रण हो गया। अन्यर और नन्यर सब एक ही प्रकार के हो गये और वनवासी आर्य तपस्वियों की दुर्गति करने लगे। बहुत दिन के बाद समय पाकर नागा पर्वत के नाग लोग भी इनमें आ मिले और अन्त में इनकी एक शाखा अफ्रीका से भी निकलकर मेसोपोटामिया होती हुई यहाँ

१. पुरा कृतयुगे राम प्रजापतिसुतः प्रभुः। पुलस्त्यो नाम ब्रह्मिः साक्षादिव पितामहः॥  
स तु धर्मप्रसङ्गेन मेरोः पाश्च महागिरेः। तृणबिन्दाश्रमं गत्वाप्यवसन्मुनिपुंगवः॥

—वाल्मीकि रामायण [उत्तर० २।४, ७]

२. अब्रवीत् किमिदं भद्रे वक्तुकामासि मां द्रुतम्। सा बाष्पपरिरुद्धाक्षी रक्ताक्षी वाक्यमब्रबीत्॥ २६॥  
कृतास्मि विधवा राजस्त्वया बलवता बलात्॥ २७॥

स त्वया निहतो युद्धे स्वयमेव न लज्जसे। एवमुक्तो दशग्रीवो भगिन्या क्रोशमानया॥ ३१॥

अब्रवीत् सन्त्वयित्वा तां सामपूर्वमिदं वचः। अलं वत्से रुदित्वा ते न भेतव्यं च सर्वशः॥ ३२॥

भ्रातुरैश्वर्ययुक्तस्य खरस्य वस पाश्रतः। चतुर्दशानां भ्राता ते सहस्राणां भविष्यति॥ ३६॥

आगच्छत खरः शीघ्रं दण्डकानकुतोभयः। स तत्र कारयामास राज्यं निहतकण्टकम्।

सा च सूर्पणखा तत्र न्वसद्दण्डके वने॥ ४२॥

—वाल्मीकि रामायण [उत्तर० सर्ग २४]

आ गई<sup>१</sup>। इस प्रकार इनका एक अच्छा जमाव यहाँ हो गया। आस्ट्रेलिया से आये हुए इन लङ्कनिवासियों का क्या स्वभाव था और यहाँ के रहनेवालों के साथ उनका क्या व्यवहार था, यह सब लिखने से पूर्व यह जानना आवश्यक है कि ये आस्ट्रेलियानिवासी हैं या नहीं।

हमारे देश का इतिहास जो हमने बाल्मीकि रामायण से उद्भूत करके पिछले पृष्ठ में लिखा है यही कहता है कि ये लोग दक्षिण मेरु के पास स्थित एक पहाड़ी देश के रहनेवाले थे, जहाँ का राजा तृणबिन्दु था। वहाँ से लंकाद्वीप होते हुए बहुत पहले ही ये द्रविड़ देश में बस गये थे। महाभारत\* में लिखा है कि—

**नन्दिन्या गोस्तनात्पूर्वं जातैम्लेच्छैर्विनिर्मितः । द्राविडाख्यो महादेशः स्ववासायेति निश्चितम् ॥**

अर्थात् वसिष्ठ के नन्दिनी गौ की कथा के पूर्व ही म्लेच्छ जातियों ने द्रविड़ देश बसा लिया था।

बाल्मीकि रामायण और महाभारत के इन दोनों प्रमाणों से इनका आस्ट्रेलिया से आना सिद्ध होता है। इन प्रमाणों के अतिरिक्त इनकी भाषा, रूप, गठन आदि के मिलान से पाश्चात्य विद्वानों ने भी निश्चित कर दिया है कि ये आस्ट्रेलिया निवासी ही हैं। भारतवर्ष के इतिहास में ५०० मार्सडन बी० ए० लिखते हैं कि कुछ लोग सोचते हैं कि द्रविड़ लोग दक्षिण से आये अथवा उस देश से आये जो अब दक्षिणी महासागर में ढूब गया है और दिखलाई नहीं पड़ता या उन टापुओं से आये जो एशिया और आस्ट्रेलिया के दक्षिण-पूर्व से जुड़े थे और अब समुद्र में ढूब गये हैं<sup>२</sup>। इसी प्रकार मिस्टर मैनिंग अपने 'प्राचीन और मध्यान्तरीय भारत' नामी ग्रन्थ में अनेक विद्वानों की सम्मतियों को उद्भूत करते हुए लिखते हैं कि मिस्टर नॉरिस की सम्मति है कि सब द्रविड़ भाषाएँ एक-दूसरी से सम्बन्ध रखती हैं। इतना ही नहीं, प्रत्युत वे आगे बढ़कर यह कहते हैं कि द्रविड़ और आस्ट्रेलिया की भाषाओं में निश्चितरूप से घनिष्ठ सम्बन्ध हैं। मिस्टर जान हट्ट भी जो बहुत दिन तक आस्ट्रेलिया में रहे हैं, वे भी इसी प्रकार कहते हैं। साथ ही डॉक्टर रोस्ट का भी यही विचार है। वे भी कहते हैं कि आस्ट्रेलिया-निवासियों, मंगोलियनों और भारतीय द्रविड़ों की भाषा के व्याकरण का साँचा सर्वथा एक ही है<sup>३</sup>। मिस्टर क्लैडवेल कहते हैं कि इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि सीलोन—लंका से आकर लोगों ने दक्षिणी ज़िलों में निवास किया है<sup>४</sup>।

१. इसी को वेदम वेंकट चालिया बी० ए० ने लिखा है कि ५०० वर्ष ईस्वी सन् पूर्व भारत में आई, परन्तु यह बात गलत है। इसको आये बहुत दिन हुए।

२. Other think that the Dravids came from the south, either from a great country which very long ago stretched far into the Indian Ocean to the south of India, but now lies sunk beneath the sea and can not be seen, or from the islands which stretch away from the south-east of Asia to Australia, and were formerly joined to it by land now sunk beneath the sea.

—History of India by E. Marsden, B.A.

३. Mr. Norris fully concurs in this opinion but further observers decided relationship between these languages and those of Australia.

Mr. John Hutt, who was long resident in Australia, has simultaneously made the discovery and for the truth of these observations Dr. Rost of the Royal Asiatic Society of London may be cited as another independent witness, he having in 1847, submitted a memoir on the subject to the late Chevalier Bunsen. Dr. Rost considers it an undeniable fact that the grammatical skeleton of the Australian, Mongolian, and South Indian languages is essentially the same.

—Ancient and Medieval India

४. It is undeniable that immigration from Ceylon to the southern districts of India has occasionally taken place.

—Comparative Grammar of Dravidian Languages, p. 118

\* हमें बहुत खोजने पर भी यह श्लोक महाभारत में नहीं मिला।

—जगदीश्वरानन्द

इन प्रमाणों से अच्छी प्रकार प्रकट हो जाता है कि ये द्रविड़ दक्षिण टापुओं के, अर्थात् आस्ट्रेलिया आदि के रहनेवाले हैं। इन्हीं को यहाँवाले असुर, राक्षस, नाग, महिष और कपि आदि कहते थे<sup>१</sup>। इनके ये नाम अन्यायवश नहीं रखे गये थे, किन्तु इनके कर्म ही इस प्रकार के थे। यह बात बहुत पुराने जमाने से प्रसिद्ध है कि इन असुरों, राक्षसों, यक्ष, और पिशाचों का स्वाभाविक खाना-पीना मांस-मद्य था। मनुस्मृति अध्याय ११ श्लोक ९५ में लिखा है कि 'यक्षः रक्षपिशाचान्नं मद्यं मांसं सुरासवम्', अर्थात् मद्य-मांस आदि अभक्ष्य पदार्थ ही यक्ष, रक्ष और पिशाचों का अन्न है। इसी प्रकार वाल्मीकि रामायण में लिखा है कि—

**भक्ष्यन्ते राक्षसैर्भीमैर्नरमांसोपजीविभिः । ते भक्ष्यमाणा मुनयो दण्डकारण्यवासिनः ॥**

—वा०रा० [अरण्य १०।६]

अर्थात् ये मनुष्यमांस खानेवाले राक्षस दण्डकारण्यवासी मुनियों को खा जाते हैं।

इन्हीं लोगों में से मारीच और सुबाहु विश्वामित्र के यज्ञ में क्या-क्या कृत्य करते थे वह भी देखने योग्य है। वाल्मीकि रामायण बालकाण्ड में लिखा है कि 'तौ मांसरुधिरौघेण वेदिं तमभ्यवर्षताम्'<sup>२</sup>, अर्थात् मांस और रुधिर से यज्ञवेदी को पाट दिया था। विश्वामित्र रामचन्द्रजी से कहते हैं कि—'इमौ जनपदौ नित्यं विनाशयति राघव'<sup>३</sup>, अर्थात् हे राम! इन लोगों ने इसी तरह इन दोनों राज्यों का सत्यानाश कर दिया है। इसी प्रकार रामचन्द्र जिस समय दण्डकारण्य में पहुँचे उस समय भी वहाँ के तपस्वियों ने उनसे कहा कि—

**रक्षांसि पुरुषादानि नानारूपाणि राघव । वसन्त्यस्मिन् महारण्ये व्यालाश्च रुधिराशनाः ॥**  
**उच्छिष्टं वा प्रमत्तं वा तापसं ब्रह्मचारिणम् । अदन्त्यस्मिन् महारण्ये तान्निवारय राघव ॥**

—वाल्मीकि रामायण [अयो० ११९।१९, २०]

अर्थात् हे राम! इस अरण्य में अत्यन्त क्रूर और मनुष्यभक्षक लोग रहते हैं। वे हम तपस्वियों और ब्रह्मचारियों को मार कर खा जाते हैं, अतः किसी प्रकार इनका निवारण कीजिए।

रामचन्द्र को एक दिन इनमें से विराध नामक एक राक्षस मिला। वह 'वसानं चर्मवैयाद्यं वसार्द्धं रुधिरोक्षितम्'<sup>४</sup>, अर्थात् चर्बी और रुधिर से सना हुआ व्याघ्रचर्म पहने हुए था। इसी प्रकार एक दिन ऋषियों ने रामचन्द्र को अस्थियों का एक ढेर दिखलाकर कहा कि—

**एहि पश्य शरीराणि मुनिनां भावितात्मनाम् । हतानां राक्षसैर्धोरैर्बहूनां बहुधा वने ॥**

**पम्पानदीनिवासानामनुमन्दाकिनीमपि । चित्रकूटालयानां च क्रियेत कदनं महत् ॥**

**ततस्त्वां शरणार्थं च शरण्यं समुपस्थिताः । परिपालय नो राम वध्यमानन्निशाचरैः ॥**

—वा०रा०, अरण्य ६। १६, १७, १९

अर्थात् राक्षसों द्वारा खाये हुए ऋषियों के ढेर देखिए। पम्पा नदी से चित्रकूट तक तमाम अरण्य-वासियों का इन्होंने नाश कर दिया है, अतः हम आपके शरणागत हैं, इनको मारकर हमें बचाइए।

इन अत्याचारों के अतिरिक्त ये आर्यों की कन्याओं को बलात् अपने घर में डाल लेते थे। उनका कौमार्य नष्ट हो जाता था और वे हारकर उन्हीं को अपना पति मान लेती थीं, इसीलिए

१. They are called Dasas, other native tribes are called Nagas, Asuras, Danvas and Deityas. They are said to be black-skinned, to have a vile colour, to eat raw flesh, to have flat noses and to have no religion.  
—History of India, by E. Marsden.

२. वा०रा० बाल० २१।६

३. वा०रा० बाल० २४।२८

४. वा०रा० अरण्य० २।६

राक्षस, असुर और पैशाच विवाह भी धर्मशास्त्र में सम्मिलित करने पड़े<sup>१</sup>। इनके कर्मों का चित्र तुलसीदास ने भी खूब अच्छी प्रकार खींचा है। वे कहते हैं—

कामरूप जानहिं सब माया । सपनेहु जिनके धर्म न दाया ॥  
जेहि विधि होय धर्मनिर्मूला । सो सब करहिं वेदप्रतिकूला ॥  
जेहि जेहि देश देव द्विज पावहिं । नगर ग्राम पुर आगि लगावहिं ॥  
शुभ आचरण कतहुँ नहि होई । वेद विप्र गुरु मान न कोई ॥  
हिंसा पर अति प्रीति तिनके पापन कौन मिति ।  
रावण माँगे कोटि घट मद अरु महिष अनेक ॥  
महिष खाय करि मदिरा पाना । गर्जेउ वज्रपात अनुमाना ॥  
जाय कपिन देखा सो वैसा । आहुति देत रुधिर अरु भैंसा ॥  
सुरा पान अरु परतिय भोगा ।

उपर्युक्त वर्णन से उनके कर्म, प्रवृत्ति और आचरण आदि का पता मिलता है। आरम्भ में उनके ये कर्म स्वाभाविक थे, परन्तु पीछे से आर्यों से द्वेष के कारण वे अधिक बढ़े और अन्त में वही धर्म बन गये। धर्मरूप से इस प्रकार की दो-तीन रिवाजें इनमें अब तक शेष हैं। ता० २६ नवम्बर सन् १९१६ के 'गुजराती' पत्र में एक समाचार इस प्रकार छपा था कि 'श्री जीवरक्षा ज्ञानप्रचारक फ़ण्ड' (दक्षिण हैदराबाद) की ओर से मिस्टर कें एन० जोषी लिखते हैं कि यहाँ के विश्वनामी ब्राह्मणों में यह रिवाज है कि किसी भी शुभ अवसर पर बकरे का मांस अपनी जाति-बिरादरी को खिलाते हैं और मदिरा पिलाते हैं'। इनके यहाँ एक और रिवाज है जो अनार्यों का ही है। इसके सम्बन्ध में 'भारत ना स्त्रीरत्नों' नामी गुजराती पुस्तक के पृ० ६२० पर रानी लम्मीबाई की कथा में लिखा है कि 'दक्षिण में मलाबार प्रदेश है। वहाँ के निवासी मलियाली कहलाते हैं। मलाबार में कोचीन और ट्रावनकोर दो देशी राज्य हैं। ट्रावनकोर राज्य में स्त्रियाँ बहुत स्वतन्त्र हैं। वहाँ वारसा (दायभाग) में स्त्रियों का अधिकार मुख्य है। विवाह में वर को स्त्री ही पसन्द करती है। मलाबार के हिन्दुओं में हिन्दूशास्त्र-सम्मत विवाह-पद्धति प्रचलित नहीं है। नाम्बुद्री ब्राह्मणों में सबसे बड़ा लड़का ही विवाह कर सकता है, दूसरे लड़के नहीं। दूसरे लड़के शूद्र (नव्यर) जाति की लड़कियों से विवाह करते हैं। वे उन स्त्रियों के हाथ का पानी नहीं पीते। वे स्त्रियाँ अपने माँ-बाप के घर पर ही रहती हैं। पति रात के समय स्त्री के घर और दिन के समय अपने घर में रहता है, इसलिए उनकी सन्तति माता को ही अधिक जानती हैं, पिता को नहीं। वे मामा को ही अपना कुटुम्बी समझते हैं। यही कारण है कि वहाँ मामा का उत्तराधिकारी भानजा ही होता है। इस प्रकार नव्यर स्त्रियाँ स्वतन्त्रतापूर्वक पति-वरण करके माता पिता के ही घर रहकर जीवन बिताती हैं। ऐसे विवाहों के लिए शास्त्रानुसार संस्कार नहीं करना पड़ता'।

इन वर्णनों से प्राचीन राक्षसों और वर्तमान पतित द्रविड़ों का मेल बहुत कुछ मिलता है। यद्यपि विशुद्ध द्रविड़ सब कार्य आर्योचित रीति से ही करते हैं, किन्तु उनमें ये अनार्योचित रीतियाँ नवीन ही हैं। प्राचीन अनार्यों ने तो रावण के समय में अपनी प्रवृत्ति के अनुसार आर्यों के

१. हत्वा छित्त्वा च भित्त्वा च क्रोशन्तीं रुदतीं गृहात् । प्रसह्य कन्याहरणं राक्षसो विधिरुच्यते ॥

सुप्तां मत्तां प्रमत्तां वा रहो यत्रोपगच्छति । स पापिष्ठो विवाहानां पैशाचश्चाष्टमोऽधमः ॥

ज्ञातिभ्यो द्रविणं दत्त्वा कन्यायै चैव शक्तिः । कन्याप्रदानं स्वाच्छन्द्यादासुरो धर्म उच्यते ॥

साथ द्वेष से जो अत्याचार किये थे उनका यदि वर्गीकरण करें तो ज्ञात होगा कि उनके स्वभाव में मनुष्यमांस खाना और पशु मारना था। वे महाव्यभिचारी थे, शराब पीते थे, मांस-रुधिर से यज्ञ करते थे और जंगलों का नाश करते थे। पञ्चतन्त्र में ठीक ही कहा है कि राक्षस लोग 'वृक्षांश्छित्वा पशून् हत्वा कृत्वा रुधिरकर्दमम्', अर्थात् जंगल काटना, पशु मारना और मनुष्यों का खून करना तो उनके बायें हाथ का खेल था। वृक्ष, पशु और ऋषि-मुनि जो आर्यों की प्रधान सम्पत्ति है, ये उसी को नष्ट करते थे। इनमें ऐसे अनेक अवगुण थे, परन्तु इनमें से कई एक आर्यों के समागम तथा ऋषि पुलस्त्य आदि के कारण संस्कृतभाषा भी सीखते थे। रावण संस्कृत का बहुत बड़ा पण्डित था। यही कारण है कि इनके यहाँ दोनों भाषाएँ चलती थीं। आर्यों में घुसने के लिए ये संस्कृत को अपनाते जाते थे, परन्तु इनके घर की भाषा द्रविड़ ही थी। यह बात अब तक बनी हुई है। द्रविड़ और कोल दोनों जातियाँ अपनी और आर्यों की भाषा साथ-ही-साथ सीखती हैं। वे संस्कृत अथवा प्रान्तिक आर्यभाषा अवश्य जानती हैं। इनसे सम्बन्ध रखनेवाले गोंडों ने सन् १८९१ की जनगणना में अपने को रावणवंशी लिखवाया है। छत्तीसगढ़ के गोंड राजा संग्रामशाह के जो सिक्के मिले हैं उनमें उसका पौलस्त्यवंश खुदा हुआ है। कहने का तात्पर्य यह है कि ये रावणवंशीय विदेशी यहाँ आकर, संस्कृत सीखकर और ब्राह्मण-क्षत्रिय बनकर आर्यों में मिल गये हैं, इसमें सन्देह नहीं।

### विदेशियों के द्वितीय दल का आगमन

अफ्रीका देश के एक प्रान्त का नाम मिस्र है, जिसको आजकल इजिप्ट कहते हैं। कोई सोलह-सत्रह सौ वर्ष पूर्व यहाँ के निवासियों ने आकर इस देश में प्रवेश किया। पहले तो उनके आने से कुछ भी प्रकट न हुआ। वे चुपके-चुपके देश में रहे, किन्तु अन्त में उनकी एक शाखा ने इस देश में एक बहुत बड़ा राज्य स्थापित कर दिया। ये मिस्रनिवासी जाति के यहूदी थे। ये लोग सबसे प्रथम दक्षिणी मलाबार में आकर रहे। इनके विषय में जेम्स बरजिस नामी एक यूरोपियन शोधक कहता है कि 'ये यहूदी लोग ईसवी सन् की तीसरी या चौथी शताब्दी में दक्षिणी मलाबार के किनारे पर आकर बसे'।

ये लोग जब मिस्र से चले थे उस समय ये कई एक नावों में सवार होकर निकले थे। उनमें से एक तरणी भारतीय समुद्र के किनारे पर पहुँचते-ही-पहुँचते टूट गई और जो लोग उसपर सवार थे वे बह चले। ये बहे हुए मनुष्य सह्याद्रि के पश्चिमी किनारे पर आकर लगे। वहाँ एक गाँव में जिसमें अन्त्यजों के १४ कुटुम्ब रहते थे, ये भी टिके। इस कथा का सारांश स्कन्दपुराण में दिया हुआ है। वहाँ लिखा है कि—

एवं निवासं कुर्वत्सु अकस्मादैवयोगतः ।  
नीत्वा सागरमध्यस्थैम्लेच्छैर्बर्बरकादिभिः ॥  
बहुन्यब्दान्यतीतानि तेभ्यो जाता च सन्ततिः ।  
जातिं पृच्छसि हे राजन् जातिकैवर्तकः स्मृतः ॥  
सिन्धुतीरे कृतो वासो व्याधकर्मविशारदः ।  
चतुर्दश गोत्रकुलं स्थिपितं चातुरंगके ॥  
सर्वे च गौरवर्णास्ते सुनेत्राश्च सुदर्शनाः ।

१. Trichur is the capital of Cochin.....where Jews and Syrian Christians have been established since the 3rd or 4th century A.D. It is the principal residence of the black and white Jews.

अर्थात् दैवयोग से अफ्रीका देश के बर्बरादि अनार्य लोग हिन्दुस्तान के पश्चिमी मार्ग से आकर सह्याद्रि किनारे पर बसे। बहुत वर्षों के बाद उनसे जो सन्तति हुई उसने उस समय के परशुराम नामी राजा के पूछने पर कहा कि हे राजन्! हम लोग मल्लाह हैं, समुद्र के किनारे पर रहते हैं और शिकार करना हमारा काम है। सबको गौर वर्ण, सुन्दर और सुन्दर नेत्रवाले देखकर परशुराम ने चितपावन बनाया। दूसरी जगह 'माधव शतप्रश्नकल्पलतिका' नामी पुस्तक में लिखा है कि—

शाखायुगमं च संस्थाप्य शाकलांस्तैत्तिरीयकान्।  
निषिद्धकर्मनिरता मत्स्यभक्षणतत्पराः ॥  
कन्याविक्रयकारांश्च इन्द्रियाणामनिग्रहात् ॥  
कलभाषी पालनाच्च कर्कलाख्याः प्रकीर्तिताः ॥

अर्थात् ये लोग निषिद्ध कर्म करनेवाले, मत्स्य, बतख आदि मधुर ध्वनि करनेवाले, पालतू पक्षियों का मांस खानेवाले, कन्याविक्रय करनेवाले और अगम्यगामी हैं।

इन वर्णनों से पाया जाता है कि ये लोग यथार्थ में बाहर से ही आकर बसे हैं। कुछ दिन तो ये लोग उसी स्थिति में रहे, परन्तु जब देखा कि इस देश में ब्राह्मणों की बड़ी प्रतिष्ठा है तब उन्होंने ब्राह्मण बन जाना अच्छा समझा, अतः सब ब्राह्मण बन गये तथा अपने को 'चितपावन ब्राह्मण' कहने लगे और संस्कृत भी पढ़ने लगे। उधर इनके साथ ही बहे हुए अन्य लोग भी समुद्र के अन्य किनारों पर जा ठहरे। बहुत दिन के बाद उन्होंने अपना इतिहास लिखा। उस इतिहास में लिखा है कि 'बेनी इसरायल कहते हैं कि उनके बुजुर्ग लगभग सोलह सौ या अठारह सौ वर्ष पूर्व विजयी समूहों के लगातार आक्रमणों के दुःखों से बचने के लिए उत्तर की ओर से या उत्तरी सूबों से भारतवर्ष में आये। उनके यहाँ आने का कारण जान और माल की रक्षा ही था, परन्तु आपत्ति ने उनका पीछा नहीं छोड़ा। वे जिस जलयान के द्वारा भारतवर्ष को आ रहे थे वह हिन्द महासागर के हेनेरी और केनेरी द्वीपों के निकट टूट गया। ये द्वीप उस च्यूल बन्दर से लगभग पन्द्रह मील की दूरी पर हैं जो लगभग दो हजार वर्ष पूर्व लालसमुद्र के साथ व्यापार करने का बहुत बड़ा केन्द्र था। जलयान के टूटने से केवल सात पुरुष और सात स्त्रियाँ ही बचीं। इन बचे हुओं ने हेनेरी और केनेरी द्वीपों से छह मील की दूरी पर समुद्र के किनारे नौगाँव नामक गाँव में आश्रय ग्रहण किया। दूबे हुओं में से और भी बहुत-से बहते हुए उसी नौगाँव तक पहुँचे जहाँ उक्त सात जोड़ों ने आश्रय लिया था। इनके अतिरिक्त दूसरे दूबे हुए अन्य किनारों को बह गये पर उनके विषय में अब तक कुछ भी ज्ञात नहीं है'। कुछ दिन के बाद पता लगने पर उन्होंने

- Beni Israels say that their ancestors came to India about sixteen or eighteen hundred years ago from a country northward (see Lands of the Bible, vol. ii, page 667) or from the northern provinces, to avoid persecution that followed in the train of its constant invasions by a host of conquerors. Thus their motive in coming to India was the safety of their lives and property; but although they went to a new place or to a new country, they brought with them their misfortunes, and consequently the ship in which they came to their Indian refuge was wrecked near the Henery and Kenary Islands in the Indian Ocean. These islands are about 15 miles distant from Cheul, which was a great emporium of trade with the Red Sea about 2,000 years ago. Of the ship-wrecked only seven men and seven women were saved who took refuge on the shore of Navgaon, a village on the coast about six miles from Henery and Kenary Islands. Many of the drowned were washed away to the shore of the very village where the seven pairs took refuge, while others were carried to other shores, of which nothing was known until recent time.

फिर अपने इतिहास में लिखा है कि 'नवीन खोजों से ज्ञात हुआ है कि कोकणस्थों या चितपावन ब्राह्मणों के बुजुर्ग किसी ढूबे हुए जहाज के विदेशी यात्री थे जो बहकर सह्याद्रि पहाड़ी के नीचे आ लगे थे। हिन्दू दन्तकथाओं और पुराणों के अनुसार परशुराम ने इन विदेशियों के चौदह मुर्दे एक चिता पर जीवित कर दिये थे। इन चितपावनों की बस्ती चिपलून में बसाई गई। ऐसा प्रतीत होता है कि चितपावनों के बुजुर्ग भूमि के मार्ग से कोकण में नहीं आये, परन्तु बहुत दूर समुद्र पार से आये हैं। उनका गौर वर्ण, भूरे नेत्र और नाव ढूबने की कथा उपर्युक्त बात को पुष्ट करती है। कुछ लोग कहते हैं कि इस जाति के बुजुर्ग जहाज के द्वारा मिस्त्र होते हुए आये हैं। दूसरे कहते हैं कि वे अफ्रीकान्तर्गत बारबरी के यहूदी हैं और मिस्त्र से यहाँ आये हैं।

इस विषय में हमें अधिक प्रमाण देने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि इसी जाति के एक बहुत बड़े नामी चितपावन ब्राह्मण, विश्वनाथ नारायण मण्डलीक, ने अपनी जाति का जो विवरण एशियाटिक सोसाइटी के पास भेजा है, उसमें स्पष्ट लिखा हुआ है कि 'ऐतिहासिक ग्रन्थों से ऐसा प्रतीत होता है कि चितपावन जाति के प्रथम पूर्वज हिन्दुस्तान के पश्चिम ओर से, अर्थात् अफ्रीका के सामनेवाले किनारे से बहुत करके नावों के द्वारा आये'। इसके अतिरिक्त अभी हाल में केलकर महोदय ने जो लोकमान्य तिलक का बृहत् जीवन-चरित्र लिखा है उसमें भी ये बातें स्वीकार की हैं। आप लिखते हैं कि 'सच्चे इतिहासज्ञ कोंकणस्थों के लिए कहते हैं कि वे इस देश के नहीं, प्रत्युत बाहर के हैं। हीन दशा बतलानेवाली इस बात से कुछ होना स्वाभाविक है, परन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से यह बात असत्य नहीं है। कोंकणस्थों के सम्बन्ध में स्वर्गवासी विश्वनाथ नारायण मण्डलीक ने सन् १८६५ के उस अंग्रेजी निबन्ध में जो उन्होंने रॉयल एशियाटिक सोसाइटी के पास भेजा था स्वयं स्वीकार किया है कि चितपावन ब्राह्मणों के आदि पूर्वज अन्य देश से जहाजों के द्वारा आये अथवा चाहे हिन्दुस्तान के ही किसी दूर बन्दर से आये हों या कोंकण के पश्चिमी अरब समुद्र के द्वारा दक्षिण अफ्रीका से आये हों।

'हिन्दुस्तान में आ जाने पर द्रविड़ों के साथ मेलजोल होने से उनकी गणना पञ्च द्रविड़ों में हो गई।'

'जहाँ नई बस्ती होती है वहीं पर सब जातियों की वर्गवार बस्ती बन सकती है। इस तरह की पद्धतिवार बस्तीवाले गाँव कोंकण में ही हैं। इससे सिद्ध हो जाता है कि कोंकणस्थ ब्राह्मण कहीं बाहर से आकर बसे।'

'प्रोफेसर कर्वे ने अपने जीवन में ऐसे एक गाँव का विस्तारपूर्वक बड़ा ही मनोरंजक वर्णन किया है, और बतलाया है कि कब, क्यों और कैसे वह गाँव जंगल काटकर बसाया गया।'

'चिता से चितपावन हुए अथवा कोंकणस्थों में अभिमानबुद्धि व्यक्त करानेवाली 'जिसका चित्त पावन, अर्थात् पवित्र हो वह चितपावन है' ऐसी व्युत्पत्ति हो सकती है, परन्तु वास्तव में ये

१. Recent researches have discovered that the ancestors of the Kokanastha or Chitpavan Brahmins were probably same ship-wrecked foreigners, who were cast ashore at the foot of Sahyadri hills. The fourteen corpses of these foreigners were, according to a Hindoo legend, animated with life on a pyre or chita by Parashuram as mentioned in the Hindoo Purans. The colony of these Chitpavans was established at Chiplon. It seems that the ancestors of the Chitpavans did not enter Kokan by land but came in from far beyond the sea. Their fair complexion, their light and grey eyes, and the legend of their shipwreck corroborate the above statement. Some say that the ancestors of the tribe have probably come by ship either from Egypt or through Egypt, while others maintain that they are the descendants of Jews from Barbary, a province in Africa and that they came through Egypt.

दोनों प्रकार के शब्दसाधन कल्पनामात्र ही है”।

इस प्रमाणों से स्पष्ट होता है कि चितपावन ब्राह्मण मिस्त्रेशनिवाशी यहूदी हैं। ये वहाँ से दक्षिण देश में आये और ब्राह्मण बन गये। यद्यपि ब्राह्मण बन गये, परन्तु उस समय किसी ब्राह्मण ने इनको ब्राह्मण नहीं माना, क्योंकि इनका आचार-व्यवहार बहुत नीच था। ये अपने कुत्सित और नीच व्यवहार का प्रचार भी करने लगे, इसलिए दक्षिण में बहुत बड़ा कोलाहल मचा और तुरन्त ही वहाँ के निवासियों की एक बड़ी सभा द्वारा कनारी भाषा में ‘अफ्रीका खण्डद इजिसदेश दिन्द बन्दिरुव इजिसवान जिसवान या चितपावन एवं जातिय निर्णयवु’, अर्थात् ये अफ्रीका खण्ड के इजिस देश के रहनेवाले हैं, इसीलिए इनको इजिसवान या जिसवान अथवा चितपावन कहते हैं, इस शीर्षक का एक विस्तृत घोषणापत्र निकाला गया और उसमें लिखा गया कि ‘चितपावन जाति के सम्बन्ध में अब तक चले हुए साद्यन्त काशङ्ग-पत्रों को देखकर और ऐतिहासिक प्रमाणों तथा अन्य अनेक विषयों पर विचार करके इस सभा ने जो निष्पत्ति दी है, उसका अच्छी प्रकार अवलोकन करने से सिद्ध होता है कि चितपावन जाति भरतखण्ड की मूलनिवासिनी नहीं है। वह अफ्रीका देशान्तर्गत इजिप्ट प्रदेश की रहनेवाली है। इसके अतिरिक्त उनकी जाति के ही शोधकों के स्वीकार करने तथा सभा को भी वैसा ही प्रतीत होने से यही सिद्ध होता है कि वे लोग भारतवर्ष के निवासी नहीं हैं। भारतवर्ष के दश प्रकार के ब्राह्मणों का इनके साथ मिलकर रहना सदाचार के अनुकूल नहीं है। इन चितपावनों के बारे में अब तक कोई भी निश्चयात्मक निर्णय किसी की ओर से नहीं हुआ। चितपावनों की ओर से जो कुछ लिखा हुआ इस सभा में आया है, उसमें कुछ भी आधार नहीं है। आधार न होते हुए भी सबकी सम्मति लाने के लिए जो सभा की आज्ञा थी न तो वही लाई गई और न कोई आधार ही पेश किया गया। इसलिए इस सभा की ओर से यह घोषणा की जाती है कि इस चितपावनजाति के लोग अफ्रीका खण्ड नामी द्वीप से आये हैं। चितपावन लोग भरतखण्ड के ब्राह्मणलोगों में मिल जाने और उनमें अधर्मी तथा स्वार्थी आचार-विचार फैलाने के लिए बड़ी-बड़ी नीच युक्ति-प्रयुक्ति से प्रयत्न कर रहे हैं,

१. सत्यशोधक लोक हे दक्षिणी ब्रह्मणांना, विशेषतः कोंकणस्थ ब्रह्मणांना, उद्देशून ‘हेया भूमिं तले च नव्यहेतु पर के आहेत’ असें हिणवण्याच्या बुद्धिने म्हणतात म्हणून त्यांचा कोणास राग येवो, परन्तु इतिहासदृष्ट्या ही गोष्ट कांहीं अगदीच खोटी नाहीं।

कोकणस्थां सम्बन्धाने खुद कै० विश्वनाथ नारायण मण्डलिकांनी १८६५ सालीं रॅयल एशियाटिक सोसाइटी-पुढे इंग्रेजी निबन्धांत असे कबूल केलें आहे कीं, चितपावन ब्राह्मणांचे आद्य पूर्वज हे पर प्रान्तांतून जहाजांवर बसून आले खास, मग ते हिन्दुस्थानच्या किनार्यावरीलच एकाद्य दूरच्या बंदरांतून जहाजांवर चढले म्हणा, किंवा कोंकण पट्टीच्या पश्चिमेस अरबी समुद्रापालीकडे असलेल्या दक्षिण आफ्रिकेच्या किनार्यावरून चढले म्हणा ! हिन्दुस्थानांत आल्यावर मग येथील पूर्वीच्या द्रविड ब्राह्मणसंघात—पंचद्रविडांत त्यांची गणना होऊँ लागली ।

नवी वसाहत होते तेव्हांच तिच्ची वर्गवार रचना होऊँ शकते, या मुळे पद्धतिशीर ब्राह्मण वस्तीचे गांव कोंकणांत आढलतात। या वरूनच कोंकणांत कोंकणस्थ ब्राह्मण बहिरून येऊन वसाहत करून राहिले असें सिद्ध करण्यास मदत होते ।

प्रो० कर्वे यांनी आपल्या आत्मवृत्ताच्या परिशिष्टांत मूळ मराठींत छापली आहे त्यांत जंगल तोडून वसतिक्षेत्र कसें सिद्ध केलें व कोणच्या पद्धती ने हेतूनें गांव कसा बसविला याचें मोठें मनोरंजक वर्णन आहे ।

चिते पासून झालेला म्हणून ‘चितपावन’ असें म्हणावें, किंवा कोंकणस्थाविषयी अभिमानबुद्धि व्यक्त करावयाची तर ‘ज्यांचे चित्त पावन म्हणजे पवित्र ते चित्पान’ अशी व्युत्पत्ति लढवितां येते, वास्तविक हें दोन्ही प्रकारचें शब्दसाधन काल्पनिक आहे ।

—लो० टिलक यांचे चरित्र

इसलिए भारतवासी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों वर्णों को चाहिए कि इनकी नीच चातुरी को बड़े ध्यान और बारीकी से देखते रहें, अर्थात् उनके साथ मिलकर धर्म, कर्म, जाति और सत्य से भ्रष्ट न हों<sup>१</sup>। इस प्रकार की चर्चा और प्रचार से महाराष्ट्र ब्राह्मणों के दो भेद हो गये। जो असल थे वे देशस्थ और जो बनावटी थे वे कोंकणस्थ कहलाने लगे। महाराष्ट्र में ये दोनों जातियाँ विद्यमान हैं और एक का दूसरी के साथ विवाह-सम्बन्ध प्रायः नहीं है। कोंकणस्थों ने ब्राह्मण बन चुकने पर राज्य लेने का प्रयत्न आरम्भ किया। अन्त में यही पेशवा नाम के राजा हुए और पूना शहर इनका अड्डा हुआ।

### विदेशियों के तृतीय दल का आगमन

दक्षिण में चितपावनजाति से सम्बन्ध रखनेवाली एक तीसरी जाति और है जिसका नाम ‘कहाडे ब्राह्मण’ हैं। ये भी बाहर के रहनेवाले हैं। विद्वानों का अनुमान है कि ये चीनदेश के रहनेवाले हैं। आगे के वर्णन से स्पष्ट हो जाता है कि ये चीन के ही हैं, क्योंकि हेमाद्रि में जिन चीन ब्राह्मणों की चर्चा है, वे यही हैं<sup>२</sup>। ये लोग नरबलि देनेवाले थे और अपने दामाद को भी विष देकर मार डालते थे। इनके विषय में लिखा है कि—

**कहाडदेशनामा च दुष्टदेशः प्रकीर्तिः । सर्वलोकाश्च कठिना दुर्जनाः पापकर्मिणः ।**

अर्थात् कहाड देश दुष्टदेश है। वहाँ के रहनेवाले कठिन, दुर्जन और पापी होते हैं।

इनके विषय में महाराष्ट्र देशवासियों की यह उक्ति प्रसिद्ध है कि ‘कसाया चा विश्वास धरवेल पण कहाड्याचा धरवणार नाहीं’, अर्थात् क्रसाई का विश्वास करना, परन्तु कहाडे का विश्वास नहीं करना। इनके विषय में प्रसिद्ध विद्वान् बालाजी विठ्ठल गावस्कर कहते हैं कि ‘मिस्टर बिलफर्ड और केंबेल का मत है कि ये लोग बारह सौ वर्ष पूर्व चीन से आये। यह बात मुझे भी सत्य प्रतीत होती है, क्योंकि मनुष्य मारने की जो प्रथा उन देशों में है वही इनमें भी पाई जाती है। हेमाद्रि के श्लोकों में जिन चीनी ब्राह्मणों का वर्णन है वे यही कहाडे ही हैं<sup>३</sup>। इनके

१. चितपावन जातिय विषयवागि नडदिरुव रिकार्ड्नु साद्यंतवागि सभेय वरु विमर्श माडिनोडिद्वितु। मतु प्रातिवंदु विषयद मेलु विचार माडि सभेयवरु पट्टिरुव अभिप्रायवू नमगे सल्पट्टुदें, इतु गळन्तु पर्यालोचीसलु चितपावन जातियु भरतखंडलि आफ्रीका खंडदेन्दु निर्णयवागिरुतदे। मतु अवर जातियवराद शोधकरु ओप्पिरुवन्ते इ सभेय वरिगू निज वागि कंडु बन्ददरिन्द भरतखंड ब्राह्मणरल्बेन्दु निर्णय वागिदे। ई आफ्रीकाखंडदवर संसारदलि भरतखंडद दशविधरु शेरिदू इरुवदु सदाचारके योग्य वागिदे।

ईं चितपावन जातिय विषय वागि इष्टु खंडितवाद निर्णयवु इवरीगू यारिन्दलू माडल्पट्टिर लिल्ल। चितपावन-रिन्द ईंग सभेगे वन्दिरुव जबाबिनल्लि निराधारवागिये यल्ल पट्टिरुते। आधारवू इल्लदे होदरे यल्ल ब्राह्मणर संमति यत्रादरु कलुहिसबेकेन्दु सभेइन्द केल्ल पट्टिरु। अदरन्ते सम्पत्तियन्तु अथवा आधारवन्तु सुद्धा कलुहिस लिल्ल, आदरिन्द सभेयधरु विचार माडि चितपावन जातीयु आफ्रिकाखंड मुन्नाद द्वीपान्तरदिन्द बन्ददेन्दु निर्णइसल्ल पट्टिरु। चितपावनरु भरतखंड ब्राह्मणरोलगे शेर बेकेंब असत्य साधन वन्नु माझुत्तारे, आदकारण भरतखंड ब्राह्मणादि चातुर्वर्णदवरु इथा असत्यके अवकाश उंटागदहागे दक्षते इन्द सत्य साधनवन्तु माड बेकागिरुत्तदे। सत्यमेव जयति नानृतम्।

२. त्रिशंकून् बर्बानाभ्यान् चीनद्रविडकौकणान् । कर्णाटकांस्तथाभीरान् कलिंगांश्च विवर्जयेत् ॥—हेमाद्रि
३. हे लोक बहुधा चीनाहून सुमरें १२०० वर्षी पूर्वी आलेले असल्याबद्दल मिं० बिलफर्ड, क्योंबल अशा शोधक यूरोपिअनांचे म्हणने आढळतें, तें बर्याच अंशीं संभवनीय दिसते; कारण त्या देशांत असें क्रूर व नीच आचरण करणारे लोक बरेच आहेत, व तद्वत् च त्या कहाड्यांनां मनुष्यांचा साक्षात् प्राण घेण्याची कांहींच पर्वा वाटत नाहीं, व मध्यां हेमाद्रीचा जो श्लोक सांगितला, पर अशापैकीं जे चीनीं ब्राह्मण सांगितले ते च हे कहाडे होत।

विषय में रत्नागिरी गेजेटियर में भी लिखा है कि 'प्राचीन समय में वे कभी-कभी अपने दामादों, मुलाकात करनेवालों और अतिथियों को विष देकर अपनी देवी को इसलिए बलिदान देते थे कि वंशवृद्धि के लिए उनके सन्तान उत्पन्न हो' । इस प्रकार की एक घटना का वर्णन मिडफर्ड नामी विद्वान् ने बड़ी ही विचित्रता के साथ किया है । वह लिखता है—

कम्पनी के राज्य में नरमेध अब तक गुप्त रीति से, परन्तु बहुतायत से प्रचलित है । दशहरा के उत्सव में कहाडे लोगों का जो यज्ञ होता है वह नरमेध कहलाता है । डॉक्टर कॉलियर ने मुझसे नीचे लिखी हुई घटना कही है जो गत पेशवा के पिता बालाजी बाजीराव के समय खास पूना में हुई थी । यह असाधारण बात बतलाती है कि किस प्रकार प्रत्येक पवित्र मनोभाव अत्यन्त क्रूर धर्मान्धता के तीर्थ में अपवित्र किये जाते थे । एक दिन एक कहाडे ने अपने दरवाजे से एक मुसाफिर को सामनेवाले कुएँ पर बैठा हुआ देखा और सोचा कि आनेवाले दशहरा में बलि देने के योग्य यह अच्छा शिकार है । उसने उस मुसाफिर को अपने घर बुलाया और बहुत कुछ कह-सुनकर घर में ठहरा लिया । कुछ दिन के बाद उस मुसाफिर ने अपना आदर-आतिथ्य करनेवाले गृहस्वामी से छुट्टी लेकर अपने घर जाना चाहा, परन्तु दशहरा दूर होने से और उसको शंकाहीन करने के अभिप्राय से कहाडे महाशय ने उसका व्याह अपनी लड़की के साथ कर दिया । मुसाफिर को अन्धा बनाने के लिए यह उपाय पर्याप्त था । यात्री फँस गया और यात्री का ससुर अपना दुष्ट हेतु सिद्ध करने के लिए दशहरा के उत्सव की राह देखने लगा, परन्तु उसकी लड़की अपने इस बलिपशु पति को बहुत ही चाहती थी । जब बलि का समय आ गया, सब तैयारी हो गई, उसके पिलाने के लिए ज़हर का प्याला भी बन गया और उस स्थान में जाने का अवसर भी आ गया जहाँ उसका गला काटकर भवानी के चरणों में उसका शरीर अर्पण होनेवाला था, जिससे बलिदाताओं का कल्याण हो, तब उसकी स्त्री ने वह ज़हर का प्याला बदल दिया । फल यह हुआ कि वह पति के स्थान में भाई को पिला दिया गया ।

इस घटना से सारा रहस्य खुल गया और अपराधी पकड़कर पेशवा की अदालत में लाये गये । पेशवा सरकार ने इनको सज़ा दी और इस सम्प्रदाय के समर्स्त व्यक्तियों को पूना से निकाल दिया<sup>१</sup> । महाराष्ट्र प्रान्त में कहाड़े लोग अब तक बहुतायत से रहते हैं ।

१. In former times they occasionally poisoned their sons-in-law, visitors and strangers as sacrifices to their goddess in the hope of securing offspring, Vansha-vridhi. —Ratnagiri Gazetteer

२. Human sacrifices are still common in the Compan's territories in India, although the practice is kept more secret. (One instant is cited here.)

On the festival of Dasara the Karharas's sacrifice is called Narmedha. Dr. Collier related to me the following story which took place in the time of Balaji Bajirav, the father of the late Peshva, in Poona itself; this extraordinary case exhibits the desecration of every hallowed sentiment and feeling at the shrine of the most atrocious superstition.

A Karhada sitting at his door, when he observed a Brahmin traveller sit down to rest at the well in front of his house, the thought struck him that this man would answer well as a victim at the next Dasahara, and he accordingly invited him to his house, and eventually induced him to remain as his guest; after remaining a considerable time, the young man wished to take leave of his hospitable host. The festival was yet distant and the crafty Karhada, finding no other means of detaining him, and perhaps imagining he might be suspected, actually bestowed on him his daughter in marriage; this, besides blinding the eyes of his victim, was an effectual way of detaining him. The father-in-law only waited for the festival day to consummate his diabolical plot; however, there was a lady in the case, and what was more, she loved her new husband and was not inclined to part with him so easily.

When the heart is engaged it would be an insult to the most beautiful half of the creation to

## विदेशियों के चतुर्थ दल का आगमन

इस चौथे आगमन में हम कई स्फुट जातियों का वर्णन करना चाहते हैं। इनमें अमेरिका के नाग, मद्र और बाह्यिक से असुर, मंगोलिया और तातार के मग, शक और हूण तथा यूनान (ग्रीस) के यवनों का समावेश है। इनके सिवा मिस्र-निवासियों और ईरान-वासियों का भी वर्णन है। भारतीय आर्यों के साथ इन जातियों का सम्मिश्रण वैवाहिक कारणों से ही हुआ है। यहाँवालों ने उपर्युक्त देशों की स्त्रियों के साथ विवाह करके, उन विवाहित स्त्रियों के भाई-भतीजों के साथ खान-पान और सम्मेलन करके उनकी जाति को आर्यों में घुसने का अवसर प्रदान किया।

चन्द्रवंशी क्षत्रिय सुन्दर स्त्रियों के साथ विवाह करके सुन्दर और बलवान् प्रजा उत्पन्न करने के बड़े अभिलाषी थे। इन्होंने जहाँ सुन्दर स्त्रियों को पाया वहीं शादी कर ली है। इसी आदत के वशीभूत होकर अर्जुन ने अमेरिका की उलोपी नामी स्त्री के साथ विवाह किया। उसके साथ अनेक पातालनिवासी नाग यहाँ आकर बस गये। यह पहला सम्मेलन नागों का है।

इसी प्रकार का दूसरा सम्मेलन मद्रों और बाह्यिकों का है। पाण्डु की एक शादी मद्रदेश में हुई थी। इसी से उनकी एक स्त्री का नाम माद्री था। माद्री का भाई शल्य कौरवदल की ओर से लड़ा था। एक दिन वह कर्ण का सारथी बना। उस समय कर्ण ने मद्रदेशवासियों के आचार की जो निन्दा की है वह महाभारत में लिखी है। उसमें से यहाँ थोड़ा-सा उद्धृत करते हैं। कर्ण कहता है—

पितापुत्रश्च माता च श्वश्रूश्वशुरमातुला: । जामाता दुहिता भ्राता नप्ता ते ते च बान्धवा ॥  
वयस्याभ्यागताश्चान्ये दासी दासं च सङ्गतम् । पुंभिर्विमिस्त्रानार्यश्च ज्ञाताज्ञाता: स्वयेच्छ्या ॥  
येषां गृहेष्वशिष्टानां सकुमत्स्याशिनां तथा । पीत्वा सीधु सगोमांसं क्रन्दन्ति च हसन्ति च ॥  
यथा ब्रह्मद्विषो नित्यं गच्छन्तीह पराभवम् । तथैव सङ्गतिं कृत्वा नरः पतति मद्रकैः ॥  
वासांस्युत्सृज्य नृत्यन्ति स्त्रियो याः मद्यमोहिताः । तासां पुत्रः कथं धर्म मद्रको वक्तुमर्हति ॥  
पापदेशज दुर्बुद्धे क्षुद्रक्षत्रियपांसुल । आपृच्छता मया राजन् बाह्यिके छाद्यशामितम् ॥  
तत्र वै ब्राह्मणो भूत्वा पुनर्भवति क्षत्रियः । वैश्यशूद्रश्च बाह्यिकः ततो भवति नापितः ॥  
नापितश्च पुनर्भूत्वा पुनर्भवति ब्राह्मणः । द्विजो भूत्वा तु तत्रैव पुनर्दासो व्यजायत ॥  
गान्धारा मद्रकाशचैव बाह्यिकाशचाप्यचेतसः । एतन्मया श्रुतं तत्र धर्मसंकरकारकाः ॥

अर्थात् जहाँ स्त्री-पुरुषों में विवेक नहीं, सबसे सब मिलते हैं, जहाँ सत्ू के साथ मछली खाई जाती है, जहाँ लोग गोमांस खाते, शराब पीकर नाचते-हँसते हैं, और जहाँ के रहनेवालों का साथ करने से अधोगति होती है, उस देश का रहनेवाला तू नीच! क्षत्रियाधम! निर्बुद्धे! मुझे शत्रुओं की बड़ाई करके डराना चाहता है। मैंने सुना है कि वहाँ वर्णव्यवस्था की मर्यादा नहीं है। वहाँ कभी ब्राह्मण क्षत्रिय हो जाता है, कभी वैश्य, शूद्र, अर्थात् नापित हो जाता है और नापित

suppose that a woman could not outwit a priest. Every thing was arranged for the concluding scene; at a great banquet a narcotic or poisonous draught was to be administered, and the victim was to be carried before the idol of Bhawani, where his throat was to be cut, and his body afterwards buried at the feet of the idol to insure prosperity to his murderers for the ensuing year. The lady had for more pleasing prospects in view for him and on the day of the festival succeeded in changing the poisoned cup, which fell to the lot of her brother, who was poisoned instead of the intended sacrifice; thus unexpected development caused an uproar and was the means of making the whole affair public, and bringing it before the Peshva, who punished the guilty individuals and banished the whole sect from Poona.

फिर ब्राह्मण हो जाता है। द्विज का दास और दास का द्विज हो जाता है। इस प्रकार इन गान्धार, मद्रक और बाह्णीक लोगों ने धर्म को संकर कर दिया है।

इन लोगों के इस वर्णन से वहाँ के अनाचार का पता लगता है और अनुमान करना सहज हो जाता है कि इनके सम्मेलन से आर्यों में ये दुर्गुण प्रविष्ट हो गये।

तीसरा मिश्रण मग, शक और हूणों का है। मग मंगोलिया देश के रहनेवाले हैं। बाबू उमेशचन्द्र विद्यारत्न ने लिखा है कि मग ब्राह्मण मंगोलिया के हैं। शाकद्वीपी ब्राह्मण अवध में विद्यमान हैं। अयोध्या के राजा साहब शाकद्वीपी ही हैं। ये अपने को मग कहते हैं। इनके इतिहास में लिखा है कि—

लवणोदात्परं पारे क्षीरोदेन समावृतः । जम्बूद्वीपात्परं तस्माच्छाकद्वीप इति श्रुतः ॥  
तत्र पुण्या जनपदश्चातुर्वर्ण्यसमाश्रिताः । मगाश्च मामगाश्चैव मानसामन्दगास्तथा ॥  
मगा ब्राह्मणभूयिष्ठा मामगाः क्षत्रियास्तथा । वैश्यास्तु मानसा ज्ञेया शूद्रास्तेषान्तु मन्दगाः ॥  
विवस्वतं पूजयन्तो धूपगन्धादिभिः शुभैः । अष्टादशकुलानीह मगानां वेदवादिनाम् ॥

यास्यन्ति च त्वया सार्द्धं यत्र सन्निहितो रविः । — साम्बपुराण अ० २५

अर्थात् लवणसागर के पार, क्षीरसागर से घिरा हुआ और जम्बूद्वीप से दूर शाकद्वीप है। उस पुण्य राज्य में चारों वर्ण हैं। वहाँ मगब्राह्मण, मगक्षत्रिय, मगवैश्य और मगशूद्र बसते हैं। वे सूर्य की पूजा करते हैं। उनके अठारह कुल वेदपाठी हैं। यही शक हैं।

नवीन इतिहासकार इन्हीं को सिथियन कहते हैं<sup>१</sup>। हूण प्रत्यक्ष ही तातारी हैं। कलचुरी नामी क्षत्रियजाति के साथ हूणों का विवाह सम्बन्ध था। 'सरस्वती' अगस्त १९१४ में लिखा है कि रीवाँ राज्य में एक ताम्रपत्र मिला है। उसमें लिखा है कि कलचुरी राजा कर्ण ने (जिसने काशी का कर्णमेरु बनवाया है) तातारी हूणों को परास्त करके उनकी कन्या के साथ विवाह किया<sup>२</sup>। खत्रियों में और राजपूतों में हूण संज्ञा अब तक विद्यमान है।

चौथा मिश्रण यूनान के यवनों का है। यह ऐतिहासिक प्रसिद्धि है कि राजा चन्द्रगुप्त ने यूनानी सेल्यूक्स की कन्या से शादी कर ली थी<sup>३</sup>। अनेक यूनानी पाटलिपुत्र (पटना) में रहा करते थे। फलित-ज्योतिष का इन्होंने ही यहाँ प्रचार किया है। इतिहास जाननेवालों का विचार है कि बहुत-से यवन हिन्दू बन गये हैं।

पाँचवा मिश्रण ईरानवालों का है। उदयपुर राज्य के राजा गोह की शादी ईरान के प्रसिद्ध बादशाह नौशेरवाँ की पौत्री के साथ हुई थीं। लोगों का विचार है कि ज़िला बस्ती के रहनेवाले

१. Seythia is only a corruption from Sakawastha or the abode of the Sakas.

— मानवेर आदि जन्मभूमि, पृ० १३

शाकद्वीपं च वक्ष्यामि यथावदिह पार्थिव ॥ ८ ॥

तत्र पुण्या जनपदाश्चत्वारो लोकसम्मताः ॥ ३५ ॥

मङ्गाश्च मशकाश्चैव मन्दगा मानसास्तथा । मङ्गा ब्राह्मणभूयिष्ठाः स्वकर्मनिरता नृप ॥ ३६ ॥

— महाभारत [ भीष्म० ११ ]

२. पुत्रोऽस्य खड्गदलितारिकरीन्द्रकुम्भमुक्ताफलैः स्म ककुभोर्चति कर्णदेवः ॥

अजनि कलचुरीणां स्वामिना तेन हूणान्वयजलनिधिलक्ष्म्यां श्रीमदावल्लदेव्याम् ॥

— राजपूताने का इतिहास से उद्धृत

३. चन्द्रगुप्तस्य सुतः पौरसाधिपते: सुताम् । सुलूकस्य तथोद्वाह्य यावनीं बौद्धतत्परः ॥

— भविष्यपुराण [ प्रतिसर्ग० १ । ६ । ४३ ]

कलहंस क्षत्रिय भी ईरान के ही रहनेवाले हैं।

छठा मिश्रण मिस्त्रनिवासियों का है। कहते हैं कि कण्व ने मिस्त्रदेश (ईजिप्ट) में जाकर वहाँ के दश हज़ार निवासियों को यहाँ का धर्म और भाषा सिखलाकर आर्य बनाया। पहले उनको शूद्रकोटि में रक्खा, फिर उनमें से कुछ को वैश्य बनाया और कुछ को क्षत्रिय। इस प्रकार से मिस्त्रनिवासियों का हिन्दुओं में सम्मिश्रण पाया जाता है। यह सारी कथा भविष्यपुराण में लिखी हुई है<sup>१</sup>।

इस संक्षिप्त वर्णन से इतना परिणाम निकालने में अब कोई बाधा प्रतीत नहीं होती कि संसार के प्रायः सभी प्रधान-प्रधान देशों के रहनेवाले लोग (जिनके आचार-व्यवहार, रीति-रस्म, खान-पान अवैदिक थे) आर्यों में मिल गये और उनके अनेक आचार-विश्वास धीरे-धीरे आर्यों में प्रविष्ट हो गये, अतः भारत के आर्य इस मिश्रण से आर्य न रहकर हिन्दू हो गये। मिश्रण सभी वर्णों में हुआ। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सभी विदेशियों के मिश्रण से मिश्रित हुए, परन्तु क्षत्रियों में इन विदेशियों का मिश्रण अधिकता से हुआ। ई०डब्लू० थामसन 'हिस्ट्री आफ इण्डिया' में लिखते हैं कि 'इस अध्याय में हम विशेषकर राजपूतों का वर्णन करेंगे। राजपूत लोग विशेषकर उन मरु मैदानों और पहाड़ी प्रदेशों में रहते हैं जो सिन्धु और गङ्गा के बीच में हैं। उनके देश दक्षिण में नर्मदा तक फैले हुए हैं। वे भिन्न-भिन्न जातियों से सम्बन्ध रखते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन आर्यों की सन्तान हैं और कुछ सिथियन, हूण तथा द्रविड़ों के समूह में से भी हैं'<sup>२</sup>।

यद्यपि यही हाल ब्राह्मणों का भी है—उनमें भी द्रविड़, चितपावन, कहाडे, मग, शाकद्वीपी आदि अन्य देशीय जातियाँ पाई जाती हैं, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है, परन्तु उनका मिश्रण वैसा नहीं है, जैसा होना चाहिए।

### विदेशियों के पंचम दल का आगमन

इस आगमन में मुसलमान कहलानेवाली जाति से सम्बन्ध रखनेवाली लोदी, पठान, मुगल आदि जातियाँ सम्मिलित हैं। इनका इतिहास नया है। इनकी उत्पत्ति और भारत आगमन आदि का वृत्तान्त सबको ज्ञात है। इनके अत्याचार और कठोर शासन, लूट और साहित्य-विध्वंस की कथा भी सब जानते हैं। इन्होंने हिन्दुओं को बलात् मुसलमान बनाया यह बात भी प्रसिद्ध है। हम यहाँ इनमें से एक का भी वर्णन नहीं करना चाहते। हम तो यहाँ केवल इसी बात की चर्चा करना चाहते हैं कि इनका आर्यों में प्रवेश किस प्रकार हुआ। हिन्दुओं में इनका प्रवेश होना अनेक ऐतिहासिक घटनाओं से सिद्ध है। यह प्रसिद्ध है कि स्वामी रामानन्द ने अयोध्या में सैकड़ों मुसलमानों को हिन्दू बनाया था। भविष्यपुराण प्रतिसर्गपर्व अध्याय २१ में लिखा है कि रामानन्द का शिष्य अयोध्यापुरी में गया और म्लेच्छों के मन्त्रप्रभाव को उलटा करके उन सब मुसलमान हुए हिन्दुओं को फिर वैष्णव धर्म में प्रविष्ट कर दिया। उनके माथे में त्रिशूल की शकल का तिलक

१. सरस्वत्याज्ञया कण्वो मिस्त्रदेशमुपाययौ। म्लेच्छान् संस्कृत्य चाभाष्य तदा दशसहस्रकान्॥ १५॥

सपत्नीकांश्च तान् म्लेच्छान् शूद्रवर्णाय चाकरोत्॥ १६॥

द्विसहस्रास्तदा तेषां मध्ये वैश्या बभूविरे॥ १७॥

तेषां चकार राजानं राजपुत्रं पुरन्दरम्॥ १९॥

— भविष्यपुराण [प्रतिसर्ग ४। २१। १५-१९]

2. In this chapter we must deal chiefly with the Rajputs. The Rajputs are the tribe and clans who live in the deserts, mountains, ranges and valleys that lie between the Ganges and Indus. Their country reaches southward almost as far as Narmada. They belong to several races. Some of the clans; may be descended from the old Aryan chieftains, others are sprung from the Stholian and Hun invaders, while others again are probably Dravidian tribesmen. —History of India by E. W. Thomson.

देकर, गले में तुलसी की माला पहनाकर और मुख में रामनाम का मन्त्र डालकर सुन्दर वैष्णव बना दिया। सब मुसलमान रामानन्द के प्रभाव से श्रेष्ठ आर्य बन गये और अयोध्या में रहने लगे।

इसके अतिरिक्त हिन्दुओं के साथ मुसलमानों के अनेक सम्बन्ध हुए। 'चाँद' नामक हिन्दी मासिक पत्र में डाक्टर ताराचन्द के 'विधवाविवाह' लेख के आधार पर 'गुणसुन्दरी' नामक गुजराती पत्र के सम्पादक ने वर्ष १ अंक १ में एक नोट लिख दिया है। उस नोट में लिखा है कि 'सर्वाई माधवराव की शादी में सब सरदारों को निमन्त्रण दिया गया और हिन्दू-मुसलमानों ने एक ही जगह पर बैठकर भोजन किया तथा पेशवा बाजीराव ने हैदराबाद के नवाब की कन्या 'मस्तानी' के साथ विवाह किया'।<sup>१</sup>

इस घटनाओं से इस बात का दिग्दर्शन हो गया कि मुसलमान हिन्दू बने और उनकी लड़कियों के साथ विवाह हुए तथा उनके साथ पंक्तिभोजन हुआ। यह सब-कुछ करनेवाले वही ब्राह्मण और क्षत्रिय हैं जो हिन्दूजाति के अगुवा समझे जाते हैं। इनके अतिरिक्त रसखान आदि अनेक मुसलमानों ने हिन्दू साधु होकर हिन्दूसमाज में प्रवेश किया। इस तरह से मुसलमान तत्त्व का हिन्दूसमाज में प्रविष्ट होना इस बात की सिद्धि का प्रबल प्रमाण है कि हिन्दुओं की प्राचीन आर्यता की जड़ हिलाने में इसने भी कम काम नहीं किया।

### विदेशियों के घष्ठम दल का आगमन

छठा और अन्तिम आगमन यूरोप-निवासी ईसाइयों का है। इन्होंने इस देश में आकर कहाँ तक राजनैतिक और व्यापारिक हानि पहुँचाई है इसका वर्णन हम यहाँ नहीं करना चाहते। हम तो आगे यही दिखलाने का यत्न करेंगे कि इनके द्वारा हमारी नैतिक, धार्मिक, सामाजिक और साहित्यिक क्या-क्या हानियाँ हुई हैं तथा हमारे आर्यत्व के नष्ट करने में इनका आगमन भी कहाँ तक सफल हुआ है। इनका सम्मिश्रण भी हममें हो रहा है। सैकड़ों यूरोपीय गौरांग महिलाएँ आर्यों के घर पवित्र कर रही हैं और मद्य-मांस से उनके पितरों का सत्कार कर रही हैं। जिन घरों में इनका प्रवेश है वे घर, उन घरों के पड़ोसी और वह पड़ोसी समाज जिसके वे एक अङ्ग हैं इनकी छूत से कैसे पवित्र रह सका होगा? हमें तो यही प्रश्न चकित कर रहा है।

यहाँ तक हमने आदिमकाल से लेकर वर्तमान समय तक उक्त छह अनार्य प्रवेशों में दस-बारह जातियों का सम्मिश्रण बतलाया। साथ ही प्रविष्ट हुए लोगों के विश्वास, रीति-रिवाज और कर्म-धर्म भी लिखे। इससे सहज ही जाना जा सकता है कि इनके मिश्रण से आर्यों में भी इनके गुण-दोषों का सम्मिश्रण हुआ होगा और आर्यों के पतन का कारण बना होगा। आगे थोड़ा-सा आर्यों के पतन के प्रधान कारण मिश्रित दर्शन का वर्णन करते हैं।

### सम्प्रदायप्रवर्तन और आर्यसाहित्यविध्वंस

इस देश की धार्मिक अवस्था को देखकर यह बात ध्यान में आये बिना नहीं रह सकती कि हिन्दू आर्यजाति का धर्म अव्यवस्थित है, उसकी कोई सङ्खित नहीं है। पशुहिंसा, मद्यपान,

१. रामानन्दस्य शिष्यो वै चायोध्यायामुपागतः। कृत्वा विलोमं तं मन्त्रं वैष्णवांस्तानकारयत्॥५२॥

भाले त्रिशूलचिह्नं च श्वेतरक्तं तदाभवत्। कण्ठे च तुलसीमाला जिह्वा राममयी कृता॥५३॥

म्लेच्छास्ते वैष्णवावाश्चासन् रामानन्दप्रभावतः। संयोगिनश्च ते ज्ञेया रामानन्दमते स्थिताः॥५४॥

आर्याश्च वैष्णवा मुख्या अयोध्यायां बभूविरे॥५५॥ — भविष्यपुराण [प्रतिसर्ग० ४। २१। ५२-५५]

२. 'सर्वाई माधवराव ना विवाह मां वधा सरदारोने नोतरूँ देवायुं अने मराठा तथा मुसलमान एकज स्थान पर बेसीने जम्या। पेशवा बाजीरावे हैदराबादना नवाबनी कन्या मस्तानी साथे लग्न कर्यु।'

स्त्रीसमर्पण, गुप्तेन्द्रियपूजन, वामियों का व्यभिचार, जगन्नाथपुरी की चित्रशाला, यज्ञों में पशुवध, गोवध, ब्राह्मणवध और कुमारीवध आदि उत्पातों का वर्णन देखकर एकाएक ऐसी शंकाएँ उत्पन्न होने लगती हैं कि क्या आर्यों में सभ्यता का प्रचार बिलकुल नहीं था ? क्या वे निरे जंगली ही थे ? क्योंकि जहाँ विश्वामित्र, पराशर आदि व्यभिचारी हों, जहाँ राजा रन्तिदेव के घर हज़ारों गौओं का प्रतिदिन वध हो, शिव और कृष्ण व्यभिचार करें, इन्द्र और चन्द्रमा ऋषि-पत्नियों के साथ मुँह काला करें, एक-एक स्त्री के बाईस-बाईस बार विवाह हों, तिसपर भी तुरा यह कि यह सब अनाचार और अत्याचार करते हुए भी वे लोग ऋषि, मुनि, परमेश्वर, ईश्वरावतार और देवता कहलाते रहें और उनकी बड़ाई के पुल रात-दिन बाँधे जाएँ, ऐसी दशा में उन पुरातन हिन्दुओं के जंगली होने में सन्देह ही क्या है ? निश्चय ही वे जङ्गली और असभ्य थे। उनका इतिहास ही उन्हें असभ्य और जङ्गली बता रहा है। हिन्दू साहित्य को देखकर कोई भी मनुष्य बिना ऐसा विचार किये रह ही नहीं सकता।

जो लोग कहते हैं कि पराशरजी कुहरा पैदा कर देते थे, विश्वामित्र ने नई सृष्टि बना दी थी और कृष्ण ने गोवर्धन उठा लिया था, इसलिए सामर्थ्यवान् होने से उनको दोष नहीं लगता, वे लोग मानो उनकी बुराई को पक्का कर रहे हैं और यह सिद्ध कर रहे हैं कि मांसाहारी, व्यभिचारी और शराबी भी सिद्ध, योगी और अवतार या महात्मा होते हैं और मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं। क्या कभी व्यभिचारी, मांसाहारी, शराबी, पतित और भ्रष्ट मनुष्य ऋषि, मुनि, देवता और अवतार हो सकता है और सिद्ध प्राप्त कर सकता है ? कभी नहीं, क्योंकि सिद्ध तो योग से प्राप्त होती है और योग का आरम्भ ही अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य आदि से होता है। अहिंसा, योग और सिद्ध आदि का विस्तृत वर्णन योगशास्त्र में पतञ्जलि मुनि ने कर दिया है, अतः सोचना चाहिए कि जब बिना उक्त पापकर्मों का त्याग किये योग में प्रवेश ही नहीं हो सकता और जब साधारण सिद्धियों तक पहुँच ही नहीं हो सकती तब भला पतित कर्म करते हुए इस क्षुद्र मनुष्य को ऋषित्व, देवत्व और परमेश्वरत्व कैसे प्राप्त हो सकता है ? इस विचार से स्पष्ट हो जाता है कि ऋषि-मुनि कुमार्गी न थे। कुमार्गी और पापी मनुष्य ऋषि, मुनि, देवता आदि हो ही नहीं सकता। वह इस प्रकार की उन्नति कर ही नहीं सकता, जिस प्रकार की उन्नति आर्य ऋषियों ने याज्ञिक काल में की थी, इसलिए इस प्रकार के वर्णनों और इस प्रकार की अधोगति का कारण विदेशियों का सम्मेलन ही है—दार्शनिक मिश्रण ही है—वेद और वैदिक ऋषि नहीं।

गत पृष्ठों के वर्णन से यह ज्ञात हो चुका है कि पृथिवी के भिन्न-भिन्न देशों से अनेक जातियाँ भारत में आकर आर्यों में मिल गई हैं। साथ ही यह भी ज्ञात हो गया है कि उनके आचार व्यवहार और चरित्र कैसे थे। अब आगे हम उनमें से केवल चार जातियों का साहित्य प्रचार दिखलाना चाहते हैं और बताना चाहते हैं कि किस प्रकार उन्होंने नवीन ग्रन्थ रचे, पुराने ग्रन्थों में प्रक्षेप किया, उनका अभिप्राय बदला और किस प्रकार शुद्ध आर्यों में अनेक सम्प्रदायों को प्रचलित करके अपना आचार-व्यवहार फैलाया। यहाँ हम सबसे पहले मद्रास प्रान्तनिवासिनी द्रविड़ जाति की साहित्यरचना दिखलाना चाहते हैं और बतलाना चाहते हैं कि उनके समिश्रण से किस प्रकार आर्यों की वैदिकता नष्ट हुई।

### द्रविड़ और आर्य-शास्त्र

हम इसके पूर्व बतला आये हैं कि आस्ट्रेलिया से लङ्घा होते हुए विदेशियों का एक दल आकर मद्रास प्रान्त में बस गया था। इस आगत दल का राजा रावण था। वह पण्डित और योद्धा होते हुए भी दुराचारी था। वह इस देश में राज्यकामना से आया था, परन्तु रामचन्द्र के द्वारा युद्ध

में मारे जाने के कारण उसकी राज्यश्री उससे और उसके वंशजों से सदा के लिए नष्ट हो गई। रामचन्द्र के पुत्र कुश ने कुशद्वीप के साथ इन तमाम देशों पर अधिकार कर लिया, इसलिए उनकी रही सही राज्यकामना भी लुप्त हो गई। इस प्रकार से राज्य और ऐश्वर्य को खोकर ये बचे हुए अनार्य अपने को हिन्दू कहने लगे और ऋषि पुलस्त्य तथा रावण का क्रम (वंशपरम्परा) जोड़कर कुछ लोग ब्राह्मण भी बन गये तथा अपने को आर्य बनाने के लिए आर्यजाति के मूलपुरुष वैवस्वत मनु को भी द्रविड़ बनाया। भागवत में लिखा है कि—

**योऽसौ सत्यव्रतो नाम राजर्षिद्रविडेश्वरः । स वै विवस्वतः पुत्रो मनुरासीदिति श्रुतम् ॥**

अर्थात् सत्यव्रत नामी द्रविड़ राजा ही वैवस्वत मनु हो गया।

इस जाली लेख का यह अर्थ है कि आर्यों की उत्पत्ति द्रविड़ों से ही सिद्ध की जाए, परन्तु शतपथब्राह्मण में लिखा है कि 'उत्तरस्य गिरेमनोरवसर्पणम्', \* अर्थात् मनु का प्रादुर्भाव उत्तरगिरि हिमालय पर हुआ। इससे प्रकट है कि उत्तरनिवासी मनु का दक्षिणी द्रविड़ राजा से कुछ भी सम्बन्ध नहीं है और यह जाली कथा केवल आर्य बनने की अभिलाषा से ही लिखी गई है। इस एक ही कल्पित कथा से सिद्ध हो जाता है कि उन्होंने आरम्भ से ही आर्य बनने की कैसी चेष्टा की है? इसके अतिरिक्त रावण ने अपने राक्षसी सिद्धान्तों को आर्यों में प्रचलित करके दोनों जातियों को एक करने का भी प्रयत्न किया। उसने वेदों का भाष्य<sup>१</sup> किया और उस भाष्य में वेदों का अभिप्राय बदलकर आसुरी सिद्धान्तों का प्रक्षेप किया, किन्तु अब वह भाष्य रावण के नाम से नहीं मिलता। रावण के नाम से एक भाष्य का कुछ अंश मिलता है, परन्तु वह उस रावण का भाष्य नहीं है। हाँ, द्रविड़ों में एक कृष्णवेद अब तक अवश्य चल रहा है, जिसमें प्राचीन रावण के भाष्य का अंश प्रतीत होता है। यद्यपि उसका भाष्य अब अलग नहीं मिलता, परन्तु उसका हिंसामय यज्ञ, सुरापान, मांसभक्षण, व्यभिचार, आर्यबलि, लिङ्गपूजन आदि धर्म जो वह मानता था, कृष्णवेद के साहित्य में लिखे हुए मिलते हैं, रावण इन्हीं धर्मों का माननेवाला था, क्योंकि चक्रदत्त नामक वैद्यक के ग्रन्थ में रावणसम्प्रदाय की बात रावण के ही नाम से लिखी है<sup>२</sup>।

इसमें मांस, मद्य और देवपूजा वैसी ही है जैसी वाममार्गियों की होती है। वाममार्ग के ग्रन्थों में रावण के पुत्र के नाम से 'मेघनाद उड्हीस' आदि अन्य ग्रन्थ भी प्रचलित हैं, जिससे स्पष्ट हो जाता है कि रावण के राक्षसी धर्म से ही वाममार्ग चला है और रावणकृत ग्रन्थों में उसी का वर्णन होना चाहिए। कृष्णवेद का समस्त तैत्तिरीय साहित्य इसी प्रकार के पतित विचारों से पूर्ण है। इसलिए कृष्णवेद में रावणभाष्य का बहुत बड़ा भाग विद्यमान है, इसमें सन्देह नहीं। यदि कोई इस बात से इन्कार करे तो उसे बताना चाहिए कि रावणादि अनार्यों का साहित्य कहाँ गया। हम तो कहते हैं कि वह सारा साहित्य इस तैत्तिरीय में ही समा गया है। हमारा यह अनुमान बहुत ही

१. लङ्गाधिपति रावण ने वेद का कोई भाष्य नहीं किया। वेद का भाष्य करनेवाला काश्मीरी ब्राह्मण था। उसने ऋग्वेद के बहुत थोड़े-से अंश का भाष्य किया था। —जगदीशवरगनन्द

२. बलिं तस्य प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते शुभम्। नद्युभयतटमृतिका गृहीत्वा पुत्तलिका कृत्वा शुक्लपुष्टं शुक्लसप्तध्वजाः सप्तप्रदीपाः सप्तस्वस्तिकाः सप्तवटकाः सप्तशङ्कलिकाः सप्तजम्बुडिकाः सप्तमुस्तकाः ग्रन्थं पुष्पं ताम्बूलं मत्स्यं मांसं सुराग्रभक्तञ्च पूर्वस्यां दिशि चतुष्पथे मध्याहे बलिर्दातव्यः। ततः अश्वत्थपत्रं जलकुम्भे निक्षिप्य शान्त्युदकेन स्नापयेत्, रसेन सिद्धार्थकमेष शृङ्गनिम्बपत्रशिवनिर्माल्यैर्बालकं धूपयेत्। अंतों नमो रावणाय, अमुकस्य व्याधिहनहनं मुञ्च मुञ्च हीं फट् स्वाहा। एवं दिनत्रयं बलिं दत्त्वा चतुर्थं ब्राह्मणं भोजयेत् ततः सम्पद्यते शुभम्। —चक्रदत्त, बालरोगचिकित्सा।

\* शता० १।८।१।६

स्पष्ट हो जाता है जब हम उस वेद की उत्पत्ति, उसके अन्दर की गड़बड़ और उसपर विद्वानों की सम्मति की ओर दृष्टि डालते हैं। उसकी उत्पत्ति के विषय में महीधर ने अपने यजुर्वेदभाष्य की भूमिका में लिखा है कि व्यास ने अपने वैशम्पायन आदि चार शिष्यों को यजुर्वेद पढ़ाया। उन चारों में से वैशम्पायन ने अपने शिष्य याज्ञवल्क्य को भी पढ़ाया। एक दिन वैशम्पायन किसी कारण से क्रुद्ध होकर याज्ञवल्क्य से बोले कि तू हमारी सिखाई हुई विद्या त्याग दे। इसपर याज्ञवल्क्य ने वेद को उगल दिया। उस उगलन को वैशम्पायन के अन्य शिष्यों ने तीतर पक्षी होकर चुग लिया। वही यह तैत्तिरीय नाम का वेद है। इसके बाद याज्ञवल्क्य ने दुःखित होकर सूर्य के पास से जो दूसरा वेद सीखा वही शुक्ल यजुर्वेद कहलाया। इस प्रकार बैसिर-पैर की एक गल्प (गप्प) रचकर तैत्तिरीय प्रचारकों ने तैत्तिरीयवेद, अर्थात् कृष्णयजुर्वेद का महत्त्व बनाया, परन्तु इसमें कोई महत्त्व की बात दिखाई नहीं देती। हम तो इसे बहुत ही नीच बात समझते हैं। वान्त सदृश इस ज्ञानजूठन की समता ईश्वरप्रदत्त अपौरुषेय ज्ञान के साथ कैसे हो सकती है? इस कल्पना से तो यही सूचित होता है कि तैत्तिरीयवेद बनावटी है। इसके बनावटी होने में अनेक हेतु हैं, परन्तु हम यहाँ दो चार ही प्रमाण उपस्थित करते हैं।

१. इस तैत्तिरीय कृष्ण यजुर्वेद के विषय में नये और पुराने सभी विद्वानों ने कहा है कि यह मलिन बुद्धि से रचा गया है, इसलिए यह द्रविङ्गों का ही रचा हुआ है। वेदभाष्यकार महीधर कहते हैं कि 'तानि यजूषि बुद्धिमालिन्यात्कृष्णा जातानि', अर्थात् बुद्धिमालिन्य से कृष्ण यजुर्वेद की उत्पत्ति हुई है। इसी प्रकार स्वामी विद्यारण्य कहते हैं कि 'बुद्धिमालिन्यहेतुत्वात् तद्यजुः कृष्णमीर्यते', अर्थात् बुद्धि की मलिनता से वह यजुः 'कृष्ण' कहा गया है। यही सम्मति प्राचीन भाष्यकार द्विवेदाङ्ग की भी है। वे भी कहते हैं कि 'शुक्लानि यजूषि शुद्धानि यद्वा ब्राह्मणेन मिश्रितमन्त्रकानि०', अर्थात् शुक्ल यजुर्वेद शुद्ध है, परन्तु ब्राह्मणमिश्रित मन्त्रों के कारण कृष्णवेद अशुद्ध है। 'आर्यविद्यासुधाकर' में भट्ट यज्ञेश्वर कहते हैं कि 'यज्ञकर्मानुष्ठानमार्गस्य दुर्ज्ञेयत्वात् कृष्णत्वमिति', अर्थात् यज्ञकर्म के अनुष्ठानमार्ग में दुर्ज्ञेयता उत्पन्न होने से ही उसको कृष्णत्व प्राप्त हुआ है। पण्डित सत्यव्रत सामश्रमी 'निरुक्तालोचन' में लिखते हैं कि 'गुरुमुखतोऽधीताऽपि तत्परित्यक्ता प्राचीनतमा चरकाध्वर्युसंहितैर्वान्यैरान्धादि देशीयैस्तित्तिर्यादि संज्ञकैर्गृहीता... एवं तत् तित्तिर्यादिभिर्मन्त्रब्राह्मणश्रुतयश्च पृथक्पृथगधीता अपि यज्ञकार्येषु तद् व्यवहारसौष्ठवं साधायितुं विमिश्रीकृता', अर्थात् गुरुमुख से पढ़ी हुई और त्याग की हुई, अथवा तैत्तिरीयसंज्ञक आन्ध्रादिकों द्वारा ग्रहण की हुई चरकाध्वर्युसंहिता, जो मन्त्रब्राह्मणों का मिश्रण करके यज्ञसाधन के योग्य बनाई गई है, वान्त की भाँति मिश्रित होने से कृष्णवेद कही है।

इन सब प्रमाणों से प्रतीत होता है कि तैत्तिरीयसंहिता मन्त्रब्राह्मणों का मिश्रण करके आन्ध्रादिकों के द्वारा तत्त्वार की गई है, इसलिए आदि में इसके रावणरचित होने में अधिक सन्देह नहीं रहता।

२. ऊपर जितने प्रमाण दिये गये हैं उन सबसे यही प्रतीत होता है कि इस वेद में मन्त्रभाग और ब्राह्मणभाग का मिश्रण है, परन्तु प्राचीन संहिताओं के ब्राह्मण अलग-अलग हैं, मिश्रित

३. व्यासशिष्यो वैशंपायनो याज्ञवल्क्यादिभ्यः स्वशिष्येभ्यो यजुर्वेदमध्यापयत्। तत्र दैवाक्तेनापि हेतुना क्रुद्धो वैशम्पायनो याज्ञवल्क्यं प्रत्युवाच—मदधीतं त्यजेति। स योगसामर्थ्यान्मूर्ता विद्यां विधायोद्वाम। वान्तानि यजूषि गृह्णीतेति गुरुकृत्वा अन्ये वैशंपायनशिष्यास्तित्तिरयो भूत्वा यजूष्यभक्षयन्। तानि यजूषि बुद्धिमालिन्यात्कृष्णानि जातानि। ततो दुःखितो याज्ञवल्क्यः सूर्यमाराध्यान्यानि शुक्लानि यजूषि प्राप्तवान्।

—महीधरकृत यजुर्वेदभाष्य

नहीं। ऋग्वेद का ऐतरेय, यजुर्वेद का शतपथ, साम का ताण्डय और छान्दोग्य तथा अथर्व का गोपथब्राह्मण अलग-अलग है, परन्तु तैत्तिरीय में यह बात नहीं है। इसकी संहिता के मन्त्रभाग में ब्राह्मणभाग और ब्राह्मणभाग में मन्त्रभाग मिला हुआ है। यही कारण है कि अब तक यह निर्णय नहीं हुआ कि तैत्तिरीय साहित्य में कौन-सा मन्त्रभाग है और कौन-सा ब्राह्मणभाग है। जितने तैत्तिरीय शाखा के माननेवाले ब्राह्मण हैं और अपने वेद का ज्ञान रखते हैं उतने ही प्रकार की बातें करते हैं। कोई किसी अंश को मन्त्र कहता है और कोई किसी भाग को ब्राह्मण कहता है। यही कारण है कि उस वेद की मन्त्रसंख्या का पता नहीं है। मन्त्रसंख्यासम्बन्धी उनका प्रसिद्ध श्लोक यह है—

**अष्टादशसहस्राणि मन्त्रब्राह्मणयोः सह ।**

**यजूँषि यत्र पठ्यन्ते स यजुर्वेद उच्चते ॥**

अर्थात् मन्त्रब्राह्मण के साथ जहाँ अठारह हजार यजुः पढ़े जाते हैं, वही यजुर्वेद कहलाता है।

इसमें मन्त्रब्राह्मण की संयुक्त संख्या अठारह हजार बतलाई गई है और समस्त संख्या यजुर्वेद की कही गई है, परन्तु कहीं भी आज तक किसी ने यजुर्वेद को ब्राह्मण नहीं कहा और न ब्राह्मण को ही यजुर्वेद कहा है। इसलिए उक्त संख्या शुद्ध यजुर्वेद की नहीं है। शुद्ध यजुर्वेद की मन्त्रसंख्या इस संख्या से बहुत कम है। शुद्ध यजुर्वेद की मन्त्रसंख्या के लिए स्पष्ट लिखा है कि—

**द्वेष्महस्ते शतन्यूनं मन्त्रे वाजसनेयके ।**

अर्थात् यजुर्वेद के १९०० मन्त्रों का द्रष्ट्या वाजसनेय ऋषि है।

इस प्रकार से शुद्ध यजुर्वेद की समस्त मन्त्रसंख्या केवल १९०० है। कहाँ सौ कम दो हजार और कहाँ अठारह हजार? कुछ ठिकाना है, कितना बड़ा मिश्रण किया गया है? इन दोनों संख्याओं के मिलान से ही ज्ञात होता है कि कृष्णयजुर्वेद रावणादि द्रविड़ों का ही बनाया हुआ है, इसमें सन्देह नहीं।

३. वैदिकों की सनातन मर्यादा के अनुसार यज्ञ कराने के लिए चार विद्वानों की आवश्यकता होती है। ये चारों विद्वान् एक-एक वेद के ज्ञाता होते हैं। इनके पद का काम इस प्रकार होता है कि 'ऋग्वेदेन होता करोति, यजुर्वेदेनाध्वर्युः, सामवेदेनोद्ग्राता, अथर्वैर्वा ब्रह्मा', अर्थात् ऋग्वेद से होता, यजुर्वेद से अध्वर्यु, साम से उद्ग्राता और अथर्व अथवा चारों वेदों से ब्रह्मा होता है। इसी मर्यादा के अनुसार पूर्वकाल में जब राजा हरिश्चन्द्र ने यज्ञ किया था उस समय उनके यज्ञ में विश्वामित्र, जमदग्नि, अगस्त्य और वसिष्ठ आदि चार ही ऋषि क्रम से चारों पदों पर नियुक्त हुए थे। इसी प्रकार जब धर्मराज युधिष्ठिर ने यज्ञ किया था तब उसमें भी याज्ञवल्क्य, वसिष्ठ, ब्रह्मदेव और व्यास आदि चार ही ऋषि चारों कार्यों पर नियुक्त हुए थे, परन्तु इस सनातन वैदिक मर्यादा के विरुद्ध इस तैत्तिरीय साहित्य में उक्त चार कार्यकर्ताओं के स्थान में केवल एक चरक नामक आचार्य की ही योजना बतलाई गई है, यह कितनी बड़ी अनार्यता है?

पुराणों में जितने यज्ञों का वर्णन है उन सबमें यजुर्वेद से अध्वर्यु की ही योजना पाई जाती है। विष्णु और वायुपुराण के देखने से ज्ञात होता है कि जन्मेजय के दोनों यज्ञों में शुक्ल यजुर्वेद से अध्वर्यु की ही योजना हुई थी और धर्मराज के यज्ञ में याज्ञवल्क्य की ही योजना हुई थी। यदि प्राचीन काल में चरक की योजना का नियम होता तो जिन याज्ञवल्क्य आदि के द्वारा इस तैत्तिरीय वेद की उत्पत्ति बतलाई जाती है उन्हीं के समय में उन्हीं के साथ चरक की नियुक्त होती, परन्तु

वहाँ चरक का कहीं पता नहीं मिलता। चरक को आर्यसमाज में नियुक्ति ही नहीं है। चरक तो अनार्य जाति का आचार्य है। बृहदारण्यक उपनिषद् में लिखा है कि 'मद्रेषु चरकाः पर्यव्रजाम्' अर्थात् चरक तो मद्र देश के धूमनेवाले हैं। कर्ण ने भी मद्रों की निन्दा की है, अतः मद्य, मांस, व्यभिचार करने का प्रचार करनेवाले यही हैं, इसीलिए यजुर्वेद ३०। १८ में लिखा हुआ है कि 'दुष्कृताय च चरकाचार्यम्', अर्थात् दुष्ट कर्म करनेवालों को चरकाचार्य कहते हैं। अतएव चरक को महत्त्व देनेवाला यह तैत्तिरीयवेद निश्चय ही दुष्कर्मी विदेशियों का, असुरों का—रावण का—द्रविड़ों का बनाया हुआ है, इसमें सन्देह नहीं।

४. पूर्वकाल में जब वेदों का पठन-पाठन था, उस समय ऋषियों ने वेदों के पठन-पाठन करने की कई एक विधियाँ निर्धारित की थीं। उन विधियों को शाखाभेद कहा करते थे। शाखाभेद के प्रवर्तक ही गोत्रप्रवर्तक होते थे। जो विद्यार्थी जिस शाखा का अध्ययन करता था वह अपने को उसी शाखा और उसी शाखा के प्रवर्तक ऋषि के गोत्र को कहता था, इसलिए उस समय में एक-एक वेद की अनेक शाखाएँ और अनेक गोत्र हो गये थे और अनेक ब्राह्मण अनेक शाखाओं और अनेक गोत्रों में विभक्त हो गये थे, परन्तु इस तैत्तिरीयवेद की कोई भी भिन्न शाखा नहीं थी, न इनके कोई नवीन गोत्र ही बने थे, इसलिए द्रविड़ों में शाखाभेद नहीं पाया जाता। शाखाभेद के लिए उनके यहाँ उसी तैत्तिरीयवेद के तैत्तिरीय आरण्यक में लिखा है कि—

अस्याः शाखाभेदेनानुवाकसंख्याभेदो वर्तते ।

तत्र द्राविडैरस्याश्चतुःषष्टिसंख्याकानुवाकाः पठ्यन्ते ।

आन्ध्रैरस्याशीत्यनुवाकाः । कर्णाटकैश्चतुःसप्तत्यनुवाकाः ।

अन्यैरेकोननवत्यनुवाकाः परिपृथ्यन्ते ।

अर्थात् इसमें शाखाभेद के स्थान में अनुवाकों की संख्या का भेद रखा गया है। इस तैत्तिरीयवेद के ६४ अनुवाक द्रविड़ों के, ८० आन्ध्रों के, ७४ कर्णाटकों के और ८९ अन्य तैलङ्गादिकों के हैं।

इस प्रमाण से यह स्पष्ट हो गया कि इस वेद की शाखाएँ नहीं हैं। साथ ही यह भी सिद्ध हो गया कि यह समस्त वेद इन्हीं में चरितार्थ है और इस वेद का आर्यजनता से कुछ सम्बन्ध नहीं है। हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं कि किसी भी आर्षब्राह्मण की शाखा तैत्तिरीय कृष्णवेद नहीं है, इसलिए यह वेद इन्हीं का या इनके पूर्वाचार्य रावणादि का बनाया हुआ है। इसके अतिरिक्त समस्त द्रावड़ों के वही गोत्र हैं जो अन्य शुद्ध ऋग्वेदी, यजुर्वेदी, सामवेदी ब्राह्मणों के हैं। क्या कारण है कि तैत्तिरीय से सम्बन्ध रखनेवाला कोई गोत्र नहीं है? कारण स्पष्ट है कि तैत्तिरीय का किसी ऋषि-मुनि से सम्बन्ध नहीं है। वह रावणादि द्रविड़ों की रचना है और उन्हीं के लिए है, क्योंकि मनुस्मृति में लिखा है कि 'यक्षरक्षः पिशाचान्नं मद्यं मांसं सुरासवम्', अर्थात् मद्य-मांस आदि राक्षसों के ही खाद्य-पेय पदार्थ हैं। उधर चारवाक कहता है कि 'मांसानां खादनं तद्वन्निशाचरसमीरितम्', अर्थात् वेदों में मांसाहार निशाचरों का मिलाया हुआ है। इधर हम देख रहे हैं कि रावणादि राक्षस मद्य-मांसभक्षी थे, अतः वेदों के नाम से मद्य-मांस का प्रचार उन्हीं का किया हुआ है। आगे हम इस रावणादिकृत तैत्तिरीय साहित्य से मद्य-मांस की लीला भी दिखलाने का यत्न करते हैं।

कृष्णयजुर्वेद के तैत्तिरीय ब्राह्मण में लिखा है कि 'वाचे पुरुषमालभते'। इसपर सायणाचार्य

भाष्य करते हुए लिखते हैं कि 'वाग्देवतायै पुरुषं पूरकं स्थूलशरीरमित्यर्थः', अर्थात् वाणी के देवता के लिए पुरुष का वध करे। उसी में फिर लिखा है कि 'ब्राह्मणो ब्राह्मणमालभते'। इस पर सायणाचार्य कहते हैं कि 'ब्राह्मणजात्यभिमानी देवस्तस्मै कंचित् ब्रह्मवर्चसयुक्तं ब्राह्मण-जातीयं पुरुषमालभते', अर्थात् ब्राह्मण अभिमानी देवता के लिए ब्राह्मवर्चसयुक्त ब्राह्मण का वध करे। उसी ग्रन्थ में फिर लिखा है कि 'आशायै जामिम्'। इसपर सायणाचार्य भाष्य करते हुए लिखते हैं कि 'आशायै अलभ्यवस्तुविषयतृष्णाभिमानिन्यै निवृत्तरजस्कां भोगयोग्यां स्त्रियमालभते', अर्थात् अलभ्य वस्तु की तृष्णा के अभिमानी देवता के लिए जिस स्त्री का मासिक बन्द हो गया हो, उसका वध करे। उसी में फिर लिखा है 'प्रतीक्षायै कुमारीम्'। इसपर सायणाचार्य कहते हैं कि 'प्रतीक्षायै लब्धव्यस्य वस्तुनो लाभप्रतीक्षणाभिमानिन्यै कुमारीमनूढां कन्यामालभते', अर्थात् लब्ध प्रतीक्षावाले देवतों के लिए कुमारी जो अभी युवा नहीं हुई, उसका वध करे। इसके सिवा 'तैत्तिरीयापस्तंभहिरण्यकेशी' नामी उसी की एक पुस्तक के काण्ड ६ प्र० १ अ० ८ में लिखा है कि 'पशूनेवावरुन्धे सप्तग्राम्याः पशवः सप्तारण्याः सप्तच्छन्दा ४४ स्युभयस्यावरुद्ध्यै', अर्थात् यज्ञ में गाय, घोड़ा आदि सात ग्राम्य पशु, काले हिरण आदि जंगली सात पशु, अथवा दोनों प्रकार के सात पशुओं की योजना करे।

फिर लिखा है कि 'आदद ऋत्स्य त्वां देवहविः पाशेनाऽरभेऽ'। इसपर सायण के भाष्य में है कि 'सावित्रेण रशनामादाय पशोर्दक्षिणबाह्वौ परिवीयोर्ध्वमुत्कृष्य आदद इति। दक्षिणोऽधःशिरसि पाशेनाक्षण्या प्रतिमुच्य धर्षा मानुषानित्युत्तरतो यूपस्य नियुनक्ति दक्षिणात् ऐकादशिनान् इति। अक्षण्या परिहरति वध्य २ हि प्रत्यञ्चं प्रतिमुच्छति व्यावृत्यै', अर्थात् 'देवस्य त्वां०' इस मन्त्र से रस्सी लेकर 'तत्सवितु०', इस मन्त्र से पशु की दक्षिण बाहु बाँधकर ऊपर खींचे, पश्चात् 'आदद०' इस मन्त्र से रस्सी को सिर की ओर ले-जाकर दूसरे पैरों को बाँधकर पशु को अच्छी तरह जकड़ दे, जिससे हिले-डुले नहीं। इसके बाद लिखा है कि 'वज्रो वै स्वधितिः शान्त्यै पाश्वर्त०'। इसके भाष्य में लिखा है कि 'वपोत्खेदनार्थं दक्षिणपाश्वें छिन्द्यात्। शूलाग्रेणा वपां छिन्द्यात्', अर्थात् उस पशु के चर्म को त्रिशूल से निकाले और शूल की नोक से चर्मी पृथक् करे। जब मांस इकट्ठा हो जाए तब 'सुकृतातच्छमितारः कृष्णवन्तूत मेध ४४ शृतपाकं पचन्तु', अर्थात् शमिता (मांस को साफ़ करनेवालों) से मांस को साफ़ कराकर पकाया जाए और 'एतद्यज्ञस्य यादिङा सामिप्रश्नाति', अर्थात् उस मांस से होम करके शेष मांस को खाया जाए।

इस तैत्तिरीय साहित्य में इस प्रकार से पशुहिंसा और मांसयज्ञ तथा मांसभक्षण की विधि का वर्णन है। इसी साहित्य में मद्य (शराब) बनाने और पीने की विधि का भी उल्लेख है। वहाँ लिखा है कि 'अन्नस्य वा एतच्छमलं यत्सुरा। यस्य पिता पितामहादि सुरां न पिबेत् स व्रात्यः', अर्थात् दो प्रकार की मदिरा को मिलाकर पिये, क्योंकि जिसके पिता-पितामहादि सुरा नहीं पीते वे व्रात्य हैं—नीच हैं। इसके आगे मांस खाकर और मद्य पीकर फिर यजमान पत्नी के साथ क्या-क्या व्यवहार करना लिखा है, वह हम यहाँ नहीं लिखना चाहते।

इस प्रकार हमने इस तैत्तिरीय साहित्य से अच्छी प्रकार दिखला दिया कि उसमें द्रविड़ों ने अपने आचार-व्यवहारों का खूब वर्णन किया है। इतना ही नहीं कि उन्होंने यज्ञों के नाम से केवल मद्य-मांस ही का प्रचार किया है, प्रत्युत उन्होंने वाममार्ग के समस्त अङ्ग-उपाङ्गों का प्रचार किया है। यह बात सबपर विदित है कि रावण लिंगपूजक था। वाल्मीकि रामायण में लिखा है कि—

यत्र तत्र च याति स्म रावणो राक्षसेश्वरः । जाम्बूनदमयं लिङ्गं तत्र तत्र स्म नीयते ॥

—वा० रा० उत्तर० ३१ । ४२

अर्थात् रावण जहाँ-जहाँ जाता था, वहाँ-वहाँ सुवर्णमय लिंग ले-जाता था ।

दूसरे स्थान पर लिखा है कि 'बालुकावेदिमध्ये तु तल्लिंगं स्थाप्य रावणः',<sup>१</sup> अर्थात् बालु की वेदी पर रावण ने लिंग की स्थापना की ।

इन वर्णनों से ज्ञात होता है कि वह लिङ्ग की पूजा करता था । उसकी जाति में यह रिवाज आज तक प्रचलित है । दक्षिण के कनाड़ी लोग सोने, चाँदी और पाषाण के लिङ्ग गले में डाले रहते हैं । इसी लिङ्गपूजा से ही शिवलिङ्ग की पूजा प्रचलित हुई है । रायबहादुर चिन्तामणि विनायक वैद्य एम० ए० 'भारतमीमांसा' के पृष्ठ ४५२ पर लिखते हैं कि 'ऐसा मानने के लिए अवकाश है कि लिङ्गपूजा बहुधा अनार्य लोगों में बहुत दिन से प्रचलित थी और आर्यों ने उस पूजा का शङ्कर के स्वरूप में अपने धर्म में समावेश कर लिया' ।

इसी प्रकार 'भारतवर्ष का इतिहास' भाग १ पृष्ठ ६८ पर श्रीमान् मिश्रबन्धु लिखते हैं कि 'प्राचीन ग्रन्थों के अवलोकन से इतना अनुमान होता है कि ये अनार्य लोग भूत, प्रेत, पर्वत और वृक्ष आदि को पूजते थे । आर्यमत में रुद्र, काली आदि के पूजनविधान तत्कालिक अनार्य मत के छाया-से समझ पड़ते हैं', अतः यह स्पष्ट हो गया कि वाममार्ग का पूरा सामान अनार्य-जातियों से ही आया है, क्योंकि 'कुलार्णवतन्त्र' में लिखा हुआ है कि—

मद्यमांसविहीनेन न कुर्यात् पूजनं शिवे । न तुष्यामि वरारोहे भगलिङ्गमृतं विना ॥

अर्थात् हे पार्वती ! मद्य-मांस के बिना मेरी (शिव की) पूजा न करनी चाहिए । मैं बिना....के सन्तुष्ट नहीं होता ।

यह घृणित पूजा आफ्रीका-निवासी प्राचीन सीरियन लोगों में प्रचलित थी । वहाँ से आये हुए रावणादि के चरित्र से भी यही बात पाई जाती है, इसलिए यह बात निर्विवाद हो गई कि आर्यों में वाममार्ग का प्रचार अनार्यों से ही आया है और इसी वाममार्ग को लेकर इन्हीं द्रविड़ों के द्वारा भारतदेश में अनेक अवैदिक मत-मतान्तर प्रचलित हुए हैं । यहाँ हम थोड़ा-सा मत-मतान्तर, अर्थात् सारे सम्प्रदायप्रवर्तन का इतिहास लिखते हैं और दिखलाते हैं कि भारतदेश में किस प्रकार ऐसे मत-मतान्तरों और सम्प्रदायों की प्रवृत्ति हुई और उससे आर्यजाति को हानि पहुँची ।

### सम्प्रदायप्रवर्तन

ऊपर हम यह दिखला आये हैं कि आस्ट्रेलिया-निवासी अनार्य लोग, अवसर पाकर द्रविड़ होकर ब्राह्मण बन गये और अपने देश तथा जाति के असभ्य और अनार्य आचार-विचारों को आर्यों में वेद, धर्म और यज्ञ आदि के नाम से प्रचलित किया । वही सब आचार-विचार पहले पड़ोसी देशों में और फिर उड़ीसा, बंगाल, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र आदि में धीरे-धीरे प्रचलित हुए, क्योंकि यह निश्चित बात है कि मनुष्यजाति यदि धर्म, शासन और सामाजिक बन्धनों से सीधे रास्ते पर न चलाई जाए तो वह पतित होकर, अनाचारिणी हो जाती है । विशेषकर ऐसी स्थिति में जब उसका धर्म और समाज स्वयं ही अधर्म और अनाचार को कर्तव्य तथा मोक्षप्रद मान ले, ऐसी दशा में उत्तम मनुष्यों के बिगड़ने में भी देर नहीं लग सकती । उत्तम मनुष्यों को बिगड़नेवाले दुष्ट मनुष्य पहले स्वयं दिखाने को उत्तम बनते हैं और फिर धीरे-धीरे अपना दुष्ट स्वभाव उत्तम

मनुष्यों में प्रविष्ट करते हैं। नवीन सिद्धान्त के प्रचार करनेवालों ने हमेशा से इसी रीति का अवलम्बन किया है। उनका सिद्धान्त है कि जिस जाति को अपने सिद्धान्त सिखलाने हों, उसकी भाषा में ऐसे-ऐसे ग्रन्थ लिखे जाएँ जिनमें तीन बातों का सम्मिश्रण हो।

पहली बात यह हो कि उस जाति के जो सिद्धान्त अपने प्रचार में बाधक न हों वे सब मान लिये जाएँ। उनकी प्रशंसा की जाए और विस्तार से उनका वर्णन किया जाए। दूसरी बात यह हो कि उस धर्म की सूक्ष्म बातें जो सर्वसाधारण की समझ में न आती हों उनका अभिप्राय बदलकर उसमें अपने मत की आवश्यक बातें मिश्रित करके गूढ़ भाषा में वर्णित की जाएँ और तीसरी बात यह हो कि साधारण बातों का खण्डन करके उनके स्थान में अपनी समस्त बातें भर दी जाएँ। ये तीनों बातें इस क्रम से डाली जाएँ कि पहली बात बहुत विस्तार से हो, दूसरी साधारण हो और तीसरी बहुत ही न्यून परिमाण में हो। इस प्रकार करने से एक जाति दूसरी जाति में अपने सिद्धान्तों का प्रचार कर सकती है। ये सिद्धान्त इतने व्यापक और सच्चे हैं कि नवीन सिद्धान्तप्रवर्तकों को, यदि वे बुद्धिमान् हैं तो, काम में लाना ही पड़ता है। हम जिन-जिन जातियों का साहित्य-प्रचार इस प्रकरण में लिखना चाहते हैं यद्यपि उन सबने इस सिद्धान्त का अनुकरण किया है, तथापि यह बात द्रविड़ों के सिद्धान्तप्रचार में विशेषरूप से देखी जाती है। द्रविड़ों ने आर्यों के विश्वासों को इसी क्रम से बिगड़ा है। यह बात आर्यों के दार्शनिक विषयों के अवलोकन से अच्छी प्रकार ज्ञात हो जाती है। उपनिषद्, गीता और वेदान्तदर्शन में अनार्य दर्शन का मेल बहुत ही स्पष्ट रूप से दिखलाई पड़ता है, अतः हम यहाँ इस प्रस्थानत्रयी की विस्तृत आलोचना करके दिखलाना चाहते हैं कि किस प्रकार आर्ष उपनिषदों में आसुर उपनिषदों का मिश्रण हुआ है।

हम गत पृष्ठों में लिख आये हैं कि पूर्वकाल में ही मद्रासप्रान्त में आस्ट्रेलिया, अफ्रीका और मेसोपोटामिया की हिटाइट जाति का जमाव हो गया था। इस जमे हुए द्रविड़दल में असीरिया और मिस्र के असुरों के ही-जैसे आचार और विचार अच्छी प्रकार भरे हुए थे, क्योंकि एक ही स्थान में उत्पन्न होने से इन सबके आचार-विचार एक-समान ही थे। उन विचारों में जो विचार दर्शनशास्त्र से सम्बन्ध रखते थे वही आसुर उपनिषद् कहलाते थे। इस आसुर उपनिषद् की चर्चा छान्दोग्य उपनिषद् में है। वहाँ लिखा है कि 'असुराणां ह्येषा उपनिषद्', अर्थात् यह असुरों का उपनिषद् है। इससे प्रतीत होता है कि उपनिषदों में आसुर उपनिषद् का समावेश है। उपनिषदों में ही नहीं वह गीता और ब्रह्मसूत्रों में भी मिश्रित है। कहने का तात्पर्य यह कि उपनिषद्, गीता और वेदान्तदर्शन जिन्हें प्रस्थानत्रयी कहा जाता है कुछ अंशों में आसुरी विचारों से भरे हुए हैं। इस प्रस्थानत्रयी की आलोचना करने से पूर्व जान लेना चाहिए कि इसका यह नाम क्यों रखा गया है।

प्रस्थानत्रयी नाम बौद्धों के त्रिपिटक नाम की नकल है। जिस प्रकार बौद्धों के तीन प्रकार के साहित्य को त्रिपिटक कहते हैं, उसी प्रकार वेदान्त से सम्बन्ध रखनेवाले तीन प्रकार के साहित्य को प्रस्थानत्रयी कहते हैं और जिस प्रकार आसुर धर्म हटाने के लिए त्रिपिटक की योजना हुई थी उसी प्रकार आसुरधर्म की पुनः प्रतिष्ठा के लिए प्रस्थानत्रयी की योजना हुई है। त्रिपिटक बौद्ध साहित्य है, परन्तु वह साहित्य जिस प्राचीन साहित्य के आधार पर तथ्यार हुआ है वह चारवाक का बाह्यस्पत्य साहित्य है। आसुरी आचार का सबसे प्रथम खण्डन करनेवाला चारवाक ही हुआ है। उसी ने कहा है—

**पशुश्चेन्निहतः स्वर्गं ज्योतिष्टोमे गमिष्यति । स्वपिता यजमानने तत्र कस्मान्न हिंस्यते ॥**

अर्थात् यदि यज्ञ में मारा हुआ पशु स्वर्ग को जाता है तो यजमान अपने पिता को मारकर स्वर्ग को क्यों नहीं भेज देता ?

बृहस्पति कहता है कि 'मांसानां खादनं तद्वन्निशाचरसमीरितम्'१, अर्थात् वेदों में मांसाहार निशाचरों का मिलाया हुआ है, इसलिए वह कहता है कि 'त्रयो वेदस्य कर्तारः भण्डधूर्त-निशाचराः'२, अर्थात् उपर्युक्त प्रकार के मांस-मद्यविधानयुक्त तीनों वेद धूर्त और निशाचरों के बनाये हुए हैं। उसने केवल कहा ही नहीं प्रत्युत जिन वेदों में इस प्रकार की लीला है उनमें कहे हुए धर्म-कर्म आदि सभी शिक्षाओं का खण्डन करते हुए वह उनसे अलग हो गया और अलग होकर अपना एक सम्प्रदाय खड़ा कर दिया, जिसके द्वारा असुरधर्म का खण्डन होता रहा। इसी सम्प्रदाय के उपदेशों ने बौद्ध और जैन सम्प्रदायों की सुष्टि की। इनमें बौद्धों ने बड़ी उत्तरति की। उनका मत समस्त भारतवर्ष में फैल गया और पाँच-छह सौ वर्ष तक धूम से प्रचलित रहा। इस बीच में जो कुछ साहित्य तैयार हुआ, वह तीन भागों में विभक्त किया गया और उसी का नाम त्रिपिटक रक्खा गया, किन्तु मद्रासप्रान्त में एक गोष्ठी थी, जो असुरधर्म का फिर से प्रचार करना चाहती थी। इस गोष्ठी का मूल प्रचारक वादरायण था। इसी की शिष्य और वंशपरम्परा में स्वामी श्री आदि शंकराचार्य का जन्म हुआ। 'The Age of Shankar' नामी ग्रन्थ के लेखक ने इस वंशपरम्परा के विषय में लिखा है कि वादरायण के शुक, शुक के गौड़पाद, गौड़पाद के गोविन्द और गोविन्द के शंकराचार्य हुए। शंकराचार्य के द्वारा जिस साहित्य का विस्तारपूर्वक प्रचार हुआ उसका मूल सम्पादक वादरायण ही था। वादरायण द्वारा सङ्कलित वेदान्तदर्शन प्रसिद्ध है। हमारा अनुमान है कि गीता और उपनिषदों में भी मिश्रण इसी गोष्ठी के द्वारा हुआ है। इस प्रकार से यह समस्त मिश्रित साहित्य तैयार हुआ और इसी मिश्रित साहित्य द्वारा श्रीशंकराचार्य ने प्रचार किया। उनके प्रचार से प्रभावित होकर कई राजाओं ने बौद्धों को नष्ट कर दिया। माधवाचार्यकृत 'शंकरदिग्विजय' में लिखा है कि उस समय राजाओं की आज्ञा थी कि हिमालय से लेकर समुद्रपर्यन्त बसे हुए आबालवृद्ध बौद्धों को जो न मारे वह मृत्युदण्ड के योग्य है३। इस सख्ती का फल यह हुआ कि भारतवर्ष में बौद्धों का अभाव हो गया। इस प्रचार में सुविधा उत्पन्न करने के लिए शंकराचार्य ने पूर्वरचित साहित्य के तीनों विभागों का भाष्य कर दिया, अतः सभाष्य उपनिषद्, गीता और ब्रह्मसूत्र प्रस्थानत्रयी के नाम से प्रसिद्ध हो गये। हमारा दृढ़ विश्वास है कि यदि वेदों का कोई विरोधी है, यदि आर्यसमाज का कोई नाश करनेवाला है और यदि आसुरी भाव फैलाकर जाति का कोई पतन करनेवाला है तो वह प्रस्थानत्रयी का मिश्रण ही है। इसी की आड़ से देश में अनेक सम्प्रदाय, अनेक अनाचार और अनेक भ्रम फैले हुए हैं। आज तक श्रुति, स्मृति और दर्शन आदि गम्भीर शब्दों से प्रभावित होकर वृत्तान्त को जानते हुए भी किसी ने इन ग्रन्थों के विरुद्ध लेखनी नहीं उठाई। सबने अर्थ बदल-बदलकर अपनी बातों को सिद्ध करने की झूठी पैरवी की है, परन्तु अब वह समय नहीं है। हम चाहते हैं कि इस प्रस्थानत्रयी का भेद खोल दें और इन तीनों ग्रन्थों की वास्तविकता लोगों के सामने रख दें।

### प्रस्थानत्रयी की पड़ताल

जिस समय वर्तमान प्रस्थानत्रयी का सम्पादन हुआ उस समय न तो यह रूप इन उपनिषदों का था और न गीता तथा व्याससूत्रों का ही। हमारा विश्वास है कि सनातन से संहिताओं के मन्त्रों को ही श्रुति कहा जाता था, क्योंकि सब लोग उन्हीं को आज तक सुनते-सुनते आ रहे हैं। उपनिषद् तो ब्राह्मणों के कतिपय भाग हैं, जो ऋषियों के बनाये हुए हैं। गीता में ही लिखा हुआ

१. सर्वदर्शन संग्रह, चार्वाक० २२

२. सर्वदर्शन संग्रह, चार्वाक० २१

३. आसेतोरातुषाराद्रेबौद्धानां वृद्धबालकम्। न हन्ति यः स हन्तव्यो भृत्य इत्येव संनृपाः ॥

है कि 'ऋषिभिर्बहुधा गीतं छन्दोभिर्विविधैः पृथक्' १, अर्थात् अलग-अलग छन्दों में उपनिषदों को अनेक ऋषियों ने कहा है। यहाँ सब छन्द ब्रह्मसूत्रों में ग्रथित किये गये हैं। इस वाक्य से ही इन उपनिषदों की वास्तविकता प्रकट हो जाती है कि वे वेद नहीं प्रत्युत ऋषिप्रणीत ग्रन्थ हैं। शंकराचार्य स्वामी ने प्रायः सब प्रमाण इन्हीं उपनिषदों से ब्रह्मसूत्रों के भाष्य में उद्धृत किये हैं। जिस प्रकार उपनिषदें श्रुति बनाई गई, उसी प्रकार गीता को स्मृति बनाया गया, परन्तु गीता को कभी किसी ने स्मृति कहीं नहीं कहा। प्राचीन समय की स्मृतियाँ मनु, याज्ञवल्क्य आदि हैं, परन्तु इनमें वे बातें वर्णित नहीं हैं, जिनकी आवश्यकता वादरायणगोष्ठी को थी। जिस प्रकार संहिता में आवश्यक बातों के न मिलने से उपनिषदें श्रुति बनीं, उसी प्रकार स्मृतियों में वे बातें न मिलने से स्मृति के लिए गीता दूँढ़ निकाली गई और स्मृति बनाई गई। व्याससूत्रों में जहाँ स्मृति के प्रमाणों की आवश्यकता पड़ी है वहाँ श्रीशंकराचार्य ने गीता के ही श्लोक उद्धृत किये हैं। उस प्रकार इस नवीन श्रुति-स्मृति की सृष्टि करके सिद्धान्तों को दार्शनिक विचारों से पुष्ट करने के लिए ब्रह्मसूत्रों की रचना हुई। कहा नहीं जा सकता कि वेदव्यास का लिखा हुआ कोई सूत्रग्रन्थ था। यदि था तो उसमें बहुत थोड़े सूत्र थे। वर्तमान ब्रह्मसूत्रों के बहुत-से सूत्रों में तो केवल उक्त उपनिषद् और गीता में आये हुए शब्दों का स्पष्टीकरण ही है अथवा उन श्रुतियों पर दार्शनिक प्रभाव डाला गया है जो आसुर उपनिषद् से ली गई हैं। इस प्रकार प्रस्थानत्रयी बनी है। आगे हम उक्त तीनों ग्रन्थों का विस्तारपूर्वक वर्णन करके दिखलाते हैं कि इनमें किस प्रकार आसुर सिद्धान्त भरे हुए हैं और किस प्रकार उनको हिन्दुओं ने स्वीकार किया है।

उपनिषद्, गीता और ब्रह्मसूत्रों में मुख्य उपनिषद् ही हैं, क्योंकि यह प्रसिद्ध ही है कि कृष्ण भगवान् ने उपनिषद्रूपी गौओं को दुहकर गीतारूप दुर्घ अर्जुन को पिलाया और यह भी प्रसिद्ध है कि उपनिषदों में गाये हुए पद ही ब्रह्मसूत्रों में पिरोये गये हैं। तात्पर्य यह कि गीता और वेदान्तदर्शन सर्वथा उपनिषदों के आधार पर हैं, इसलिए उपनिषदों की ही आलोचना से यद्यपि दोनों की आलोचना हो जाती है, तथापि हम उपनिषदों के साथ-साथ थोड़ा बहुत गीता और ब्रह्मसूत्रों की भी आलोचना करते चलेंगे। ये उपनिषद् यों तो सैकड़ों हैं, परन्तु श्रीशंकराचार्य ने दश उपनिषदों पर ही भाष्य किया है। इससे इन दशों की मर्यादा अधिक मानी जाती है। इन दशों उपनिषदों में आसुर उपनिषद् का मिश्रण है। आसुर भाग वेदों की उपेक्षा करते हैं, ब्राह्मणों की निन्दा करते हैं, यज्ञों के करनेवालों को गालियाँ देते हैं और अनाचार का प्रचार करते हैं। आगे हम इन समस्त बातों को एक-एक करके दिखलाएँगे और साथ-साथ गीता और उपनिषदों की भी पड़ताल करते चलेंगे। हमारी इस आलोचना के दो विभाग होंगे। पहले विभाग में गीता और उपनिषदों में मिश्रण दिखलाएँगे और फिर दूसरे विभाग में दिखलाएँगे कि यह मिश्रण असुरों का किया हुआ है। इस समालोचना के अन्त में ब्रह्मसूत्रों की जाँच करेंगे।

### गीता और उपनिषदों में मिश्रण

जिन दश उपनिषदों पर श्रीशंकराचार्य ने भाष्य किया है उनमें सबसे प्रथम ईशोपनिषद् है। यह वाजसनेयी शुक्ल यजुर्वेद का चालीसवाँ अध्याय है और 'ईशावास्य' वाक्य से आरम्भ होता है, इसलिए ईशोपनिषद् कहलाता है। यह मूल संहिता में से लिया गया है, इसलिए उसका स्थान सर्वप्रथम है, परन्तु इसमें डेढ़ श्लोक की मिलावट की गई है। वेद में मन्त्र है—

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् । योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम् ॥ —यजुर्वेद

परन्तु प्रचलित उपनिषद् में इसी मन्त्र के बीच में डेढ़ श्लोक मिलाया गया है। मिलाया हुआ डेढ़ श्लोक यह है—

तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये ।

पूषन्नेकर्षे यमसूर्यप्राजापत्यव्यूहरश्मीन् समूह ।

तेजो यत्ते रूपं कल्याणतमं तत्ते पश्यामि योऽसावसौ पुरुषः सोऽहमस्मि । — ईशोपनिषद्

कुछ लोग कहते हैं कि ईशोपनिषद् काण्वशाखा से ली गई है और ऊपरवाला डेढ़ श्लोक काण्वशाखा में है। हमने भी काण्वशाखा देखी है, उसमें यह डेढ़ श्लोक है, परन्तु यह डेढ़ श्लोक काण्वशाखा से नहीं लिया गया। हमारा तो अनुमान है कि यह काण्वशाखा में भी बाहर से ही आया है। इस समय यह बृहदारण्यक के ५।१५।१ में ज्यों-का-त्यों उपस्थित है। बृहदारण्यक उपनिषद् में आसुर उपनिषद् का अपरिमित मिश्रण है, इसलिए यह भी आसुर उपनिषदों से ही आया है, क्योंकि इसकी रचना भी विचित्र ही है। यजुर्वेद अध्याय ४० के जो अन्य मन्त्र हैं उनके छन्दों का वज्ञन बराबर और सही है, परन्तु यह तो गद्य-पद्य का एक विचित्र मिश्रण है, जो वाक्यरूप से लिख दिया गया है। इसका सम्मिश्रण क्यों किया गया है, इस बात पर यहाँ विचार करने की आवश्यकता नहीं है। यहाँ तो केवल मिश्रण ही दिखलाना है, जो इस डेढ़ श्लोक से स्पष्ट हो रहा है। इस मिश्रण में कितनी बड़ी धृष्टता है यह प्रत्यक्ष ही दिखलाई पड़ रहा है। जिस स्तोत्र का मूल—वेद विद्यमान है, जिस वेद के एक-एक अक्षर की गिनती विद्यमान है और जो वेद, वेदपाठियों को कण्ठ है, जब उसमें प्रक्षेप करने की हिम्मत पड़ गई तो वे लावारिस उपनिषद् जिनका मूल भी अब ब्राह्मणग्रन्थों में नहीं मिलता, किस स्थिति में होंगे, उनमें क्या-क्या मिलाया गया होगा और उस मिलावट में आसुर उपनिषद् की कितनी मात्रा होगी, कौन निर्णय कर सकता है? यद्यपि मिलावट ढूँढना कठिन है तो भी कुछ मिले हुए ऐसे स्थल हैं जिनके देखने से तुरन्त ही ज्ञात हो जाता है कि इनमें मिलावट है। यहाँ हम दो एक नमूने दिखलाने का यत्न करते हैं।

मुण्डक उपनिषद् का तृतीय मुण्डक पूर्ण वैदिक है। इसमें नवें खण्ड का एक श्लोक ऋचा के नाम से लिखा गया है। सभी जानते हैं कि वेद के मन्त्र ही ऋचा कहलाते हैं, परन्तु जो श्लोक ऋचा के नाम से लिखा गया है, उसका चारों वेदों में कहीं पता नहीं है। इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि यह श्लोक कहीं बाहर से लाकर ऋचा के नाम से प्रक्षेप किया गया है। प्रक्षेप करनेवाले वैदिक न थे। यदि वैदिक होते तो प्रक्षेप में ऐसी ग़लतियाँ न होतीं। उनके वैदिक ज्ञान की अनभिज्ञता का एक नमूना तैत्तिरीय उपनिषद् में भी है। मिश्रण करनेवालों ने तैत्तिरीय उपनिषद् में वेदों से सम्बन्ध रखनेवाली एक भूल की है। तैत्तिरीय उपनिषद् १।५।२ में लिखा है कि 'भूरिति वा अग्निः, भुवरिति वायुः सुवरित्यादित्यः। भूरिति वा ऋचः भुव इति सामानि सुवरिति यजूर्थषि', अर्थात् भूः अग्नि है, भुवः वायु है और स्वः आदित्य है। भूः ऋग्वेद है। भुवः सामवेद है और स्वः यजुर्वेद है। यहाँ भुवः को सामवेद और स्वः को यजुर्वेद बतलाना समस्त वैदिक संस्था के विरुद्ध है। वेदों में सर्वत्र भुवः वायुस्यानी होने से यजुर्वेद ही से सम्बन्ध रखता है और स्वः आदित्य स्थानी होने से सामवेद से सम्बन्ध रखता है, क्योंकि वैदिक साहित्य में सर्वत्र यही लिखा हुआ है कि 'अग्नेर्ग्रहवेदो वायोर्यजुर्वेदः सूर्यात् सामवेदः', अर्थात् अग्नि से ऋग्वेद, वायु से यजुर्वेद और सूर्य से सामवेद का सम्बन्ध है, किन्तु इस समस्त वैदिक संस्था के विरुद्ध, तैत्तिरीय उपनिषद् भुवः का सामवेद और स्वः का यजुर्वेद से सम्बन्ध बतलाता है,

इसलिए मिश्रण करनेवाले की वैदिक अनभिज्ञता प्रकट होती है। मिश्रण करनेवालों का वैदिक ज्ञान इसी तैत्तिरीय उपनिषद् के आरम्भ से भी प्रकट होता है। तैत्तिरीय उपनिषद् के आरम्भ में लिखा है कि 'नमस्ते वायो त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि' १, अर्थात् हे वायो ! तू ही प्रत्यक्ष ब्रह्म है, अतः तुझे नमस्कार है। इसपर भाष्य करनेवाले 'वायु' शब्द का अर्थ परमात्मा करते हैं, परन्तु यहाँ तो ब्रह्म के साथ 'प्रत्यक्ष' शब्द रखा हुआ है, इसलिए इसका अर्थ परमात्मा नहीं हो सकता। ब्रह्म को कभी किसी ने साक्षात् नहीं किया। वह तो आत्मा से ही जाना जाता है, इसलिए यह प्रत्यक्ष शब्द इस भौतिक वायु—हवा—के लिए ही आया है। प्रत्यक्ष वायु को नमस्कार करनेवाले ब्रह्मविद्या के कितने पण्डित थे और उनको वैदिकता का कितना ज्ञान था यह इसी से जाना जा सकता है और मिलावट का निर्भान्त अनुमान सहज ही हो सकता है।

इसके अतिरिक्त उपनिषदों के परस्पर विरोधी वाक्यों और विरोधी सिद्धान्तों से भी मिश्रण ज्ञात हो जाता है। साधारण मनुष्य भी अपनी बात में विरोध बचाने का यत्न करते हैं, किन्तु ब्रह्मविद्या के आचार्य द्वारा यदि विरोध रखनेवाले सिद्धान्त पास-ही-पास मिलें तो यही समझना चाहिए कि दोनों विचार दो भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों के आचार्यों के हैं। ऐतरेयोपनिषद् १।१ में लिखा है कि 'आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीन्नान्यत्किंचन मिष्ट', अर्थात् आरम्भ में एक आत्मा ही था और दूसरी वस्तु सर्वथा नहीं थी। इसके विरुद्ध छान्दोग्य ६।२।१ में लिखा है कि 'सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्', अर्थात् आरम्भ में एक अकेला सत् ही था और दूसरी वस्तु नहीं थी। इन दोनों विरोधी सिद्धान्तों का तात्पर्य यह है कि एक आचार्य कहता है कि सृष्टि के पूर्व केवल एक आत्मा ही था और दूसरी वस्तु सर्वथा नहीं थी, अर्थात् दूसरी वस्तु का अत्यन्ताभाव था और दूसरे सम्प्रदाय का आचार्य कहता है कि नहीं, आरम्भ में केवल एक सत् ही था उसी से यह समस्त सृष्टि हुई, परन्तु इन दोनों के विरुद्ध उसी छान्दोग्य ६।२।१ में लिखा है कि 'तद्वैक आहुरसदेवेदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयं तस्मादसतः सज्जायत', अर्थात् एक कहता है कि आरम्भ में एक अकेला असत् ही था उसी से सत् की उत्पत्ति हुई। एक कहता है कि एक अद्वितीय सत् ही पहले था, परन्तु दूसरा कहता है कि पहले एक अद्वितीय असत् ही था, उसी से सत् हुआ। इस सत् असत् की बहस पर छान्दोग्य ६।२।२-३ में यह युक्ति दी गई है 'कथमसतः सज्जायत्। सत्त्वेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्। तत्त्वेऽसृजत तदापोऽसृजत्', अर्थात् असत् से सत् कैसे हो सकता है, अतः पहले एक अद्वितीय सत् ही था, उसी से अग्नि और जल की उत्पत्ति हुई है। इस विवाद से पाया जाता है कि उस समय में आत्मा, सत् और असत् पर विश्वास करनेवाले तीन सम्प्रदाय थे। एक ब्रह्म से, दूसरा सत् से और तीसरा असत् से संसार की उत्पत्ति मानता था। एक कहता था कि आरम्भ में ब्रह्म-ही-ब्रह्म था, अन्य वस्तु न थी। दूसरा कहता था कि सत् अर्थात् दूसरी वस्तु (प्रकृति) ही थी और उसी से सृष्टि हुई और तीसरा कहता था कि यह दूसरी वस्तु भी नहीं थी केवल असत् से ही, अर्थात् अभाव (शून्य) से ही सत् अर्थात् दूसरी वस्तु की उत्पत्ति हुई।

सत् और असत् शब्द बड़े महत्वपूर्ण हैं। इनके दो-दो अर्थ हैं। सत् का एक अर्थ भाव, अर्थात् अस्तित्व है और दूसरा अर्थ सृष्टि की वर्तमान दशा है। इसी प्रकार असत् शब्द का एक अर्थ अभाव, अर्थात् शून्य है और दूसरा सृष्टिपूर्व की प्रलय दशा है। ऊपर उपनिषद् के जिन सत् और असत् का वर्णन है वे भाव और अभाव ही अर्थ रखते हैं, क्योंकि कहा गया है कि असत् से तेज और जल उत्पन्न हुए। असत् से तेज और जल कैसे उत्पन्न हो सकते हैं। इस तेज और

जल की दलील से स्पष्ट हो जाता है कि ये सत् और असत् प्रकृति के लिए ही हैं और भाव तथा अभाव ही अर्थ रखते हैं, परन्तु वेदों में असत् शब्द अभाव (शून्य) अथवा प्रलय दशा के अर्थ में भी आता है। ऋग्वेद में लिखा है कि 'नासदासीन्नो सदासीत्, नासीद्रजः। तमासीत्तमसा गुल्हमग्रे', अर्थात् न असत् था, न सत् था और न रज था, प्रत्युत तम-ही-तम था। यहाँ सृष्ट्यारम्भ के पूर्व का वर्णन करते हुए कहा गया है कि उस समय असत् नहीं था, अर्थात् उस समय अभाव या शून्य नहीं था और सत् तथा रज भी नहीं था। फिर क्या था? कहते हैं कि उस समय तम-ही-तम था। इसके विरुद्ध ऋग्वेद १०।७२।३ में कहा गया है कि 'देवानां युगे प्रथमेऽसतः सदजायत', अर्थात् आरम्भ कालिक देवकाल में असत् से ही सत् हुआ और उससे ही सृष्टि हुई। यहाँ असत् शब्द अभाव अर्थ में नहीं, प्रत्युत सत्, रज और तमवाले सत् के विरुद्ध, वर्तमान सृष्टि की पूर्वावस्था के अर्थ में आया है। वहाँ असत् का अर्थ अभाव (शून्य) नहीं है। इन दोनों प्रमाणों से ज्ञात हुआ कि सत् और असत् के दो-दो अर्थ हैं। एक अर्थ भाव-अभाव का और दूसरा सत्, रज, तम का। यद्यपि सत्, रज, तम के विषय में भी लोगों में भ्रम फैला हुआ है, परन्तु ऊपरवाले ऋग्वेद के प्रमाण से ज्ञात हुआ कि सत्, रज, तम सृष्टि की स्थितियाँ हैं। सत्, रज, तम के इस जटिल-से प्रश्न को श्रीमद्भागवत ने बहुत ही अच्छी प्रकार सुलझाया है। वहाँ लिखा है—

स त्वं त्रिलोकस्थितये स्वमायया विभर्षि शुक्लं खलु वर्णमात्मनः।

सर्गाय रक्तं रजसोपबृहितं कृष्णं च वर्णं तमसा जनात्यये॥ — भागवत १०।३।२०

अर्थात् हे भगवन्! आप अपनी माया से त्रिलोक की रक्षा के लिए सात्त्विक—शुक्लरूप धारण करते हैं, सृष्टि के हेतु सर्गारम्भ में राजस् गुणप्रधान रक्तरूप धारण करते हैं और नाश के लिए तामस् गुणप्रधान कृष्णरूप को धारण करते हैं।

इस श्लोक से स्पष्ट हो गया कि बनी हुई सृष्टि सत् है और इसका रूप शुक्ल है, बनने के समय सृष्टि के आदि में यह सृष्टि राजस् है और इसका रंग लाल है और प्रलय के समय यह तम है तथा इसका रूप कृष्ण है। शुक्ल, रक्त और कृष्ण रंगों की उपमा देकर रात, प्रभात और दिन के अलङ्कार से सृष्टि की तीनों स्थितियाँ समझा दी गई हैं। दिन का रंग शुक्ल है और वह बनी हुई सृष्टि की भाँति है, अतएव वह सत् की दशा में है, प्रभात के उषाकाल का रंग लाल है और वह सृष्ट्यारम्भ की भाँति है, अतएव रज की दशा में है और रात का रंग श्याम है, वह प्रलय की भाँति है, इसलिए वह तम कहलाता है, अर्थात् सृष्टि की स्थिति सत् है, सृष्ट्यारम्भ रज है और प्रलयदशा तम है।

सृष्टि की स्थिति, सृष्टि का आरम्भ और सृष्टि की प्रलय आदि दशाएँ सब भौतिक (Material) ही हैं, इसलिए यह सत्, रज, तम भी भौतिक ही है—प्रकृति ही है, इसीलिए प्रकृति को कहा गया है कि 'अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णाम्', अर्थात् एक न उत्पन्न होनेवाली प्रकृति है, जिसकी कार्यदशा शुक्ल है, आरम्भ दशा रक्त है और आरम्भपूर्व दशा कृष्ण है। इस वाक्य ने वेद के मन्त्रों का भाव स्पष्ट कर दिया है। वेद में जो कहा गया है कि असत् नहीं था, उसका यही तात्पर्य है कि अभाव नहीं था, प्रत्युत 'अजा' अर्थात् न उत्पन्न होनेवाली प्रकृति थी। उसी में कहा गया है कि सत् और रज भी नहीं था। इसका तात्पर्य यही है कि उस समय न तो

१. ब्रह्मणस्पतिरेता सं कर्मारिवाधमत्। देवानां पूर्व्ये युगेऽसतः सदजायत ॥

देवानां युगे प्रथमेऽसतः सदजायत । तदाशा अन्वजायन्त तदुत्तानपदस्परि ॥

भूर्जन्त उत्तानपदो भुव आशा अजायन्त । अदितेदेवक्षो अजायत दक्षाद्वदितिः परि ॥ — ऋग्वेद १०।७२।२,३,४

सृष्टि की वर्तमान स्थिति ही थी और न सृष्टि का आरम्भ ही था, परन्तु मन्त्र कहता है कि उस समय तम्-ही-तम् था। इसका तात्पर्य यही है कि उस समय प्रलयदशा थी। तात्पर्य यह कि उपनिषद्वाक्य के सत् और असत् शब्दों से परमात्मा का कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। परमात्मा के लिए सत्, असत् शब्दों का प्रयोग होता ही नहीं। गीता में स्पष्ट लिखा हुआ है कि—

**ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ञात्वामृतमशनुते । अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तत्रासदुच्यते ॥**

—गीता १३। १२

अर्थात् जानने योग्य, जिसके जानने से मोक्ष मिलता है, वह अनादि परमब्रह्म न सत् कहलाता है और न असत् कहलाता है।

गीता के इस प्रमाण से ज्ञात हुआ कि उपनिषदों का सत्-असत् का झगड़ा परमात्मा सम्बन्धी नहीं है, प्रत्युत वह झगड़ा भौतिक है, क्योंकि उपनिषदों में परमात्मा के लिए तो पृथक् ही कह दिया गया है कि एक के मत से आदि में केवल आत्मा ही था। इस अकेले आत्मा से सृष्टि माननेवालों के अतिरिक्त उस समय एक दल ऐसा था जो कहता था कि असत् अर्थात् भौतिक पदार्थों के अभाव से सृष्टि हुई है और दूसरा दल ऐसा भी था जो कहता था कि सत् अर्थात् भौतिक पदार्थों के भाव से ही सृष्टि हुई है, क्योंकि बिना भूतों के अग्नि और जल की उत्पत्ति नहीं हो सकती। इस प्रकार के झगड़े यूरोप के वैज्ञानिकों में आजकल भी होते हैं। एक दल कहता है कि मैटर (परमाणुओं) की उत्पत्ति एनर्जी (शक्ति) से ही हुई है, परन्तु दूसरा दल कहता है कि प्रकृति के भौतिक परमाणु भी हैं। इस विषय में साइंस के प्रसिद्ध विद्वान् प्रो० डब्ल्यू०बी० बॉटमली 'विज्ञान और धर्म' नामी पुस्तक में कहते हैं कि विज्ञान शक्ति (Energy) के सिद्धान्त तक पहुँचा है, परन्तु अनेक विद्वान् हैं जो मूलप्रकृति (Matter) को अब तक परमाणुवाला ही मानते हैं<sup>१</sup>।

कहने का तात्पर्य यह कि यूरोप की भाँति उपनिषदों में भी आत्मा, सत् और असत् आदि तीन सिद्धान्तों का वर्णन है, जिससे यही सूचित होता है कि उपनिषदों में इन तीन प्रकार के वर्णन करनेवाले तीन सम्प्रदायों के लोग हैं। तीनों के तीन सिद्धान्त लिखे हुए हैं, इसलिए तीनों सिद्धान्त एक ही धर्म के नहीं हो सकते। इन तीनों में आर्यों का एक भी सिद्धान्त नहीं है। आर्यों का वैदिक सिद्धान्त अनिश्चित हो ही नहीं सकता, अतएव ये सिद्धान्त मिश्रण से ही उपनिषदों में आये हैं, इसमें सन्देह नहीं।

१. But what has modern science to say as to what matter is? All matter can be resolved into a form of energy, and all the theories of matter advanced during the last twenty years are based on a conception—a postulate of the non-material. That is science? That is the latest in science.

—*Science and Religion*, p. 62.

The statement on page 62 that all matters can be resolved into a form of energy has been challenged as being contrary to the views held by modern physicists. I am told that "other men of science say that all matter is not resolvable into a form of energy, that there is still an irreducible something, a surd, as it were, the dark background, the substance of which energy is but an attribute." The following quotations from some of the leading physicists of the day (Professor Cox, Professor Soddy, and Sir Oliver Lodge etc.) are commended to the critics. —*Ibid.* 75.

Perhaps the statement that "all matter can be resolved into a form of energy" was too comprehensive for the critics. I might have said all matter is divisible into two parts, the known, and the hypothetical. All known matter, the part made up of "the smallest entities known to science," can be resolved into atoms of negative electricity," which are popularly spoken of as a form of energy. The hypothetical part consists of "purely hypothetical structural units of electricity," or "a positive charge" or "invented ether."

—*Ibid.* p. 75.

जिस प्रकार इस सिद्धान्तविरोध से प्रक्षेप ज्ञात होता है, उसी प्रकार उपनिषदों में नवीन बातों के होने से भी मिश्रण पाया जाता है। हमने प्रथम खण्ड में जहाँ लो० तिलक महोदय के ज्योतिष-सम्बन्धी सिद्धान्तों की आलोचना की है, वहाँ ब्राह्मणग्रन्थों में आये हुए प्रमाणों से बतलाया है कि ब्राह्मणों के कुछ भाग बाईस हजार वर्ष के प्राचीन हैं। उपनिषद् भी ब्राह्मणग्रन्थों के ही भाग हैं, परन्तु इनके बहुत-से स्थल बहुत ही नवीन ज्ञात होते हैं, जिससे प्रमाणित होता है कि इनमें वे भाग पीछे से मिलाये गये हैं। बृहदारण्यक २।४।१० में लिखा है कि 'अरेऽस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद्यद्गवेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्राण्यनुव्याख्यानानि व्याख्यानान्यस्यैवैतानि', अर्थात् ऋक्, यजु, साम, अथर्वाङ्गिरस, इतिहास, पुराण, उपनिषद्, श्लोक, सूत्र, व्याख्यान और अनुव्याख्यान आदि सब अपौरुषेय हैं।

इस वर्णन में उपनिषद्, श्लोक, सूत्र और व्याख्यान आदि पर ध्यान देने की आवश्यकता है। इनमें भी सूत्रग्रन्थ तो बहुत ही आधुनिक हैं<sup>१</sup>। कोई भी सूत्रग्रन्थ, चाहे वह गृह्य हो या श्रौत, दर्शन हो या व्याकरण, ब्राह्मणग्रन्थों के पूर्व का नहीं है। उन सूत्रों की व्याख्या तो बहुत ही नवीन है, परन्तु ब्राह्मणग्रन्थों से सम्बन्ध रखनेवाले ये उपनिषद् सूत्रों और उनकी व्याख्याओं का वर्णन करते हैं, इससे प्रतीत होता है कि इनका यह भाग बहुत ही नवीन है। कुछ लोग कहते हैं कि वेदों में ही इतिहास, पुराण, श्लोक, सूत्र और व्याख्यान आदि सम्मिलित हैं, परन्तु यदि ऐसा होता तो ऋग्वेदादि कहने से ही सबका समावेश हो जाता, अलग-अलग सबके नाम कहने की आवश्यकता न होती। इसके अतिरिक्त वेदों में न श्लोक हैं और न सूत्र ही हैं। ऐसी दशा में उपनिषदों का यह भाग बहुत ही आधुनिक सिद्ध होता है।

उपनिषदों की नवीनता का दूसरा प्रमाण तो बहुत ही स्पष्ट है। छान्दोग्य ३।१७।६ में लिखा है कि 'तद्वैतद् घोर आङ्गिरसः कृष्णाय देवकीपुत्राय', अर्थात् घोर आङ्गिरस के शिष्य देवकीपुत्र कृष्ण के लिए। इसमें देवकीपुत्र कृष्ण का नाम आया है। यह वाक्य कृष्ण के बाद ही लिखा गया है। हम प्रथम खण्ड में कृष्णकालीन महाभारतयुद्ध को लगभग ४१०० वर्ष पूर्व का सिद्ध कर आये हैं, इसलिए उपनिषद् का यह वाक्य उस समय के बाद का है। यह उस समय का है जब कृष्ण भगवान् अवतार माने जा चुके थे और उनकी भक्ति अच्छी प्रकार प्रचलित हो चुकी थी। हमारा अनुमान है कि वैष्णवधर्म के आरम्भ के बाद और गीता प्रचार के साथ उपनिषदों में यह अंश मिलाया गया है। कहने का तात्पर्य यह कि ऐतिहासिक घटनाओं से भी सिद्ध होता है कि उपनिषदों में मिश्रण है।

उपनिषदों में मिश्रण का यह प्रबल प्रमाण है कि उपनिषत्काल ही में श्रोतागण उनके सिद्धान्तों को मोह में डालनेवाले मानते थे। बृहदारण्यक ४।५।१४ में मैत्रेयी ने स्पष्ट कहा है कि 'मा भगवन्मोहान्तम्', अर्थात् मुझे मोह में न डालिए। मोह भ्रम को कहते हैं। भ्रम उत्पन्न करा देना यह नवीन धर्मप्रवर्तकों का सबसे पहला काम है। गीता में भी लिखा है कि अर्जुन ने कृष्ण से कहा कि मुझे आपकी बातों से मोह होता है<sup>२</sup>। जिन बातों से मोह पैदा हो—भ्रम उत्पन्न

१. इन सूत्रों में से बोधायनसूत्र २।२२।९ में गीता के 'पत्रं पुष्पं फलं तोयम्' वाले श्लोक का और वासुदेव की भक्ति का भी उल्लेख है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि सूत्रग्रन्थ गीता की वासुदेवभक्ति के प्रचलित हो जाने पर बने हैं।

२. व्यामिश्रेणैव वाक्येन बुद्धिं मोहयसीव मे। तदेकं वद निश्चित्य येन श्रेयोऽहमाप्याम्।—गीता ३।२ अर्थात् मिश्रित—अनिश्चित—गड़बड़ में डालनेवाली बातों से बुद्धि में भ्रम होता है—मोह होता है, अतः कोई एक निश्चित बात कहिए, जिससे मेरा कल्याण हो।

हो वे बातें इस महान् ब्रह्मविद्या में कभी भी उपयोगी नहीं हो सकतीं, परन्तु ऊलजलूल बातें से तो भ्रम होता ही है। भ्रम को हटानेवाला तर्क ही है—न्यायशास्त्र ही है, परन्तु उससे तो आसुर आचार्य घबराते हैं। कठोपनिषद् २। १ में लिखा है कि ‘नैषा तर्केण मतिरापनेया’, अर्थात् तर्क से यह मति प्राप्त होने योग्य नहीं है। जहाँ निरुक्तकार ने कहा है कि ‘तर्क एव ऋषिः’, अर्थात् तर्क ही ऋषि है, जहाँ न्यायशास्त्र बना हुआ है और जहाँ मनु जैसे धर्माचार्य कहते हैं कि ‘स्तर्केणानुसन्द्वन्ते’, अर्थात् जो वैदिक ज्ञान तर्क से सिद्ध हो वही धर्म है, वहाँ तर्क से घबराना और तर्क को अप्रतिष्ठा का सिद्धान्त बताना उसी का काम हो सकता है, जिसका सिद्धान्त लचर है, जो मोह—भ्रम उत्पन्न करानेवाला है और जो नवीन अवैदिक सिद्धान्त प्रचलित करना चाहता है। अन्यथा जहाँ परस्पर विरोधी दो सिद्धान्त उपस्थित हों वहाँ बिना तर्क के कैसे जाना जा सकता है कि इनमें से कौन सत्य है और कौन असत्य? कहने का तात्पर्य यह कि तर्क से घबराना और भ्रम उत्पन्न करना वैदिक शैली नहीं है। उपनिषदों के ऐसे भाग निस्सन्देह प्रक्षिप्त हैं और आसुर हैं।

गीता भी तर्क से घबराती है। वह कहती है कि ‘संशयात्मा विनश्यति’, अर्थात् संशयात्मा नष्ट हो जाता है, परन्तु हम देखते हैं कि तर्कशास्त्र में संशय एक आवश्यक विषय है<sup>१</sup>। जो सत्यासत्य के निर्णय में काम आता है। बिना संशय के तो किसी बात का निर्णय ही नहीं हो सकता और न कोई सत्य सिद्धान्त पर पहुँच सकता है, परन्तु उपनिषदों के अनेक स्थल निस्सन्देह बुद्धिविरुद्ध और जंगली हैं। उनके लिए तर्क से काम लेना समय खोना है। ऐसे विश्वास अवश्य तर्क की कसौटी से नहीं कसे जा सकते। इनसे अवश्य भ्रम होता है। यहाँ हम दो तीन बातें नमूने के रूप में दिखलाते हैं। छान्दोग्य ६। १६। १ में लिखा है—

‘पुरुषः सोम्योत हस्तगृहीतमानयन्त्यपहार्षीत् स्तेयमकार्षीत् परशुप्रस्मै तपतेति। स यदि तस्य कर्ता भवति तत् एवानृतमात्मानं कुरुते। सोऽनृताभिसन्धोऽनृतेनाऽऽत्मानमन्तर्धाय परशुं तप्तं प्रतिगृह्णाति। स दह्यतेऽथ हन्यते’॥

अर्थात् हे सोम्य! राजकर्मचारी पुरुष को हाथ बाँधकर लाते हैं और कहते हैं कि इसने चोरी की है। राजा लोहे का परशु तप्त करवाकर उसके हाथ पर रखवाता है। यदि वह सचमुच चोर है तो जल जाता है।

हम देखते हैं कि आग से गर्म किया हुआ लोहे का गोला उठवाने की चाल इस देस के मूर्खों में बहुत दिन तक रही है। यह बिलकुल जंगली रिवाज है। अग्नि ऐसी वस्तु है जो चोर-साह सब को जलाती है। वह किसी को पहचानती नहीं। यदि वह आर्य-धर्म होता तो धर्मशास्त्रों में गवाही लेने, चेष्टा देखने और पता लगाने की चर्चा क्यों की जाती। आज भी उसी प्रकार परीक्षा होती, परन्तु जब यह सिद्धान्त ही गलत है तब इसके द्वारा सत्य का निर्णय कैसे किया जा सकता है? इसलिए यह रिवाज जंगली है, आसुर है और अज्ञानता का ज्वलन्त प्रमाण है। दूसरी जगह उसी छान्दोग्य ५। २। ८ में लिखा है कि—

यदा कर्मसु काम्येषु स्त्रियध्य स्वप्नेषु पश्यति ।

समृद्धिं तत्र जानीयात्तस्मिन्स्वप्ननिदर्शने ॥

अर्थात् स्वप्न में यदि स्त्री दिखलाई पड़े, तो समझना चाहिए कि बहुत बड़ी समृद्धि होनेवाली

१. प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन आदि जो तर्कशास्त्र के मूल सिद्धान्त हैं, उनमें संशय तीसरा है। बिना संशय के तो निर्णय हो ही नहीं सकता—सत्य मिल ही नहीं सकता।

है। दूसरी जगह लिखा है कि 'पुरुषं कृष्णं कृष्णादन्तं पश्यति स एनं हन्ति', अर्थात् स्वप्न में काले दाँतवाले काले पुरुष को देखे, तो समझना चाहिए कि मेरी मृत्यु निकट ही है। ये स्वप्नपरीक्षा के बे विश्वास हैं जिनकी ओर सिवा मूर्खों के पढ़े-लिखे लोगों का ध्यान भी नहीं जा सकता।

इसी प्रकार की बात छान्दोग्य ८।१३।१ में यह लिखी है कि 'चन्द्र इव राहोर्मुखात् प्रमुच्य', अर्थात् जैसे चन्द्रमा राहु के मुख से छूट जाता है। यह दृष्टान्त भी उन्हीं गँवारू बातों को चरितार्थ करता है जो चन्द्रग्रहण के विषय में प्रचलित है, अर्थात् चन्द्रमा को राहु खा जाता है और फिर उगल देता है। ऐसे विश्वासवाले ज्योतिष् और भूगोल-ज्ञान से बिलकुल शून्य थे, परन्तु वैदिकों में सबसे पहले ज्योतिष् का ज्ञान होना चाहिए, क्योंकि ज्योतिष् वेद का नेत्र है। वेदों में जितना ज्योतिष् का वर्णन है उतना शायद ही किसी अन्य विषय का वर्णन होगा, परन्तु इन ज्योतिषज्ञानशून्य असुरों को क्या पता कि ग्रहों के होने का क्या सिद्धान्त है? इसी प्रकार की बात बृहदारण्यक ६।३।१२ में यह लिखी है कि 'शुष्के स्थाणौ निषिङ्गेजायेरञ्जाखाः प्ररोहेयुः पलाशानीति तमेतं नापुत्राय वाऽनन्देवासिने वा ब्रूयात्', अर्थात् सूखा काठ हरा करनेवाली वाजीकरण ओषधि को अपने पुत्र या शिष्य के अतिरिक्त और किसी को न बतलाना चाहिए। ठीक है, न बतलाइए, परन्तु यह तो बतलाइए कि सूखा काष्ठ हरा हो भी सकता है? हमारी समझ में तो हरा वही होगा जिसमें कुछ भी हरापन शेष होगा और जिसमें कुछ भी जान होगी, किन्तु जिसका हरापन नष्ट हो गया है, जो मर गया है, वह कदापि हरा नहीं हो सकता। हाँ, दवा के प्रलोभन से भोले आदमी फाँसे जा सकते हैं और इसीलिए ऐसी फँसानेवाली नवीन बातें उपनिषदों में मिश्रित की गई हैं, परन्तु हमें तो यहाँ केवल उपनिषत्कारों के ज्ञान का नमूना दिखलाना है। हम समझते हैं कि ये सभी बातें मोह पैदा करनेवाली तर्क, विद्या, बुद्धि से कोसों दूर और प्रक्षेप करनेवालों के मनोभाव और उनकी स्थिति की यथार्थ सूचक हैं। हमने इन बातों को इसीलिए लिखा है कि जिससे मिश्रण करनेवालों का भ्रम पैदा कराने और तर्क से घबराने का कारण विदित हो जाए और यह स्पष्ट हो जाए कि इन उपनिषदों में किसी आर्येतर जाति का हाथ रहा है।

इन बातों के अतिरिक्त उपनिषदों में वैदिक यज्ञों की निन्दा है। इससे भी उनमें मिश्रण विदित होता है। यह लीला मुण्डक उपनिषद् में अच्छी तरह दिखलाई पड़ती है। वैदिक कर्मकाण्ड का जहाँ पर खण्डन मिलाया गया है, वहाँ यह प्रकरण इस प्रकार शुरू होता है कि 'काली कराली च मनोजवा च'<sup>१</sup>, अर्थात् काली आदि अग्नि की सात जिह्वाएँ हैं। इन अग्नि की सात जिह्वाओं, अर्थात् सात रंग की ज्वालाओं का वर्णन करके कहा गया है कि ये सात लपटें नित्य हवन करनेवाले को सूर्य की सात किरणों में प्रविष्ट करा देती हैं। उनके द्वारा वह सूर्यलोक को चला जाता है और वहाँ से ब्रह्मलोक को जाता है, अर्थात् नित्य हवन करनेवाला मोक्ष का भागी बनता है, परन्तु इसके आगे सातवें श्लोक से दसवें श्लोक तक चार श्लोकों में यज्ञों पर विश्वास करनेवालों को हजारों गालियाँ दी गई हैं। गालियाँ देते हुए कहा गया है कि 'एतच्छ्रेयो येऽभिनन्दन्ति मूढाः, पण्डितम्मन्यमानाः, जघन्यमानाः, मूढाः, अन्धाः, बालाः'<sup>२</sup>, अर्थात् यज्ञ से गति माननेवाले मूढ़, अन्धे, मूर्ख और जघन्य हैं। इसके साथ ही याज्ञिकों को बार-बार पैदा होनेवाला और हीनतर योनियों में जानेवाला भी कहा गया है। इसके सिवा स्वर्ग और मोक्ष-धाम में एक ऐसा भेद उपस्थित कर दिया गया है कि जिससे पता ही नहीं लगता कि प्राचीन वैदिक

१. मुण्डक १।२।४

२. मुण्डक १।२।७-८

सिद्धान्तानुसार स्वर्ग और मोक्ष का रहस्य क्या है?

उपनिषदों में स्वर्ग और सृष्टि से सम्बन्ध रखनेवाले दो सेमिटिक सिद्धान्त काम कर रहे हैं। एक तो यह कि सृष्टि के पूर्व क्षण में एक अकेला परमात्मा ही था और कुछ भी न था। दूसरा यह कि स्वर्ग अलग वस्तु है, जहाँ अनेक प्रकार के संसारी सुख एक समय तक मिलते हैं। सेमिटिक दर्शन में जिस प्रकार बहिश्त और नजात में अन्तर है, उसी प्रकार आसुर उपनिषद् स्वर्ग और मोक्ष में कुछ भी अन्तर नहीं बताया गया है, परन्तु प्रक्षेपरहित शुद्ध वैदिक उपनिषद् स्वर्ग और मोक्ष में कुछ भी अन्तर नहीं बताते हैं। वे कहते हैं कि सूर्य के उस पार स्वर्ग है और मोक्ष को जानेवाले सूर्य द्वारा से वहाँ जाते हैं, इसलिए स्वर्ग और मोक्ष दोनों एक ही पदार्थ हैं। इसपर से भी ज्ञात होता है कि उपनिषदों में इस प्रकार के विरोधी सिद्धान्तों का मिश्रण हुआ है।

जिस प्रकार उपनिषदों में मिलावट है उसी प्रकार गीता में भी मिलावट है। इस काल में लोकमान्य तिलक-जैसा गीता का विद्यार्थी दूसरा कोई नहीं हुआ। गीता की मिलावट के विषय में गीतारहस्य भाग ३ पृ० ५३६ पर आप कहते हैं कि 'जिस गीता के आधार पर वर्तमान गीता बनी है, वह बादरायणाचार्य के पहले भी मौजूद थी'। कोई गीता बादरायणाचार्य के पहले विद्यमान थी या नहीं और बादरायण कौन हैं, इन बातों की यहाँ व्याख्या करने की आवश्यकता नहीं है। यहाँ तो यही देखना है कि यह सम्पूर्ण वर्तमान गीता मूलगीता नहीं है। हाँ, एक गीता अभी हाल में प्रसिद्ध प्रवासी मिस्टर एन० जी० देसाई को भारत से दूर बालीद्वीप में मिली है जो भीष्मपर्व के अन्दर है और उसमें कुल ७० ही श्लोक पाये जाते हैं। यह भीष्मपर्व हस्तलिखित प्राचीन पुस्तक है, किन्तु हम देखते हैं कि वर्तमान गीता में ७०० श्लोक हैं। इससे ज्ञात होता है कि केवल एक शून्य ही बढ़ाया गया है। बढ़ाने की बात तब और भी अधिक दृढ़ हो जाती है जब हम देखते हैं कि इसपर शंकराचार्य से पूर्व पृथक् रूप से किसी अन्य की टीका नहीं मिलती और न शंकर के पूर्व महाभारत से पृथक् इसका अस्तित्व ही पाया जाता है। इसके अतिरिक्त गीता के १८वें अध्याय के अन्त में संजय कहते हैं कि—

**व्यासप्रसादाच्छुतवानेतद् गुह्यमहं परम्। योगं योगेश्वरात्कृष्णात्साक्षात्कथयतः स्वयम् ॥१॥**

अर्थात् व्यास की कृपा से मैंने इस परमगुह्य योग को योगिराज कृष्ण से सुना।

संजय ने कृष्ण से सुना, पर व्यास की कृपा से, यह कैसी बात है? क्या व्यास संजय को अपने साथ लेकर वहाँ गये थे जहाँ कृष्ण अर्जुन को उपदेश कर रहे थे? ऐसा तो कहीं वर्णन नहीं है और न इस श्लोक से ही यह बात सिद्ध होती है। संजय तो स्वयं धृतराष्ट्र से युद्ध का वृत्तान्त कह रहे हैं। व्यास से पहले तो सारा वृत्तान्त संजय को ही ज्ञात होता था। यह ठीक भी है। राजा के लिए तो उनको सब वृत्तान्त पहले मिलना ही चाहिए। संजय ने प्रबन्ध कर रखा होगा कि जिससे सब हाल मिलता रहे<sup>१</sup>। व्यास को तो संजय के द्वारा वृत्तान्त मिला होगा, परन्तु उनको व्यास के प्रसाद से गीता सुनने को मिली, यह बात बड़े ही सन्देह की है। इससे तो श्लोक का ऐसा तात्पर्य प्रतीत होता है कि कृष्ण का उपदेश जो व्यास के द्वारा लिखा गया था, वह संजय को सुनने या जानने को मिला, परन्तु समस्त गीता संजय और धृतराष्ट्र की बातचीत है। इस बातचीत

१. गीता १८। ७५

२. श्रीधर आदि टीकाकारों ने लिखा है कि व्यासजी ने संजय को दिव्य दृष्टि दी थी। उस कृपा से वे दूर बैठे हुए कृष्ण की बात सुन सकते थे, परन्तु इसमें कुछ भी सत्य नहीं है। प्रथम तो दिव्य दृष्टि और उससे दिव्य श्रवण शक्ति का होना ही विश्वास योग्य नहीं है, फिर यह बात भी असत्य सिद्ध हो जाती है जब हम देखते हैं कि यह शक्ति धृतराष्ट्र को न देकर संजय को क्यों दी गई?

को यदि व्यास ने श्लोकबद्ध किया तो श्लोकबद्ध करने के पहले ही संजय ने व्यास की कृपा से कैसे सुना ? इस गोलमाल से प्रकट होता है कि समस्त गीता दो सम्पादकों ने रची है । व्यासकृत गीता से कृष्ण का वृत्तान्त संजय को ज्ञात हुआ, परन्तु यह संजय और धृतराष्ट्र का वार्तालाप और व्यास की कृपा की बात दूसरे सम्पादक की रचना प्रतीत होती है । इसी प्रकार 'मुनिनां चाप्यह व्यास' तथा 'असितो देवलो व्यासः' आदि रचना भी व्यास की नहीं है, क्योंकि वेदव्यास अपने आपको कभी न कहते कि सब मुनियों में व्यास परमेश्वर के तुल्य हैं, अर्थात् परमेश्वर ही हैं, इसलिए गीता के ये प्रकरण प्रक्षिप्त ही हैं । इस प्रकार उपनिषदों और गीता में मिश्रण दिखाने के पश्चात् अब हम यह प्रतिपादन करने की चेष्टा करते हैं कि उपनिषदों में असुरों ने आसुर उपनिषद् का किस प्रकार मिश्रण किया ।

### आसुर उपनिषद् की उत्पत्ति

छान्दोग्य उपनिषद् में विस्तारपूर्वक लिखा है कि इन्द्र (आर्य) और विरोचन (अनार्य) दोनों मिलकर किसी के पास ज्ञान सीखने लगे । गुरु ने उनकी पात्रता और कुपात्रता की परीक्षा की । इन्द्र संस्कृत आत्मा और विरोचन मलिन आत्मा निकला और ज्ञान के ग्रहण करने में असमर्थ सिद्ध हुआ । गुरु ने परीक्षार्थ जितनी बातें उससे कहीं उन सब बातों को उसने सिद्धान्त ही समझा, तनिक भी अपनी बुद्धि से काम न लिया, परन्तु इन्द्र ने हर परीक्षावाक्य की एकान्त में तर्क से पड़ताल की और असत्य ज्ञात होने पर वापस आया । कई बार इस प्रकार परीक्षा और तर्क करने से वह सत्य ज्ञान को पहुँच गया, परन्तु विरोचन एक ही बार आकर और जो कुछ उलटा-सीधा सुना था उसी को सिद्धान्त मानकर चुप बैठ गया और उन्हीं सन्दिग्ध बातों का असुरों में प्रचार करने लगा । यहाँ से आसुर उपनिषद् का आरम्भ हुआ । इस उपनिषद् की उत्पत्ति अफ्रीका खण्ड में हुई, क्योंकि असीरिया और इजिप्ट के निवासी असुर कहलाते थे । असीरिया में ही असुरबाणापाल और असुरनासिरपाल नामी राजा हुए हैं । वे लोग अपने को असुर ही कहते थे । इजिप्टवालों से उनकी रिश्तेदारी भी थी । इजिप्ट अफ्रीका में ही है । वहाँ से ही आसुर उपनिषद् का सिद्धान्त प्रचलित हुआ है । मद्रासी द्रविड़ों में अफ्रीका का निवासी हिट्टाइट (Hittite) जाति का मिश्रण है ही । यह जाति यद्यपि एशिया माइनर की बसनेवाली कही जाती है, परन्तु यथार्थ में यह अफ्रीका और आस्ट्रेलिया की ही रहनेवाली है, क्योंकि हिट्टाइटों, आस्ट्रेलिया-निवासियों और द्रविड़ों का रूप-रंग और भाषा आदि सब एक-समान ही हैं । इस प्रकार ये आसुरी सिद्धान्त अफ्रीका में उत्पन्न होकर मद्रास आये और वहाँ से भारत में फैले ।

छान्दोग्य में वर्णित उक्त विरोचन की कथा में लिखा है कि अपने आपको ब्रह्म माननेवाले असुरों की यह पहचान है कि वे मुर्दे को वस्त्रालङ्घार से सजाकर गाड़ते हैं और इसी में दोनों लोकों की जय समझते हैं । यह इशारा मिस्रवालों की ममी और पिरामिडों की ओर है । वहाँ पर मुर्दे इस प्रकार रक्खे जाते हैं और वहीं पर इसमें लोक-परलोक की जय मानी जाती है । इस कथन की पुष्टि में हम यहाँ छान्दोग्य उपनिषद् से यह सारा प्रकरण लिखते हैं और बतलाते हैं कि किस प्रकार आसुर उपनिषद् की उत्पत्ति हुई । यह कथा छान्दोग्य उपनिषद् के आठवें खण्ड में है । वहाँ लिखा है कि इन्द्र और विरोचन प्रजापति के पास गये । प्रजापति ने कहा कि आँख में जो पुरुष है, वही आत्मा है । इसपर विश्वास करके दोनों ने दर्पण में देखा तो जिस प्रकार के वे थे वैसे ही दिखे और लौटकर प्रजापति से कहा कि—

तौ होचतुर्यथैवेदमावां भगवः साध्वलंकृतौ सुवसनौ परिष्कृतौ स्व एवमेवेमौ भगवः  
साध्वलंकृतौ सुवसनौ परिष्कृतावित्येष आत्मेति होवाचैतदमृतमभयमेतद् ब्रह्मेति तौ ह  
शान्तहृदयो प्रवव्रजतुः ।

—छान्दोग्य ८।८।३

अर्थात् जैसा यह शरीर साफ-सुधरा पहले था वैसा ही अब भी देखते हैं। हे भगवन्! जैसे हम दोनों विमल वस्त्रों से अलंकृत हैं उसी प्रकार हम दोनों दर्पण में विमल और उत्तम वस्त्रों से अलंकृत दिखलाई पड़ते हैं। तब प्रजापति बोले कि 'यही आत्मा है, यही अमृत है, यही अक्षय है और यही ब्रह्म है'। यह सुनकर वे दोनों शान्त हृदय वहाँ से चले गये। इसपर प्रजापति ने कहा कि—

तौ हान्वीक्ष्य प्रजापतिरुवाचाऽनुपलभ्यात्मानमननुविद्य व्रजतो यतर एतदुपनिषदो  
भविष्यन्ति । देवा वाऽसुरा वा ते पराभविष्यन्तीति सह शान्तहृदय एव विरोचनोऽ सुरान्  
जगाम् । तेभ्यो हैतामुपनिषदं प्रोवाचाचात्मैवेह महत्य आत्मा परिचर्य्य आत्मानमेवेह महयन्नात्मनं  
परिचरन्नभौ लोकाववाप्नोतीमं चामुञ्चेति ।

—छान्दोग्य ८।८।४

अर्थात् ये आत्मा को न पाकर और न जानकर जाते हैं। जो देवता अथवा असुर इस ज्ञान-वाले होंगे, वे नष्ट हो जाएँगे। अब वह प्रसिद्ध शान्तहृदय विरोचन असुरों के निकट पहुँचा और उनसे यह उपनिषद् कहने लगा कि इस लोक में मनुष्य स्वयं ही पूजनीय और सेवनीय है, इसलिए यहाँ अपने आपको ही पूजता हुआ और सेवन करता हुआ मनुष्य दोनों लोकों को प्राप्त होता है। इस उपदेश के अनुसार लोग अपने आपको ही ईश्वर मानने लगे और दान-यज्ञादिकों को बन्द कर दिया। इसके आगे लिखा है कि—

तस्मादप्यद्येहाददानमश्रद्धानमयजमानमाहुरासुरो बतेत्यसुराणाथ्यह्येषोपनिषत्प्रेतस्य शरीरं  
भिक्षया वसनेनालंकारेणेति सर्थस्कुर्वन्त्येतेन ह्यमुं लोकं जेष्यन्तो मन्यन्ते ।

—छान्दोग्य ८।८।५

अर्थात् यही कारण है कि आजकल भी यहाँ असुर लोग न दान में श्रद्धा रखते हैं और न यज्ञ करते हैं। लोग उनके इस ज्ञान को आसुर उपनिषद् कहते हैं। वे मृत शरीरों को अनेक मसालों से संचारते और वस्त्र-आभूषणों से सजाते हैं और समझते हैं कि इसी से हम परलोक जीत लेंगे।

इस वर्णन में असुरों के ऐसा समझने और यज्ञादि बन्द करने का कारण स्पष्ट विद्यमान है। प्रजापति ने उनसे पहले ही कह दिया था कि 'एष आत्मेति होवाचैतदमृतमभयमेतद् ब्रह्मेति', अर्थात् यही आत्मा है, यही अमृत है, यही अभय है और यही ब्रह्म है। बस, तभी से अफ्रीका, इजिप्ट, असीरिया और बेबिलोन में अपने आपको ब्रह्म कहने की प्रथा चली और 'असुराणां ह्येषोपनिषद्', अर्थात् यही असुरों का उपनिषद् कहलाया। यह अहंभाव और नास्तिकता की बात गीता की आसुरी सम्पत्ति के वर्णन से अच्छी प्रकार स्पष्ट हो जाती है। गीता में आसुरी सम्पत्ति की अनेक बातों का वर्णन करते हुए कहा गया है कि—

असत्यमप्रतिष्ठन्ते जगदाहुरनीश्वरम् ।<sup>१</sup>

ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहम्बलवान् सुखी ॥<sup>२</sup>

अर्थात् असुर लोग मानते हैं कि यह संसार असत्य है। इसमें कोई ईश्वर नहीं है। मैं ही ईश्वर हूँ, मैं ही भोक्ता हूँ और मैं ही सिद्ध, बलवान् और सुखी हूँ।

उपनिषद् और गीता के इन प्रमाणों से स्पष्ट हो जाता है कि आसुर उपनिषद् का प्रधान

१. गीता १६।८

२. गीता १६।१४

सिद्धान्त यही है कि अपने-आपके अतिरिक्त परमेश्वर कोई वस्तु नहीं है, इसलिए सांसारिक सुखों में ही—खाने, पीने, भोग और ऐश्वर्य में ही—जीवन व्यतीत करो। असुरों के इस सिद्धान्त की तुलना करते हुए कुछ लोग कहते हैं कि वेदान्त का यह सिद्धान्त कि ‘ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः’, अर्थात् ब्रह्म सत्य है, जगत् मिथ्या है और जीव ही ब्रह्म है, आसुर उपनिषद् का ही परिमार्जित रूप है, क्योंकि वेदान्तियों का ‘अहं ब्रह्मास्मि’ असुरों के गीतोक्त ‘ईश्वरोहम्’ और असुरों के उपनिषदोक्त ‘य एष आत्मेति, एतद् ब्रह्म’ से अच्छी प्रकार मिल जाता है, इसलिए दोनों सिद्धान्त एक ही हैं। जो हो, हम यहाँ इस बात पर बहस नहीं कर रहे। हम तो यहाँ केवल आसुर उपनिषद् की उत्पत्ति और उसका प्राचीन उपनिषद् और गीता आदि में मिश्रण ही दिखला रहे हैं और प्रमाणित करना चाहते हैं कि आसुर उपनिषदों के सिद्धान्त वैदिक सिद्धान्तों के विपरीत हैं। इतना ही नहीं, प्रत्युत यह भी दिखलाना चाहते हैं कि आसुर उपनिषद् वेदों का अपमान भी करते हैं। आसुर उपनिषद् के रचयिता जानते थे कि अनादि मान्य वेदों को आर्यहृदयों से सहज में नहीं निकाला जा सकता, इसलिए उन्होंने यह प्रसिद्ध किया कि वेदों में ज्ञान की शिक्षा नहीं है। वे तो केवल यज्ञों की विधि बतलाते हैं और स्वर्ग की कामना कराते हैं। इस प्रकार उन्होंने वेदों की महत्ता और उच्चता को कम करने का उद्योग किया है। नीचे का वर्णन इस विषय में पर्याप्त प्रकाश डालता है। मुण्डक उपनिषद् में लिखा है कि—

तस्मै स होवाच । द्वे विद्ये वेदितव्ये इति ह स्म यद् ब्रह्मविदो वदन्ति परा चैवापरा च ॥ ४ ॥

तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते ॥ ५ ॥

—मु०उ० १ । १ । ४-५

अर्थात् दो प्रकार की विद्याएँ हैं, एक परा दूसरी अपरा। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष आदि अपरा विद्याएँ हैं और जिससे वह अक्षर प्राप्त होता है और वह परा विद्या है।

इस वर्णन से ज्ञात होता है कि वेदों में पराविद्या का वर्णन नहीं है, अर्थात् वेद परमतत्त्व का स्वरूप और उसकी प्राप्ति की विधि नहीं बतला सकते, परन्तु ‘अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते’ इस वाक्य से उस पराविद्या का ज्ञान कराया जा रहा है, जो परमतत्त्व की शिक्षा देता है, परन्तु पराविद्या का ज्ञान क्या है? वह ज्ञान सिवा आसुर उपनिषद् के और कुछ नहीं है। दश उपनिषदों में ईशोपनिषद् वेदभाग ही है। इसके सिवा वेदों में पुरुषसूक्त, नासदीयसूक्त आदि सैकड़ों ऐसे स्तोत्र और स्थल हैं जो बड़ी उत्तमता से जीव, ब्रह्म और प्रकृति के भेद, सृष्टि की पूर्व अवस्था, उसकी रचना, पुनर्जन्म, मोक्ष का साधन और मोक्ष आदि जितने प्रकरण ब्रह्मविद्या से सम्बन्ध रखते हैं, सबका उत्तम वर्णन करते हैं, परन्तु यहाँ तो आसुरी धर्म, आसुरी आचार और आसुरी सिद्धान्तों का प्रचार करना है, इसलिए कहा गया है कि वेदों में पराविद्या नहीं है। इस प्रकार की बातों से आसुरी उपनिषद् का परिचय कराया गया है। इसके अतिरिक्त छान्दोग्य १ । ४ । ३ में भी वेदों पर अच्छी चोट की गई है। वहाँ लिखा है कि—

तानु तत्र मृत्युर्यथा मत्स्यमुदके परिपश्येदेवं पर्यपश्यदृचि साम्नि यजुषि ।

ते नु वित्त्वोर्ध्वा ऋचः साम्नो यजुषः स्वरमेव प्राविशन् ।

अर्थात् जैसे मछली को जल में मत्स्यघाती देखता है, उसी प्रकार मृत्यु ने देवों को ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद में स्थित देखा। वे देव मृत्यु के इस आशय को जानकर ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद से ऊपर स्वर को प्राप्त हुए।

इस आख्यायिका का रचनेवाला इस अलंकृत भाषा के द्वारा कहता है कि वेदों के आश्रित

रहने से मृत्यु कभी नहीं छोड़ता, अर्थात् आवागमन बना रहता है, परन्तु वेदों के आगे स्वर का आश्रय लेनेवाला मृत्यु से छूटकर मुक्त हो जाता है। यहाँ भी वही परा और अपरा विद्यावाली बात बहुत बारीकी से कही गई है। यदि यह स्वर ओंकार है तो क्या वेदों में ओंकार की महिमा का वर्णन नहीं है, क्या यजुर्वेद में 'ओ३३३ क्रतो स्मर' नहीं कहा गया और क्या यजुर्वेद के अन्त में 'ओ३३३ खं ब्रह्म' उपस्थित नहीं है? जब हम मूलसंहिताओं में ही ओंकार की इतनी महिमा देखते हैं, तब स्वर के लिए वेदों को छोड़कर किसी अन्य साहित्य की ओर इशारा क्यों है? कहा नहीं जा सकता कि यह 'स्वर' क्या है? कहीं कबीर साहब का-सा 'अनहत शब्द' तो नहीं है? हमारी समझ में तो मिश्रण करनेवालों को जिस बात की आवश्यकता है वह वेदों से पूरी नहीं होती, इसीलिए कहीं स्वर के नाम से, कहीं परा के नाम से आसुर सिद्धान्तों की ओर इशारा किया गया है और वेदों की निन्दा की गई है। जिस प्रकार यह वेदों की निन्दा उपनिषदों में है उसी प्रकार वेदों की निन्दा गीता में भी विद्यमान है। गीता के उस प्रकरण के पढ़ने से प्रस्थानत्रयी की भीतरी जालसाजी और आसुरी प्रचार की विधि पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। गीता में वेदों को किस प्रकार गालियाँ दी गई हैं, यहाँ हम उसका संक्षेप से दिग्दर्शन कराते हैं। गीता के दूसरे अध्याय ४१-४६, ५३ में लिखा है कि—

व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन। बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम् ॥ ४१ ॥  
 यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदन्त्यविपश्चितः। वेदवादरताः पार्थ नान्यदस्तीति वादिनः ॥ ४२ ॥  
 कामात्मानः स्वर्गपरा जन्मकर्मफलप्रदाम्। क्रियाविशेषबहुलां भोगैश्वर्यगतिं प्रति ॥ ४३ ॥  
 भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृत् चेतसाम्। व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते ॥ ४४ ॥  
 त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन। निर्द्वन्द्वो नित्य सत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान् ॥ ४५ ॥  
 यावानर्थं उदपाने सर्वतः संप्लुतोदके। तावान्सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः ॥ ४६ ॥  
 श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला। समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्यसि ॥ ५३ ॥

अर्थात् बहुत शाखावाले, अनन्त वेदों से बुद्धि चंचल हो जाती है। वेदवादरत जो इस प्रफुल्लित वेदवाणी के द्वारा कहते हैं कि वेदों के सिवा और कुछ नहीं है, वे अज्ञानी हैं। वे काम, भोग और स्वर्ग के माननेवाले हैं और कर्म में अनेक प्रकार की विधि करनेवाले तथा भोग और ऐश्वर्य में ही प्रीति रखते हैं, ऐसे लोग समाधि को प्राप्त नहीं हो सकते। हे अर्जुन! वेद त्रिगुणात्मक हैं, इसलिए तू निर्द्वन्द्व, शुद्धचित्, योगक्षेम का त्यागी, आत्मनिष्ठ, अर्थात् निस्त्रैगुण्य हो जा। वेद बहुत उपयोगी नहीं हैं। वे तो बड़े तड़ाग की अपेक्षा एक छोटे-से कुएँ के ही बराबर हैं। वेद से तेरी मति मन्द हो गई है, अतः जब निश्चल बुद्धि होगी तभी योग प्राप्त होगा।

यह है गीता में वर्णित वेदों की कीर्ति! इस वर्णन में विलासियों के जितने लक्षण हैं वे सब वैदिकों में घटा दिये गये हैं, और वेदों को मोक्षमार्ग के लिए महान् हानिकारक बतलाया गया है। वेदों की इस निन्दा का कारण स्पष्ट है। आसुर सिद्धान्तप्रवर्तक वेदों की विधि और निषेध में बड़ी अड़चन देखते थे, इसीलिए उन्होंने वेद के विरुद्ध इस प्रकार की रचना की है, क्योंकि 'त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन' वाक्य पर कहा गया है कि 'निस्त्रैगुण्ये पथि विचरतां को विधिः को निषेधः', जिसका यही तात्पर्य है कि त्रिगुणातीत, अर्थात् अवैदिक हो जाने पर फिर कोई विधि-निषेध नहीं रहता।

यह सारा वृत्तान्त अधिक स्पष्ट हो जाता है जब हम आसुर उपनिषद् में लिखा हुआ पाते हैं कि उपनिषद् विद्या को ब्राह्मण नहीं जानते थे। छान्दोग्य ५।३।७ में लिखा है कि 'न प्राक् त्वतः पुरा विद्या ब्राह्मणान् गच्छति', अर्थात् तुमसे पूर्व इस विद्या को ब्राह्मण नहीं जानते थे।

इसी प्रकार बृहदारण्यक ६।२।८ में लिखा है कि 'यथेयं विद्येतः पूर्वं न कस्मिष्ठश्चन ब्राह्मण उवास ताम्', अर्थात् इसके पूर्व कोई ब्राह्मण इस विद्या को नहीं जानता था। इस वर्णन से यह ज्ञात हुआ कि इस आसुर उपनिषद् को, जो वेदों के विरुद्ध है, ब्राह्मण नहीं जानते थे। ठीक है, जो बात वेद में ही नहीं है उसको ब्राह्मण कैसे जानते, किन्तु प्रश्न तो यह है कि इसे जानता कौन था और यह आर्यों की विद्या है या नहीं। इस प्रश्न का उत्तर जब तक न गढ़ लिया जाता तब तक आर्यों में इसका प्रचार हो ही नहीं सकता था, इसलिए इन्होंने बेचारे क्षत्रियों को अपने अनुकूल बनाया, क्योंकि छान्दोग्य ५।३।७ में लिखा है कि 'सर्वेषु लोकेषु क्षत्रस्यैव प्रशासनमभूत्', अर्थात् इस विद्या में सदैव क्षत्रियों का ही अधिकार रहा है। इसी प्रकार फिर छान्दोग्य ३।११।४ में लिखा है कि 'तद्वैतद् ब्रह्मा प्रजापतय उवाच प्रजापतिर्मनवे मनुः प्रजाभ्यः', अर्थात् इस विद्या को ब्रह्मा ने प्रजापति को, प्रजापति ने मनु को और मनु ने प्रजा को बतलाया। इस प्रकार यह विद्या क्षत्रियों से ही प्रचलित हुई और उन्हीं में रही। इस उक्ति का कारण यह है कि ये मिश्रण करनेवाले विदेशी भी पहले के प्रायः क्षत्रिय ही थे। हम आर्यों के विदेशगमन में लिख आये हैं कि क्षत्रियजाति के कतिपय मनुष्य वृष्टल होकर आन्ध्रादि हो गये थे और आस्ट्रेलियादि देशों को चले गये थे। इस ऐतिहासिक सत्यता के आधार पर ही इन्होंने यह विद्या क्षत्रियों की बतलाई है और इसी आधार से इन्होंने कुछ क्षत्रियों को मिलाकर, उपनिषदों में मिश्रित आसुरी लीला का प्रचार करने के लिए एक गुप्त मण्डली भी बनाई थी<sup>१</sup>। इसी समस्त कार्यसाधन के लिए लिखा है कि यह विद्या क्षत्रियों की है। जो हो, परन्तु बड़े ही दुःख की बात है कि इस आसुरी उपनिषद् को इन जालसाजों ने हमारे आर्यमुकुट हिन्दूकुलपति पूज्य क्षत्रियों के नाम से प्रसिद्ध किया। यह प्रसिद्ध उपनिषदों तक ही नहीं रही। प्रत्युत यह ज्ञात गीता में भी डाला गया है। गीता में स्पष्ट लिखा है कि—

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्। विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत्॥  
एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः। स कालेनेह महता योगो नष्टः परन्तप॥  
स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः। भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं होतदुत्तमम्॥  
राजविद्या राजगुहां पवित्रमिदमुत्तमम्। प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम्॥

— भगवद्गीता<sup>२</sup>

अर्थात् इस विद्या को सूर्य ने मनु को और मनु ने इक्ष्वाकु को सिखलाया। इस प्रकार इक्ष्वाकु से वंशपरम्पराप्राप्त यह विद्या क्षत्रिय राजर्षियों में चली आ रही है। यह राजविद्या है और गुप्तविद्या है। तू मेरा मित्र है, इसलिए हे अर्जुन ! वह तुझे बतलाता हूँ।

उपनिषद् और गीता के इस समस्त वर्णन से, कम-से-कम इतना तो निर्णय हो ही गया कि उपनिषदों का बहुत-सा भाग वैदिक नहीं है और न उसका बहुत-सा भाग ब्राह्मणों द्वारा अनुमोदित ही है। इतना ही नहीं, प्रत्युत यह भी निर्णय हो गया कि वह एक गुप्त मण्डली के द्वारा आसुर प्रवृत्तिवाले राजनैतिक पुरुषों में वंशपरम्परा से आ रहा है। हमारा दृढ़ विश्वास है कि इसका आर्यक्षत्रियों से कुछ भी सम्बन्ध नहीं है, क्योंकि इन उपनिषदों में असुरों की आसुरी लीला पर्याप्त परिमाण में पाई जाती है और इन उपनिषदों में आसुराचार्यों की जो वंशावलियाँ दी

१. जुलाई सन् १९१५ की 'सरस्वती' में पण्डित जनार्दन भट्ट एम०ए० लिखते हैं कि 'उपनिषद्, रहस्य और गुह्य आदि शब्द उस गोष्ठी के सूचक हैं, जो क्षत्रियों ने ब्रह्मविद्या के उपदेश के लिए बनाई थी'।

२. गीता ४।१-३

३. गीता ९।२

हैं, उनमें आये हुए भालुकी, क्रौंचकी, आसुरायण और वैयाघ्रपदी आदि नामों से ही पाया जाता है कि वे असुर हैं, क्षत्रिय नहीं। इसके अतिरिक्त ब्रह्मविद्या का स्वाँग करनेवाले इन अवैदिकों के रहन-सहन से भी प्रतीत होता है कि वे वैदिक नहीं हैं। इन्हीं उपनिषदों में 'वैदिक ब्रह्मपरायणता और लौकिक ऐश्वर्य में क्या भेद है, पारलौकिक साधन के योग्य कौन नहीं हैं और ब्रह्म-प्राप्ति किससे होती है', आदि बातों का स्पष्ट वर्णन है। कठोपनिषद् में लिखा है कि श्रेय और प्रेय दो मार्ग हैं। श्रेय को विद्या और प्रेय को अविद्या कहते हैं। दोनों परस्पर विरुद्ध हैं। श्रेय से निवृत्ति और निवृत्ति से मोक्ष होता है तथा प्रेय से प्रवृत्ति और प्रवृत्ति से जन्म-मरण होता है। धन, ऐश्वर्य आदि लौकिक सुखों का समावेश प्रेय में है और इन सबका त्याग तथा परलोकचिन्ता आदि का समावेश श्रेय में है<sup>१</sup>। इस भेद से प्रतीत होता है कि ब्रह्मप्राप्तिवाले वैदिक ब्रह्मज्ञानी श्रेयमार्गी थे<sup>२</sup>। आसुर उपनिषद् के आचार्य प्रेयमार्गी थे। उनके पास बड़े-बड़े मकान, वस्त्रालंकार, रथादि यान, दास-दासी, सुन्दरी स्त्रियाँ और मांस-शाराब की पूरी भरमार थी। वे महाव्यभिचारी थे और उनके कृत्य आसुरी और राक्षसी थे।

यहाँ हम क्रम से उनकी उपर्युक्त समस्त बातें उपनिषदों से ही उद्धृत करते हैं। सबसे पहले हम यह दिखलाते हैं कि उनके बड़े-बड़े महल थे। छान्दो० ५। ११। १ में उनको 'प्राचीनशाल औपमन्यवः। महाशाला महाश्रोत्रियाः' लिखा है। इसी प्रकार मुण्डक १। १। ३ में 'शौनको ह वै महाशालः' लिखा हुआ है। इन वाक्यों में इनको बड़े-बड़े महलवाले कहा गया है। इसके सिवा कठोपनिषद् १। २५ में नचिकेता का आचार्य कहता है कि नचिकेता! तू मुझसे बड़े-बड़े मकान, ज्ञानींदारी, आभूषण, हाथी, घोड़े, पुत्र, पौत्र और सुन्दर-सुन्दर स्त्रियाँ माँग ले, परन्तु यह प्रश्न न कर। इन बातों से स्पष्ट हो जाता है कि आसुर उपनिषद् के आचार्य बड़े ऐश्वर्यवान् थे और उनको चेलों से ख़बू धन मिलता था, क्योंकि छान्दोग्य उपनिषद् ४। २। ५ में एक असुर आचार्य की आय और चरित्र का वृत्तान्त इस प्रकार वर्णित है कि रैक्वनामी एक ऋषि के पास राजा जानश्रुति छह सौ गाएँ, सुवर्ण, मणि, रथ और बहुत-सा धन लेकर गये, परन्तु ऋषि ने कहा कि हे शूद्र! यह हमको नहीं चाहिए। राजा दुबारा एक हजार गौवें, बहुत-सा धन, अपनी कन्या और उस गाँव का पट्टा जिसमें ऋषि रहते थे लेकर गया और प्रणाम किया। कन्या को देखते ही ऋषि पिघल गये और—

**तस्या ह मुखमपोद् गृह्णन्नुवाचाऽजहारेमा: शूद्रानेनैव मुखेनाऽलापयिष्यथा इति।**

अर्थात् राजा की उस कन्या के मुख को प्यार से देखकर ऋषि बोले कि हे शूद्र! यह जो भेंट लाये हो सो ठीक है, अब इस कन्या के मुख से ही (इसके मुखकमल के कारण ही) आप मेरा भाषण सुन सकेंगे।

इस घटना से सहज ही विचार होता है कि यह किस प्रकार का ऋषि था, इसका क्या व्यवसाय था और उस समय के धर्मान्ध चेले कैसे थे? हमारी समझ में तो वे आजकल के धर्मान्धों से कम नहीं था। उस समय बड़ा ही अत्याचार हो रहा था। इन असुराचार्यों के पास सिवा इस कामकला के और कोई काम ही न था, क्योंकि आसुर उपनिषद् का निम्न वर्णन कोकशास्त्र को भी मात कर रहा है। बृहदा० ६। २। १३ में और छान्दोग्य ५। ८। १-२ में लिखा है कि—

१. कठोपनिषद् २। १-५

२. यात्रामात्र प्रसिद्धर्थम्। —मनुस्मृति

योषा वा अग्निगांतम तस्य उपस्थ एव समिल्लोमानि धूमो योनिरचिर्यदन्तः करोति तेऽङ्गारा अभिनन्दा विस्फुल्लिङ्गास्तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवा रेता जुह्वति तस्या आहुत्यै पुरुषः सम्भवति ॥ योषा वाव गौतमाग्निस्तस्या उपस्थ एव समिद्यदुपमन्नयते सधूमो योनिरचिर्यदन्तः करोति तेऽङ्गारा अभिनन्दा विस्फुल्लिङ्गः ॥ १ ॥ तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवा रेतो जुह्वति तस्या आहुतेर्गर्भः सम्भवति ॥ २ ॥

उक्त दोनों वर्णन एक ही भाषा में एक ही भाव के व्यक्त करनेवाले हैं। इनमें अश्लीलता की पराकाष्ठा है। इनका अर्थ लिखने में भी संकोच होता है। भाव यह है कि स्त्री अग्नि है, पुरुषेन्द्रिय ही समिधा है, स्त्री का गुप्ताङ्ग ही ज्वाला है, उसका आकर्षण ही धूम है, प्रवेश ही अंगार है, आनन्द ही चिनगारी है और रेत ही आहुति है।

इस वर्णन में यज्ञ के लिए बड़ी ही घृणित उपमा दी गई है। यह उपमा नहीं है, प्रत्युत वैदिक यज्ञों और कर्मकाण्डों की निन्दा करके इसी प्रकार के यज्ञों का प्रचार किया गया है। इसी के लिए लिखा है कि यह विद्या ब्राह्मण नहीं जानते थे। यह तो यज्ञ की उपमा हुई, अब तनिक वेदपाठ की उपमा सुनिए। सभी जानते हैं कि वेदपाठ में सामग्रान की महिमा महान् है। उसके गान की बहुत-सी उपमाएँ भी हैं, परन्तु आसुर उपनिषद् जो उपमा देता है और जिस सिद्धान्त का उपदेश करता है वह महान् अश्लील और भयंकर है। छान्दोग्य में लिखा है कि—

उपमन्नयते स हिङ्गरो ज्ञपयते स प्रस्तावः स्त्रिया सह शेते स उद्गीथः प्रति स्त्रीं सह शेते स प्रतिहारः कालं गच्छति तन्निधनं पारं गच्छति तन्निधनमेतद्वामदेव्यं मिथुने प्रोतम् ।

—छान्दो० २ । १३ । १

अर्थात् सन्देशा भेजना हिंकार, सङ्केत करना प्रस्ताव, रति उद्गीथ, प्रत्येक स्त्री के साथ मुँह काला करना प्रतिहार और रुकावट तथा वीर्यपात निधन है। यह वामदेव्य गान मैथुन के द्वारा समझाया गया है। इसमें हिंकार, प्रस्ताव, उद्गीथ आदि सामग्रायन की विधियाँ हैं। स्वरसाधन, राग का अलाप, सरागम आदि जिस प्रकार प्रारम्भ किये जाते हैं उसी प्रकार सामग्रायन की विधि में भी हिंकार, प्रस्ताव आदि होते हैं। उनके साथ-साथ मैथुन, वह भी प्रत्येक स्त्री के साथ बलात्कर किस प्रकार पवित्र सामवेद को कलङ्कित किया गया है, यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है। इसके आगे फिर कहते हैं—

स य एवमेतद्वामदेव्यं मिथुने प्रोतं वेद मिथुनी भवति मिथुनान्मिथुनात्प्रजायते सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति महान् प्रजया पशुभिर्भवति महान् कीर्त्या न काञ्चन परिहरेत्तद् ब्रतम् ॥१॥

अर्थात् जो वामदेव्य गान को मैथुन में ओतप्रोत जानता है वह मिथुनी (मैथुन में प्रवीण) होता है, इस मैथुन से सन्तानवाला होता है, सारी आयु सुखी रहता है, बहुत दिन जीता है, बड़ा धनी और कीर्तिवाला होता है, इसलिए किसी स्त्री को न छोड़ना चहिए, यही ब्रत है।

इसका भाष्य करते हुए शंकराचार्य कहते हैं कि 'न काञ्चन काञ्चिदपि स्त्रियं स्वात्मतल्प-प्राप्तां न परिहरेत्समागमार्थिनीम्', अर्थात् समागम चाहनेवाली जो अपनी शश्या पर आवे तो ऐसी किसी भी स्त्री को न छोड़े। अब भी कुछ शेष रह गया? हम नहीं कह सकते कि इसमें कौन-सी विशेषता है और ब्रह्मविद्या से इसका क्या सम्बन्ध है? क्या उपनिषदों में ऐसी बातें होनी चाहिएँ? इसपर कई एक टीकाकारों ने 'न काञ्चन परिहरेत्' का अर्थ यह किया है कि दम्पती परस्पर किसी को न छोड़े, परन्तु पहली श्रुति में 'प्रतिस्त्री सह शेते', अर्थात् प्रत्येक स्त्री

के साथ सोके, लिखा है। इससे किसी को भी न छोड़े यह घृणित वाक्य पवित्र दम्पतिप्रेम में नहीं बैठता। यह तो सारा वर्णन व्यभिचार के ही प्रचार का है, क्योंकि बृहदारण्यक ६।४।१२ में लिखा है कि 'अथ यस्य जायायै जारः स्यात्तं चेद् द्विष्यादामपात्रेऽग्निमुपसमाधाय०', अर्थात् व्यभिचारिणी स्त्री को इस विधि से शुद्ध कर देना चाहिए। इससे यह सिद्ध होता है कि असुराचार्य व्यभिचार को युक्ति से बड़ी ही सरलता दे रहे हैं। यज्ञ और वेद के स्थान में प्रति स्त्री के साथ मुँह काला करना, किसी को न छोड़ना और उन स्त्रियों को इस विधि से शुद्ध करके उनके घरबालों को समझा देना ही इनका उद्देश्य प्रतीत होता है। जहाँ वेद कहते हैं कि 'ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत०', अर्थात् ब्रह्मचर्य से ही देवता अमृत को प्राप्त होते हैं और जहाँ छान्दोग्य ८।४।३ कहता है कि 'तद्य एवैतं ब्रह्मलोकं ब्रह्मचर्येणानुविन्दन्ति तेषामेवैष ब्रह्मलोकस्तेषाऽसर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति', अर्थात् वे निश्चय ही ब्रह्मचर्य से ब्रह्मलोक को प्राप्त होते हैं और ब्रह्मलोकवासी सब लोकों में जानेवाले इच्छाचारी होते हैं, वहाँ आसुर उपनिषद् की अश्लील और बीभत्स काम-कथाएँ आकाश-पाताल का अन्तर पैदा कर देती हैं। यही नहीं कि आसुर उपनिषदों ने व्यभिचार को ही स्थान दिया है। वे मांस खाने का भी आदेश करते हैं। बृहदारण्यक उपनिषद् में है कि—

अथ य इच्छेत्पुत्रो मे पण्डितो विगीतः समितिंगमः शुश्रूषितां वाचं भाषिता जायेत  
सर्वान्वेदाननुब्रूवीत सर्वमायुरियादिति माध्यसौदनं पाचयित्वा सर्पिष्मन्तमश्नीयातामीश्वरौ  
जनयित वा औक्षेण वाऽर्थभेण वा ।

—बृहदा० ६।४।१८

अर्थात् यदि इच्छा हो कि मेरा पुत्र पण्डित, सभा में जाने योग्य, अच्छा भाषण करनेवाला, सब वेदों का ज्ञाता और सारी आयु सुख से रहनेवाला हो तो उसे चाहिए कि वह घोड़े या बैल का मांस घृत मिले भात के साथ खावे।

गाय, बैल, घोड़ा, बकरी, भेड़ी—ये तो आर्यों की बड़ी प्यारी वस्तुएँ हैं। इनको मारना और खाना उनकी संस्कृति के विरुद्ध है, इसलिए यह कभी सम्भव नहीं है कि आर्यों ने इस प्रकार की शिक्षा दी हो। यह सारा हत्याकाण्ड तो अनार्यों का ही है। गीता में ठीक ही लिखा है कि 'यजन्ते नामयज्ञस्ते दध्भेनाविधिपूर्वकम्'१, अर्थात् ये असुर यज्ञों में मांस, मद्य और व्यभिचार की ही प्रधानता रखते हैं, इसीलिए इन अनार्य असुरों ने समस्त राक्षसी लीला को ब्रह्मविद्या के नाम से उपनिषदों में बड़ी खूबी के साथ मिश्रित किया है। वे समझते थे कि सभी चाहते हैं कि हमारे घर में सर्वाङ्ग सुन्दर और विद्वान् लड़का हो, अतः ऐसी शास्त्राज्ञा पाकर सभी की प्रवृत्ति मांस खाने की ओर हो जाएगी। वही हुआ भी। आर्यजाति इसी प्रकार के आसुरी साहित्य के कारण मांसभक्षण जैसे आसुरी स्वभाव को शास्त्रीय मानेवाली हो गई। इतना ही नहीं हुआ प्रत्युत बृहदारण्यक ४।३।२१ और ४।३।३४ में ब्रह्मानन्द जैसे उच्चपद की उपमा स्त्रीभोग से देकर इन्होंने आर्यों को ब्रह्मप्राप्ति की ओर से भी हटाकर महाकामी बना दिया है और उसी प्रकरण के आगे लिख दिया है कि 'एतस्मिन् स्वप्राप्ते रत्वा चरित्वा'२, अर्थात् बेहोशी की हालत में—सुषुप्ति में—मनुष्य आनन्द प्राप्त करता है। इस वाक्य से ज्ञात होता है कि ये लोग शराब पीकर ही यह सुषुप्ति प्राप्त करते थे, क्योंकि जहाँ मांस हो और व्यभिचार हो वहाँ सुरा होनी ही चाहिए। यही कारण है कि तैत्तिरीयब्राह्मण में सुरा का स्पष्टीकरण करते हुए लिखा है कि 'यस्य पिता पितामहादि सुरां न पिबेत् स ब्रात्यः', अर्थात् जिसके पिता-पितामहादि शराब न पीते हों,

१. अर्थव० १।५।१९

२. गीता १६।१७

३. बृह० ४।३।३४

वह नीच है।

इस प्रकार यहाँ तक हमने उपनिषदों में आसुरी सिद्धान्तों के मिश्रण के अनेक प्रमाण दिये। अब हम नहीं समझते कि इस प्रकार के प्रमाणों की और आवश्यकता है। गीता में जितने लक्षण आसुरी सम्पत्तिवालों के लिखे हैं, वे सब इन उपनिषदों में मिश्रण करनेवालों के साथ मिल जाते हैं। कामी, दम्भी, धनलोलुप, मांस-मद्य से यज्ञ करनेवाले और अपने आपको परमेश्वर मानकर इस लोक के सुखोपभोग में जीवन बितानेवालों को गीता में आसुरी सम्पत्तिवाला बतलाया गया है<sup>१</sup>। वही सब बातें हमने इन मिश्रणकर्ताओं में भी देखीं, इसलिए अब यह माने बिना छुटकारा नहीं है कि ये समस्त सिद्धान्त आसुरी हैं। गीता में भी आसुरी सिद्धान्तों का मिश्रण है, क्योंकि उसमें भी दुराचरियों को मोक्षभागी बताया गया है<sup>२</sup>। इस प्रकार हमने देखा कि प्रस्थानत्रयी के दोनों प्रधान साहित्य—उपनिषद् और गीता—आसुर सिद्धान्तों से परिपूर्ण हैं। इसके आगे अब हम ब्रह्मसूत्रों की आलोचना करते हैं और देखते हैं कि उनमें भी क्या-क्या लीला हुई है।

### ब्रह्मसूत्रों की नवीनता

प्रस्थानत्रयी के प्रधान साहित्य उपनिषद् की विशेष रीति से और दूसरे साधारण साहित्य गीता की साधारण रीति से आलोचना हो गई। दोनों साहित्यों में आसुरी सिद्धान्तों का मिश्रण सिद्ध हो गया था। अब उक्त दोनों पुस्तकों के आसुरी सिद्धान्तों को दार्शनिक रूप देने के लिए जो वेदान्तदर्शन नामी नवीन दर्शन गढ़ा गया है उसकी भी आलोचना कर लेनी चाहिए। वेदान्तदर्शन—उत्तरमीमांसा—ब्रह्मसूत्र आदि शब्द एक ही ग्रन्थ के वाचक हैं। यह प्रसिद्ध है कि ये सूत्र वेदव्यास के ही रचे हुए हैं, परन्तु हमारा विश्वास है कि यह पुस्तक साद्यन्त वेदव्यासकृत नहीं है। शायद इस बात में हम भूलते हों तो इसमें तो कुछ सन्देह ही नहीं है कि इसमें वेदव्यास की रचना बहुत थोड़ी है। रायबहादुर चिन्तामणि विनायक वैद्य एम०ए० ‘महाभारतमीमांसा’ के पृष्ठ ५५ पर लिखते हैं कि ‘ब्रह्मसूत्र नामक भी कोई ग्रन्थ रहा होगा और वह वेदान्तसूत्रों में सम्मिलित कर दिया होगा।’ इससे पाया जाता है कि समग्र ब्रह्मसूत्र वेदव्यासकृत नहीं है,

१. द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन् दैव आसुर एव च । देवो विस्तरशः प्रोक्त आसुरम्पार्थ मे शृणु ॥ ६ ॥

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च जना न विदुरासुराः । न शौचं नापि चाचारो न सत्यं तेषु विद्यते ॥ ७ ॥

काममाश्रित्य दुष्पूरं दम्भमानमदान्विताः ॥ १० ॥

कामोपभोगपरमा एतावदिति निश्चिताः ॥ ११ ॥

इदमद्य मया लब्धिमिदप्माप्त्ये मनोरथम् । इदमस्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्धनम् ॥ १३ ॥

असत्यमप्रतिष्ठते जगदाहुरनीश्वरम् ॥ ८ ॥

ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहम्बलवान् सुखी ॥ १४ ॥

आद्योऽभिजनवानस्मि कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया ॥ १५ ॥

अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृताः ।

प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ ॥ १६ ॥

आत्मसम्भाविताः स्तब्धा धनमानमदान्विताः ।

यजन्ते नामयज्ञस्ते दम्भेनाविधिपूर्वकम् ॥ १७ ॥

अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः ।

मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः ॥ १८ ॥

आसुरीं योनिमापत्रा मूढा जन्मनि जन्मनि ॥ २० ॥

२. अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः । सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं सन्तरिष्यसि ॥

अपिचेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् । साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्ववसितो हि सः ॥ —गीता ९। ३०

—गीता अ० १६

इसीलिए वेदान्तदर्शन के अधिकांश स्थल वेदानुकूल नहीं हैं। 'शास्त्रयोनित्वात्'<sup>१</sup>, यह एक सूत्र है जो ईश्वरसिद्धि के लिए इसमें दिया गया है। इसका तात्पर्य यह है कि यदि ईश्वर न होता तो संसार में ज्ञान कैसे आता? दूसरी दलील 'जन्माद्यस्य यतः'<sup>२</sup> की दी गई है। इसका तात्पर्य यह है कि यदि ईश्वर न होता तो संसार की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय कैसे होती? बस, यही दो सूत्र ईश्वरसिद्धि के लिए हैं। इनमें वेदों की कोई बात नहीं है। इसके आगे तीसरी दलील यह है कि 'तत्तु समन्वयात्'<sup>३</sup>, अर्थात् उसका समन्वय होने से—वर्णन होने से—उसका अस्तित्व है। ब्रह्मसूत्रों में समन्वय के जितने प्रमाण उद्भूत किये गये हैं, वे सब उपनिषद् और गीता के ही हैं। उपनिषद् और गीता के भी अधिकतर वही स्थल उद्भूत हुए हैं, जो आसुर हैं। वेद से कुछ भी उद्भूत नहीं किया गया। यदि कहीं वेदों की चर्चा आई है तो भाष्यकारों की ओर से आई है, मूलग्रन्थ की ओर से नहीं। ऐसी दशा में उसे वेदानुकूल कैसे कह सकते हैं? जो ग्रन्थ जिसके अनुकूल होता है, वह उसकी बात अवश्य कहता है, परन्तु यहाँ तो उपनिषदों के शब्दों से सारा ग्रन्थ भरा हुआ है और वेदों का नाम तक भी नहीं है। इस ग्रन्थ ने उपनिषदों को श्रुति और गीता को स्मृति बनाने में बड़ा ज़ोर लगाया है। इससे वास्तविक श्रुति और स्मृति की मान-मर्यादा का बहुत ही हास हुआ है, क्योंकि जो उपनिषद् और गीता वेदों और ब्राह्मणों का तिरस्कार करते हैं उन्हीं को श्रुति और स्मृति बतानेवाला यह ग्रन्थ वेदों के अनुकूल कैसे हो सकता है?

वेदान्तदर्शन की वेदविरुद्धता इस बात से भी प्रतीत होती है कि उसमें सब दर्शनों का—न्याय, वैशेषिक, योग, सांख्य, मीमांसा का—खण्डन है। शंकराचार्य ने वेदान्त के सूत्रों से ही समस्त दर्शनों का खण्डन किया है, परन्तु हम देखते हैं कि वैशेषिक आदि दर्शन वेदों को बुद्धिपूर्वक बतलाते हैं, इसलिए वे वेदानुकूल हैं, परन्तु उनका खण्डन करनेवाला वेदों के अनुकूल कैसे हो सकता है? योगदर्शन पर वेदव्यास ने भाष्य किया है। यदि योगदर्शन खण्डन करने के योग्य होता तो वे उसका भाष्य क्यों करते? इससे तो यही सूचित होता है कि योग का खण्डन करनेवाला वेदान्तदर्शन वेदव्यास की रचना भी नहीं है, क्योंकि यदि यह वेदव्यास की रचना होती तो उसमें बौद्धों के सिद्धान्त का खण्डन न होता, परन्तु वेदान्तदर्शन में बौद्धों के उभय समुदाय का खण्डन है, इससे वह वेदव्यासकृत नहीं है। बौद्धशास्त्रों का स्वाध्याय करनेवाले जानते हैं कि बौद्धधर्म के चार भेद हैं। इन चारों में से दो दल ज्ञानादिक पदार्थों को क्षणिक मानते हैं। ये दोनों दल संसार में दो प्रकार के समुदाय मानते हैं। पहले समुदाय में भूमि, जल, तेज और वायु के परमाणु सम्मिलित हैं। ये बाह्यसमुदाय कहलाते हैं। दूसरे समुदाय में रूप, विज्ञान, वेदना, संज्ञा और संस्कार के पाँच स्कन्ध सम्मिलित हैं। ये अन्तःसमुदाय कहलाते हैं। यही दोनों समुदाय इस सृष्टि का कारण बतलाये जाते हैं और इन्हीं दोनों समुदायों पर वेदान्तदर्शन २। २। १८ में 'समुदाय उभयहेतुकेऽपि तदप्राप्तिः' सूत्र की रचना हुई है। इस सूत्र का अर्थ यह है कि दोनों समुदायों के जड़ होने के कारण उन दोनों से संसार की उत्पत्ति नहीं हो सकती। इस वर्णन से स्पष्ट हो गया कि वेदान्तदर्शन वेदव्यासकृत नहीं है, क्योंकि वेदव्यास के पन्द्रह सौ वर्ष बाद बुद्ध भगवान् का जन्म हुआ है और उनके चार सौ वर्ष बाद बौद्धों में चार प्रकार के सम्प्रदायों का विस्तार हुआ है। ऐसी दशा में ये सूत्र व्यासकृत कैसे हो सकते हैं?

वेदान्तदर्शन के अनेक सूत्र तैत्तिरीय और बृहदारण्यक उपनिषद् के आधार पर बने हैं, इसलिए भी वेदान्तदर्शन वेदव्यासकृत नहीं हो सकता, क्योंकि हम रावणकृत कृष्णयजुर्वेद की

१. वेदान्त० १। १। ३

२. वेदान्त० १। १। २

३. वेदान्त० १। १। ४

उत्पत्ति के इतिहास में लिख आये हैं कि वह व्यास के शिष्य के शिष्य याज्ञवल्क्य के समय में वर्तमान रूप में सम्पादित हुआ है। उसके बहुत दिन बाद उसका ब्राह्मण बना और ब्राह्मण के बहुत दिन बाद उसके उपनिषद् का पृथक् अस्तित्व हुआ, अर्थात् तैत्तिरीय उपनिषद् वेदव्यास के बहुत दिन बाद इस रूप में आया, परन्तु वेदान्तदर्शन का द्वितीय सूत्र तैत्तिरीय उपनिषद् के 'यतो वा इमानि भूतानि०' वाक्य के आधार पर बना है, इसलिए वेदान्तदर्शन व्यासकृत नहीं हो सकता। इसी प्रकार बृहदारण्यक उपनिषद् के अन्त में उसी कृष्णयजुर्वेद की उत्पत्ति से सम्बन्ध रखनेवाला 'आदित्यानीमानि शुक्लानि यजूर्थषिं वाजसनेयेन याज्ञवल्क्येनाख्यायन्ते०', यह वाक्य लिखा हुआ है, जिससे प्रतीत होता है कि यह उपनिषद् भी वेदव्यास के बहुत दिन बाद सङ्कलित हुआ है, परन्तु वेदान्तदर्शन का तृतीय सूत्र बृहदारण्यक उपनिषद् के 'एतस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेवैतत्०' वाक्य के आधार पर बना है, इसलिए भी वेदान्तदर्शन वेदव्यास का बनाया हुआ सिद्ध नहीं होता।

इसके अतिरिक्त वेदान्तदर्शन में अनेक जगह वेदव्यास के नाम से उनकी सम्मति उद्घृत की गई है। उनकी ही नहीं, प्रत्युत उनके पुत्र शुकदेवमुनि की और उनके पिता पराशरजी की भी सम्मति लिखी गई है। जिन सूत्रों में वेदव्यास की सम्मति का वर्णन है वे ये हैं—

पूर्वं तु बादरायणो हेतुत्वव्यपदशात्।

—वेदान्त० ३।२।४१

पुरुषार्थोऽतः शब्दादिति बादरायणः।

—वेदान्त० ३।४।१

अनुष्ठेयं बादरायणः साम्मश्रुतेः।

—वेदान्त० ३।४।१९

द्वादशाहवदुभयविधं बादरायणोऽ तः।

—वेदान्त० ४।४।१२

यह प्रसिद्ध है कि वेदव्यास का नाम बादरायण भी था। ऐसी दशा में वेदव्यास ही अपनी रचना में अपनी सम्मति कैसे उद्घृत करते? इसलिए यह निर्विवाद है कि यह रचना वेदव्यास की नहीं है। वेदव्यास की रचना न होने का एक प्रमाण यह भी है कि उसपर किसी प्राचीन भाष्यकार का भाष्य नहीं है। लोग कहते हैं कि इसपर कोई बौद्धायनी टीका थी, परन्तु पता नहीं कि वह थी या नहीं। इसके अतिरिक्त जितने जाली ग्रन्थ बने हैं उनमें अधिकांश वेदव्यास के ही नाम से बने हैं। ब्रह्मसूत्र भी वेदव्यास के ही नाम से प्रसिद्ध हैं, परन्तु ये भी किसी दूसरे के ही बनाये हुए हैं। यह बात उस समय अधिक पुष्ट हो जाती है जब हम देखते हैं कि भागवत और इस वेदान्तसूत्र का आरम्भ एक ही वाक्य से होता है। भागवत का 'जन्माद्यस्य यतः' और वेदान्तदर्शन का 'जन्माद्यस्य यतः' दोनों एक ही हैं। भागवत के कर्ता का अब तक कोई पक्का पता नहीं लगा, इसलिए इस वेदान्तसूत्र के रचयिता का भी कोई पक्का पता नहीं है। लोग कहते हैं कि गीता भी वेदव्यास कृत है, परन्तु उसमें आये हुए—

ऋषिभिर्बहुधा गीतं छन्दोभिर्विविधैः पृथक्। ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव हेतुमद्विर्विनिश्चितैः॥

—गीता [१३।४]

इस श्लोक से पाया जाता है कि उनके समय में भी कोई ब्रह्मसूत्र थे। इधर देखते हैं कि वेदान्तसूत्रों में अनेक सूत्र गीता के श्लोकों के आधार पर भी रचे गये हैं, ऐसी दशा में यह निर्णय करना कठिन हो जाता है कि वेदव्यास ने पहले कौन-सा ग्रन्थ रचा? गीता के पूर्व ब्रह्मसूत्र उपस्थित हैं और ब्रह्मसूत्रों के पूर्व गीता उपस्थित है। ऐसी दशा में यही कहना सरल प्रतीत होता है कि ये दोनों ग्रन्थ वेदव्यास की रचना नहीं हैं। यहाँ हम थोड़े-से वे सूत्र उद्घृत करते हैं जो गीता

के श्लोकों के आधार पर बनाये गये हैं। वेदान्तसूत्र १।२।६ का 'स्मृतेश्च' सूत्र गीता के 'ईश्वरः सर्वभूतानां हृदेशेऽर्जुन तिष्ठति'<sup>१</sup> के आधार पर बनाया गया है और 'अपि च स्मर्यते' (वेदान्त ० २।३।४५) सूत्र 'ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः'<sup>२</sup> के आधार पर बनाया गया है। इसी प्रकार 'अपि च स्मर्यते' (वेदान्त ० १।३।२४) सूत्र गीता के 'न तद्वासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः'<sup>३</sup> के आधार पर बनाया गया है। इन सब सूत्रों में स्मृति के प्रमाणों की जिज्ञासा पाई जाती है और वह गीता से ही पूरी की जाती है। जिस प्रकार श्रुति का स्थान उपनिषदों को दिया गया है उसी प्रकार स्मृति का स्थान गीता को दिया गया है। शंकराचार्य ने स्पष्ट कर दिया है कि स्मृति शब्द से गीता का ही ग्रहण है। वेदान्तसूत्र के २।३।४५वें और १।३।२४वें सूत्र के भाष्य में वे स्वयं लिखते हैं कि 'स्मर्यते भगवद्गीतासु गीतास्वपि च स्मर्यते', अर्थात् गीतास्मृति में यह बात है। इन वर्णनों से पुष्ट हो जाता है कि उक्त सूत्र गीता के ही आधार पर बने हैं। गीता में भी ब्रह्मसूत्रों का वर्णन विद्यमान है, इसलिए वेदान्तसूत्र गीतावाले व्यास के बनाये हुए नहीं हैं। ये उन बादरायण के बनाये हैं, जिनका वर्णन हम प्रस्थानत्रयी की उत्पत्ति के साथ कर आये हैं। वे मद्रास-निवासी द्रविड़ थे। उन्हीं से प्रस्थानत्रयी के शाखा की परम्परा चली है। इनका स्मरण अब तक शंकराचार्य की गुरुपरम्परा में किया जाता है<sup>४</sup>।

हमने यहाँ तक प्रस्थानत्रयी की पड़ताल करके देखा कि उसमें आसुर दर्शन का मिश्रण है और वह मिश्रण रावण के समय में आरम्भ हुआ था जो बादरायण, शुक, गोविन्दनाथ और शंकराचार्य के समय तक चलता रहा और प्रस्थानत्रयी के नाम से सम्मानित हुआ। इसी के द्वारा बौद्धों और जैनों को नष्ट किया गया और इसी के द्वारा भारतवर्ष में अनेक सम्प्रदायों को जन्म दिया गया। द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैत और द्वैताद्वैत आदि दर्शनों तथा शक्त, शैव, वैष्णव आदि सम्प्रदायों को इसी दल और इसी साहित्य ने उत्पन्न किया। शंकराचार्य ने रावणकृत लिंग-पूजा को शिवलिंग-पूजा में परिवर्तित किया और यज्ञों में गोवध तथा मांसाहार को सहारा दिया। बात आ पड़ने पर वे कह देते कि—

हन्ता चेन्मन्यते हन्तुं हतश्चेन्मन्यते हतम्। उभौ तौ न विजानीतौ नायं हन्ति न हन्यते ॥

अर्थात् जो मारनेवाले को हिंसक समझते हैं और जो हत को मारा हुआ समझते हैं, वे दोनों ही अज्ञ हैं। इनमें न किसी ने मारा है और न कोई मरा है।

इन बातों से और 'कूटस्थ चेतन' और 'चिदाभास' आदि नवीन पारिभाषिक शब्दों की रचना से लोगों में कोलाहल मच गया। लोगों ने कह दिया कि शंकराचार्य वर्णाश्रम को नहीं मानते, क्योंकि वे कहते हैं कि वर्ण, आश्रम, वेद, यज्ञ आदि कुछ भी नहीं हैं,<sup>५</sup> इसलिए शंकराचार्य प्रच्छन बौद्ध हैं<sup>६</sup>। उनके विरुद्ध अनेक श्लोक स्कन्दपुराण के उत्तराखण्ड में स्कन्द के मुँह से कहलाकर लिखे गये हैं। वे हमें एक मरहटी पत्र में मिले हैं जो अशुद्ध और अस्तव्यस्त

१. गीता १८।६।१

२. गीता १५।७

३. गीता १५।६

४. व्यासः पराशरसुतः किल सत्यवत्यां तस्मादभूच्छुकमुनिः प्रथिताऽनुभावः।  
तच्छिष्यतामुपगता किल गौडपादः गोविन्दनानिरस्य च शिष्यभूतः ॥

५. न वर्णा न वर्णाश्रमाचारधर्मा न मे धारणाध्यानयोगादयोऽपि न।

न माता पिता वा न देवा न लोका न वेदा न यज्ञा न तीर्थं ब्रूवन्ति ।

६. मायावादमसच्छास्त्रं प्रच्छन्नं बौद्धमेव च ।

प्रतीत होते हैं, परन्तु हम उनको ज्यों-का-त्यों फुटनोट में लिख देते हैं<sup>१</sup>। हमारे इस समस्त विवेचन का उद्देश्य केवल इतना ही है कि यह बात अच्छी प्रकार सिद्ध हो जाए कि नवीन दर्शन और नवीन सम्प्रदायों का जन्म मद्रास से ही हुआ है। हम यहाँ द्वैत और अद्वैत पर बिलकुल बहस नहीं करते, क्योंकि वैदिकों के मत में न तो द्वैत ही होता है न अद्वैत ही। वेदों में द्वैत-अद्वैत का झगड़ा ही नहीं है। वेदों के सिद्धान्तानुसार द्वैत में अद्वैत और अद्वैत में द्वैत सदैव बना रहता है। वेद में तो स्पष्ट लिखा है कि 'तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः'<sup>२</sup>, अर्थात् वह परमात्मा इस सबके भीतर भी है और बाहर भी है। जो सब के भीतर और बाहर भी भरा है और जो 'यत् किञ्च जगत्यां जगत्'<sup>३</sup>, अर्थात् यत् किञ्चस्थान में भी उपस्थित है, उसके अतिरिक्त अन्य वस्तु का कहाँ अवकाश है और अन्य वस्तु उसके अस्तित्व के अतिरिक्त कहाँ रह सकती है। इसी प्रकार अनिर्वचनीय माया और मायाविशिष्ट चेतन के बिना उस व्यापक का अस्तित्व ही कहाँ रह सकता है और वह बिना व्याप्त के किसका व्यापक हो सकता है, इसीलिए कोई ऐसा अद्वैतवादी नहीं है जो अनिर्वचनीय जैसी कोई वस्तु और मायामोहित जीव-जैसा एक पदार्थ अनादि न मानता हो और कोई ऐसा द्वैतवादी नहीं है जो तीनों पदार्थों को व्याप्त-व्यापकभाव से एक न मानता हो। हमारी समझ में तो अनिर्वचनीय माया और मायाविशिष्ट चेतन को अनादि मान लेने पर और दोनों में परमात्मा को ओतप्रोत व्यापक मान लेने पर द्वैत-अद्वैत में कुछ भी अन्तर नहीं रह जाता। इस प्रकार के समतोल सिद्धान्त में जो मनुष्य तनिक-सा भी सुधार करने जाएगा वह आर्यों की प्राचीनतम तत्त्वज्ञानविषयक परिस्थिति में बहुत बड़ा धक्का लगाएगा, इसलिए वैदिकों में द्वैत-अद्वैत के नाम से सम्प्रदायों का प्रादुर्भाव नहीं हो सकता। द्वैत-अद्वैत के सम्प्रदायों की सृष्टि तो वैदेशिक है और अनार्थ है।

हम ऊपर लिख आये हैं कि शैवधर्म और आसुर उपनिषद् के प्रचार से बौद्धों का नाश हो गया, किन्तु जो शुद्ध बौद्ध होकर अच्छी स्थिति में पहुँच चुके थे, वे फिर हिन्दूधर्म में आने से शूद्र ही रह गये और उच्चजाति के लोगों के द्वारा सताये जाने लगे, क्योंकि बौद्ध होकर शूद्रों ने द्विजातियों की समानता करना आरम्भ कर दिया था, इसलिए उच्च हिन्दुओं ने इनपर अत्याचार करना शुरू किया। वेद पढ़ने पर उनकी जिह्वा काटी जाने लगी और वेद के सुनने से उनके कानों में गर्म सीसा डलवाया जाने लगा<sup>४</sup>। यही कारण है कि अब तक उनको अस्पृश्य बताकर रास्ता बन्द करना, उनकी छाया से घृणा करना और उनके साथ बोलने में भी संकोच करना मद्रास प्रान्त में ही प्रचलित है, अन्यत्र नहीं। अगले समय में यह अत्याचार और भी अधिक भयंकर था। इस अत्याचार से मुक्ति पाने के लिए नीचकुलोत्पन्न शठकोपाचार्य आदि साधु पुरुष उद्योग कर रहे

१. मणिमत्पूर्वका दुष्टा दैत्या आसन् कलौ युगे । ते कुशास्त्रं प्रकुर्वन्तो हरिवायुविरोधिनः ॥

तेषां मध्ये शंकरस्तु पूर्वं यो मणिमान् खलः । सौगंधिकवने दिव्ये भीमसेनहतोऽसुरः ॥

यः क्रोधतन्त्रको दुष्टो मिथ्या शास्त्रं वदन् पुनः । कृष्णो भीमे च विद्वेषं कुर्वन् भूमावजायत ॥

कालडीग्रामके रुद्र वराज्जगद्विमोहयन् । बौद्धशास्त्रपरो विप्रो यः कर्षिच्चद्वापरशिष्यकः ॥

स शंकरश्च सन्यस्य तस्मात्संन्यासरूपिणः । वेदान्तमतियेतद् दुष्टशास्त्रं चकार ह ॥

२. यजुः० ४०।५

३. यजुः० ४०।१

४. वेदान्तदर्शन १।३।३८ के 'श्रवणाध्ययनप्रतिषेधात् स्मृतेश्च' के भाष्य में शङ्कराचार्य कहते हैं कि 'अथास्य वेदमुपशृणवतस्त्रपुजुभ्यां श्रोत्रप्रतिष्ठूरणम् । उच्चारणे जिह्वाच्छेदो धारणे हृदयविदारणम् ।

पद्यु ह वा एतद् शमशानं तस्मात् शूद्रसमीपे नाध्येतव्यम्', अर्थात् यदि शूद्र वेद को सुन ले तो उसके कानों में गर्म सीसा और लाख डाली जावे, यदि पढ़े तो जिह्वा काट ली जावे और यदि याद करे तो हृदय फाड़ डाला जावे, क्योंकि शूद्र शमशान के तुल्य अपवित्र है, इसलिए उसके निकट स्वयं भी न पढ़े ।

थे। उनमें अरबदेशनिवासी, ब्राह्मणकुलोत्पन्न और अलग्जेंड्रिया विद्यालय का ग्रेजुएट यवनाचार्य आ मिला। इन सबने मिलकर तथा अत्याचारी स्मार्तों से पृथक् होकर बौद्ध और नवीन हिन्दुओं के कुछ-कुछ तत्त्व एकत्र करके वैष्णवधर्म की नींव डाली, इसीलिए भागवत के माहात्म्य अध्याय १ श्लोक ४८ के अनुसार भक्ति कहती है कि—

उत्पन्ना द्रविडे साहं वृद्धिं कर्णाटके गता  
ववचित् ववचिन्महाराष्ट्रे गुर्जरे जीर्णतां गता।

अर्थात् मैं द्रविड़ देश में पैदा हुई, कर्णाटक में बढ़ी, थोड़ा-बहुत महाराष्ट्र में भी बढ़ी और गुजरात में आकर वृद्ध हो गई।

यहाँ भक्ति से अभिप्राय वैष्णव-सम्प्रदाय से ही है। इसे सबसे प्रथम मद्रासप्रान्तनिवासी विष्णुस्वामी ने ईस्वी सन् की तीसरी शताब्दी में चलाया, परन्तु इसको इस सम्प्रदाय के दूसरे आचार्य रामानुज ने चमकाया। ये भी मद्रासप्रान्त ही में पैदा हुए और इन्होंने भी उसी प्रस्थानत्रयी का सहारा लिया। वैष्णवों का तीसरा सम्प्रदाय निम्बार्क स्वामी ने चलाया। ये भी मद्रासी ही थे। इनका जन्म हैदराबाद राज्य के बेदर गाँव में हुआ, जिसे कोई कोई वैदूर्यपत्तन और पण्डरपुर भी कहते हैं। वैष्णवधर्म का चौथा सम्प्रदाय वल्लभसम्प्रदाय कहलाता है। यह भी मद्रासप्रान्तनिवासी तैलङ्गी ब्राह्मणों से ही चला। इन चारों के दार्शनिक सिद्धान्त भिन्न-भिन्न हैं। कोई द्वैत, कोई विशिष्टाद्वैत, कोई शुद्धाद्वैत और कोई द्वैताद्वैत के माननेवाले हैं। जिस प्रकार अद्वैतदर्शन का शैवसम्प्रदाय मद्रासप्रान्त से चला है, उसी प्रकार वैष्णवधर्म भी वहीं पर पैदा हुआ और उसकी सभी शाखाओं के आचार्य वहीं के रहनेवाले द्रविड़ ही हैं। रावणादि का वाममार्ग, शंकराचार्य का शैवमत और वैष्णवों का भक्तिमार्ग द्रविड़ों से ही पैदा हुआ है, अर्थात् भारतवर्ष में द्वैत, अद्वैत आदि दार्शनिक और शैव, वैष्णवादि जितने सम्प्रदाय हैं सबकी उत्पत्ति का स्थान मद्रासप्रान्त के द्रविड़ों के ही घर हैं। रामानुज वैष्णव होते हुए भी यज्ञों में पशुवध को मानते थे। यह बात उन्होंने स्पष्टरूप से लिख दी है, अर्थात् मांस-मद्य को ये समस्त सम्प्रदायप्रवर्तक उसी प्रकार मानते आ रहे हैं जिस प्रकार पूर्व समय के रावणादि मानते थे। उसी प्रकार रावण की भगलिङ्गपूजा भी शंकराचार्य की शिवपार्वती होकर, रामानुजाचार्य की लक्ष्मीनारायण बनकर अन्त में बलभाचार्य के द्वारा राधाकृष्ण हो गई। राधाकृष्ण व्यभिचार के देवता बने और उसी वाममार्ग का प्रचार होने लगा जो रावण के समय में था। जिस प्रकार वाममार्ग कहते हैं कि 'अहं भैरवस्त्वं भैरवी' उसी प्रकार वल्लभकुलवाले भी कहते हैं कि 'कृष्णोऽहं भवती राधा आवयोरस्तु संगमः', अर्थात् मैं कृष्ण हूँ तू राधा है, हम दोनों का.....। इनकी समस्त लीला का रहस्य उस मुकद्दमे से खुलता है जिसका नाम 'महाराज लाइबल केस' है। यह प्रसिद्ध है कि मुम्बई में इनके अत्याचारों से घबराकर इन के शिष्यों ने ही इनपर एक मुकद्दमा चलाया था। उसमें इन लोगों के जो बयान हुए थे और उसपर हाईकोर्ट के जज ने जो निर्णय सुनाया था उस समस्त मिसल को एक अंग्रेज ने पुस्तकाकार छपा दिया है। उसी का नाम 'महाराज लाइबल केस' है। यहाँ हम उसी का कुछ भाग लेकर थोड़ा-सा वर्णन करते हैं और दिखलाते हैं कि यह वल्लभसम्प्रदाय वाममार्ग का ही रूपान्तर है। इस मुकद्दमे में हाईकोर्ट के जज कहते हैं कि वल्लभ और उसका पिता लक्ष्मणभट्ट दोनों तैलङ्गी ब्राह्मण हैं। वल्लभ एक नवीन सम्प्रदाय का स्थापक हुआ<sup>१</sup>।

इन लोगों ने पाश्विक अत्याचार के लिए जो शास्त्र बना रखा है, उसको भी जजों ने इस

१. Laxman Bhatta (a Teling) the father of Vallabh and Vallabh himself were excommunicated by the Teling for founding a new sect.  
—Maharaja Libel Case

प्रकार उद्धृत किया है—

तस्मादादौ स्वोपभोगात्पूर्वमेव सर्ववस्तुपदेन भार्यापुत्रादिनामपि समर्पणं  
कर्तव्यं विवाहानन्तरं स्वोपभोगे सर्वकार्ये सर्वकार्यनिमित्ते तत्तत्कार्योपभोगी  
वस्तुसमर्पणं कार्यं समर्पणं कृत्वा पश्चात्तानि तानि कार्यणि कर्तव्यानीत्यर्थः ।

अर्थात् वर को चाहिए कि अपनी सद्योविवाहिता पत्नी को अपने भोग के पूर्व अपने महाराज के पास भेजे। भार्या, पुत्र, धनादि अर्पण करे, अर्थात् जिस-जिस भोग की जो-जो वस्तु हो उस-उस भोग की वह-वह वस्तु महाराज के पास भेजे। पाणिग्रहणसंस्कार होने के बाद अपने संभोग के प्रथम, वर अपनी वधू को महाराज के पास भेजे, पश्चात् अपने काम में लावे<sup>१</sup>।

अन्त में हाईकोर्ट-जज ने लिखा है कि 'स्त्रियाँ चाहे अविवाहिता कुमारी हों या विवाहिता हों, उनका धर्म है कि वे महाराजों से उनकी इच्छानुसार व्यभिचारिक प्रेम और विषय-लालसा से प्रेम करें। महाराजों के साथ व्यभिचार करना केवल विहित ही नहीं है प्रत्युत वह अत्यन्त आवश्यक है। उसके बिना कोई भी लोक-परलोक के सुख की आशा नहीं कर सकता। यह पाश्व व्यभिचार का मार्ग ही उनके लिए स्वर्गीय सुख है। वे शैतान के जीवित अवतार हैं'<sup>२</sup>। इस प्रकार वैष्णव सम्प्रदाय भी वाममार्ग ही बन गया और अन्त में अपना आसुर रूप प्रकट कर दिया।

### द्रविङ्गों का वेदभाष्य

कृष्णवेद और उसका साहित्य, रावण का गुप्तेन्द्रियपूजन, शंकराचार्य का मांसयज्ञ और वैष्णवों का तन-मन अर्पण अच्छी प्रकार प्रचलित होने लगा और यह समस्त आधुनिक रचना हिन्दूधर्म बन गई। यद्यपि यह सब-कुछ हो गया तथापि कभी-कभी विद्वानों को मूल संहिताओं के देखने, पढ़ने और अर्थ करने का प्रसङ्ग आया ही करता था और शुद्ध वेदों से तथा आसुरीधर्म से विरोध दिखने ही लगता था, इसलिए द्रविङ्गों को इस बात की आवश्यकता हुई कि मूल संहिताओं को भी अपने अनुकूल कर लिया जाए। इस विचार से पहले अनन्त ज्ञानभण्डार वेदों का भाष्य कभी किसी ने नहीं किया था। पूर्व समय के लोग वेदों के कुछ मन्त्र चुनकर अमुक-अमुक विषय की पद्धतियाँ बना लेते थे और विद्यार्थियों को वेदार्थ करने का नमूना बतलाने के लिए निरुक्त अथवा ब्राह्मणग्रन्थों की भाँति छोटे-छोटे पाठ्य पुस्तक बना लिये जाते थे, परन्तु समग्र वेदों का भाष्य करके वेदों के अभिप्राय की इयत्ता निर्धारित करने का साहस कभी आर्यों ने नहीं किया, परन्तु ईस्वी सन् की चौदहवीं शताब्दी में सायण नामी एक द्रविङ्ग ब्राह्मण ने यह साहस किया। सायणाचार्य विजयनगर के राजा बुक्क के दीवान थे<sup>३</sup>।

- Consequently before he himself has enjoyed her, he should make over his own married wife (to the Maharaja). After having got married he should, before having himself enjoyed his wife, make on offering of her (to the Maharaja) after which he should apply her to his own use.

—Maharaja Libel Case

- It is the duty of the female members to love the Maharajas with adulterine love and sexual lust whensoever called upon or required by any of the latter so to do, albeit such female members are or may be unmarried maidens or wives of other men. Adultery with the Maharaja is not only enjoined but an absolute necessity without which no man can expect happiness in this world or bliss in the next. A course of bestial licentiousness is their beatitude of heaven. They (Maharajas) may be described as living incarnation of Satan.

—Maharaja Libel Case

- The great scholiast Sayana was Prime Minister at the court of the King Bukka of Vijainagar—in what is now the Madras District of Bellary in the fourteenth century of our era.

—Introduction, Hymns of the Rigveda by Ralph T.H. Griffith. M.A.

इन्होंने पण्डितों की सहायता से समस्त वेदों और ब्राह्मणों का भाष्य किया। उस भाष्य में मनुष्यबलि, पशुबलि, इतिहास और दग्ध-छाप आदि जितने आसुरी सिद्धान्त हैं सबको वेदमन्त्रों से ही खींचखाँचकर अपने भाष्य में मिश्रित कर दिया। सायणाचार्य के बाद उव्वट भी दक्षिण में ही पैरा हुए। उन्होंने भी यजुर्वेद पर भाष्य किया। इनका भाष्य भी सायणाचार्य के ही आधार पर है। उव्वट के पश्चात् महीधर हुए। उन्होंने भी सायणाचार्य और उव्वट के ही आधार पर भाष्य किया। महीधर ने अपने भाष्य के आरम्भ ही में लिख दिया है कि 'भाष्यं विलोक्यौवट-माधवीयम्' १, अर्थात् मैंने सायण और उव्वट के भाष्यों को देखकर ही यह भाष्य लिखा है। यजुर्वेद पर सायणाचार्य का भाष्य इस समय नहीं मिलता, परन्तु उव्वट और महीधर के भाष्य मिलते हैं। दोनों के भाष्य में कुछ अन्तर नहीं है। इससे ज्ञात होता है कि सायणाचार्य का भाष्य भी इसी प्रकार का रहा होगा। कहने का तात्पर्य यह कि सबने सायणाचार्य का ही अनुकरण किया है। आधुनिक भाष्यकारों में सबके अगुआ सायणाचार्य ही हैं। आगे हम यजुर्वेद से महीधर के भाष्य का और ऋग्वेद से सायणाचार्य के भाष्य का नमूना दिखलाते हैं और बतलाते हैं कि उनका भाष्य कैसा है। 'गणानां त्वा गणपति १ हवामहे' २ इस प्रसिद्ध मन्त्र का भाष्य करते हुए महीधर लिखते हैं कि—

'अस्मिन्मन्त्रे गणपतिशब्दादश्वो वाजी ग्रहीतव्य इति। तद्यथा महिषी यजमानस्य पत्नी यज्ञशालायां पश्यतां सर्वेषामृत्विजाः मश्वसमीपे शेते शयाना सत्याह हे अश्व गर्भधं गर्भधारकं रेतः अहं आ अजानि आकृष्य क्षिपामि त्वं च गर्भधं आ अजासि आकृष्य क्षिपसि।' ३

अर्थात् यजमानपत्नी सबके सामने यज्ञमण्डप में घोड़े के पास सोते और घोड़े से गर्भ धारण करने के लिए कहे।

महीधर और उव्वट दोनों भाष्यकारों ने इस स्थल के कई एक मन्त्रों का अर्थ इसी प्रकार अश्लील ही किया है, परन्तु शतपथब्राह्मण में इन्हीं मन्त्रों का अर्थ बहुत ही शुद्ध और आर्योचित किया गया है। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने यह सारा प्रकरण अपने 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' नामी ग्रन्थ में अच्छी प्रकार लिख दिया है, तथापि यह स्मरण रखना चाहिए कि दूसरी जगह शतपथादि ग्रन्थों में भी उव्वट और महीधर के अनुसार ही अर्थ मिलता है। इससे अनुमान करने का पूरा अवसर मिल जाता है कि उपनिषदों की भाँति ब्राह्मणग्रन्थों में भी मिश्रण है। अन्यथा एक ही ग्रन्थ में एक ही प्रकार के मन्त्रों का भाव भिन्न-भिन्न स्थलों में परस्पर विरोधी क्यों होता? एक ही सम्पादक इस प्रकार की भयङ्कर भूल नहीं कर सकता, इसलिए यह स्पष्ट है कि शतपथादि में अश्लील प्रकरण बादरायणकालीन हैं और उसपर भाष्य सायणकालीन है।

उव्वट और महीधर के भाष्य में इसी प्रकार के अनेक अश्लील, अस्भ्य और कूर वर्णन हैं जिनको लिखकर हम व्यर्थ ग्रन्थ विस्तार नहीं करना चाहते। जिस प्रकार महीधर के भाष्य का नमूना अर्योचितभाव के प्रतिकूल है उसी प्रकार सायणाचार्य के भाष्य का नमूना भी कूर कर्म की पराकाष्ठा बता रहा है। सायणाचार्य ने ऋग्वेद मं० १ सू० २४ से ३० तक के भाष्य में शुनःशेष की कथा लिखकर मनुष्यबलि का एक भयङ्कर आदर्श सामने खड़ा कर दिया है, परन्तु वेद में इन बातों का कहीं चिह्न भी नहीं है। निरुक्त में शुनःशेष का अर्थ विज्ञानवेत्ता किया गया है, परन्तु सायणाचार्य ने शुनःशेष का अर्थ कुत्ते का.....किया है। इस पर मिस्टर मूर कहते हैं कि डॉक्टर

१. यजुः० १।१

२. यजुः० २३।१९

३-३. इस समय यह पाठ उपलब्ध नहीं है। —जगदीश्वरानन्द

रोसिन को अनुमान करने का मौका मिला है कि रामायणोक्त अजीर्णत की कथा से वेदों का कुछ भी सम्बन्ध नहीं है<sup>१</sup>। इसके आगे वही मूर साहब कहते हैं कि ब्राह्मणग्रन्थों में अजीर्णत का वर्णन इतना भयङ्कर है जो भारत के अनार्यों का एक नमूना कहाने योग्य है<sup>२</sup>।

इन साक्षियों से स्पष्ट हो जाता है कि वेदों में नरबलि का कुछ भी उल्लेख नहीं है, परन्तु अनार्य जातियों में नरबलि होती है, अतः उन्होंने वेदों से भी वही सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। रामायण और ब्राह्मणग्रन्थों में तो प्रक्षेप सम्भव है, परन्तु संहिताओं में एक-एक अक्षर की गिनती होने से उनमें प्रक्षेप नहीं हो सकता, इसीलिए उनके मन्त्रों के भाष्य द्वारा खींचतान करके ऐसे क्रूरकर्म-प्रवर्तक कृत्य का वर्णन किया गया है। यह सायणाचार्य का काम है।

सायणाचार्य ने 'इदं विष्णुर्विचक्रमे' मन्त्र से वामन अवतार भी सिद्ध करने का प्रयत्न किया है, परन्तु यही मन्त्र निरुक्त में सूर्यप्रक लगाया गया है। निरुक्त में इस मन्त्र के होते हुए भी सायणाचार्य ने ऐसा अनर्थ किया है जो उनके लिए उचित न था। इसी प्रकार वैष्णव होने के कारण उन्होंने शरीर को दग्ध करनेवाली छाप का वर्णन भी ऋग्वेद से निकाला है और जगन्नाथजी की उस लकड़ी का भी ऋग्वेद से वर्णन किया है जो उनके कलेवर के काम आती है। वेदों में इतिहास तो उन्होंने इतना भर दिया है कि वेदों को अपौरुषेय सिद्ध करना कठिन हो गया है। इस प्रकार सायणाचार्य ने वेदों को बहुत ही हीनकोटि का बना दिया है और वेदों में से वे समस्त बातें सिद्ध कर दी हैं जिनका प्रारम्भ रावण और बादरायण आदि ने किया था तथा जिसका पोषण शंकराचार्य और रामानुजाचार्यादि ने किया है।

बहुत दिन तक इसी भाष्य का भारतवर्ष में प्रचार रहा और द्रविड़ ही वेदाचार्य प्रसिद्ध रहे। जब यूरोपियन लोग इस देश में आये तब उन्होंने यहाँ वेदों की बड़ी भारी महिमा सुनी। उनकी इच्छा हुई कि ऐसी पवित्र और प्राचीन पुस्तक हम भी अपने देश के पुस्तकालयों में रखें। दुर्देव से उन दिनों में मद्रास प्रान्त के ये द्रविड़ ही आर्यजाति के गुरु हो रहे थे। वही वेदपात्र, वही याज्ञिक और वही हिन्दूधर्म के नेता समझे जाते थे, अतः यूरोपियनों ने भी उन्हीं से वेदों की पुस्तक चाही। सन् १७०० के आरम्भ में ही कोल्कत्ता साहब को किसी दक्षिणी ने वैदिक छन्दों में लिखी हुई और देवी-देवताओं की स्तुति से पूर्ण एक पुस्तक दे दी, किन्तु जब ज्ञात हुआ कि यह पुस्तक वेद नहीं है तब वह त्याग दी गई। यद्यपि वह पुस्तक त्याग दी गई, तो भी यूरोपनिवासियों ने वेदों की प्राप्ति की चेष्टा जारी रखी और मद्रासियों द्वारा अनेक बार ठगे भी गये। अन्त में, अर्थात् सन् १७७९ में कर्नल पोलियर ने तत्कालीन महाराजा साहब जयपुर से वेदों की नक्ल माँगी। नक्ल दी गई और वह नक्ल प्रसिद्ध पंडित आनन्दराम को दिखलाकर लन्दन भेजी गई और वहाँ के ब्रिटिश म्यूज़ियम में रखी गई तथा द्रविड़ों की ठगाई से छुट्टी मिली। कहने का तात्पर्य यह कि वेद के सम्बन्ध में ये अन्त तक धोखा ही देते रहे। ये शुद्ध वेदों का प्रचार नहीं चाहते थे, इसीलिए इन्होंने इस प्रकार की ठगाई अब तक जारी रखी और रावण से सायण तक किये हुए कृत्य का पोषण करते रहे।

उपर्युक्त समस्त वर्णन से अच्छी प्रकार प्रकट हो जाता है कि रावण से सायण तक इन्हीं

१. Hence the Doctor Rosin was led to infer that Vedic Hymns bore no relation to the legend of the Ramayan and offered no indication of a human victim deprecating death.

—Text Book of Sanskrit Literature

२. So revolting, indeed, is the description given of Ajigarta's behaviour in the Brahman that we should rather recognize in him a specimen of the un-Aryan population of India. —Ibid.

लोगों ने मांसयज्ज्ञ, मद्यपान और गुप्तेन्द्रिय-पूजन आदि आसुरी प्रवृत्तियों का प्रचार किया, इन्हीं लोगों ने वाममार्ग, शैव और वैष्णवादि सम्प्रदाय चलाये, इन्हीं लोगों ने शङ्कर, रामानुज, माध्व आदि रूप से धर्मगुरु बनकर द्वैत, अद्वैतादि मतों का प्रचार किया और इन्हीं लोगों ने वेदों का भाष्य करके आर्यों को प्राचीन वैदिक धर्म से पतित किया और उनके हर प्रकार के पतन का कारण हुए। इस प्रकरण के आरम्भ में हमने कहा था कि जितने विदेशी इस देश में आये हैं उनमें से केवल चार ही विदेशी दलों के सम्प्रदाय प्रवर्तन और साहित्यविध्वंस का वर्णन करेंगे। उनमें से इस प्रधान द्रविड़ जाति के कृत्यों का वर्णन हुआ। अब इसके आगे चितपावनों के साहित्य-विध्वंस का वर्णन करते हैं।

### चितपावन और आर्यशास्त्र

हम पहले लिख आये हैं कि चितपावन मिस्त्र के रहनेवाले यहूदी हैं। इन्होंने ब्राह्मण बनकर उसी समय महाराष्ट्रों में घुसना चाहा था, परन्तु उन्हें नहीं घुसने दिया, इसीलिए देशस्थ और कोंकणस्थ दो भेद हो गये। कोंकणस्थ ही चितपावन हैं। ब्राह्मण होकर इन्होंने संस्कृत में अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली और इन्होंने भी तैत्तिरीय कृष्णयजुर्वेद ही स्वीकार किया तथा यहाँ के साहित्य में कृष्णयजुर्वेद का वेदत्व, अपना सब ब्राह्मणों में श्रेष्ठत्व और मिस्त्र के रीति-रिवाजों को आर्यों की पुस्तकों और रीति-रिवाजों में मिश्रित किया। जब प्रेस नहीं थे तब लोगों के पास हस्तलिखित पुस्तक ही थे। उस समय नये ग्रन्थों का पहचानना और पुराने ग्रन्थों के प्रक्षिप्त भागों का पकड़ना भी कठिन था, इसलिए पुराने युग में इन्होंने क्या-क्या रचना की है, यह सिद्ध करना कठिन है, परन्तु इस प्रकाश के युग में जब हजारों प्रेस धड़ाधड़ पुस्तकें प्रकाशित करके घर-घर पहुँचा रहे हैं, ऐसे युग में भी इन्होंने जो कुछ प्रक्षेप किया है, यहाँ उसी का वर्णन करते हैं।

‘अहिंसा धर्मप्रकाश’ नामी ग्रन्थ में गावस्कर महोदय कहते हैं कि तुकाराम तात्या ने राजाराम वोडस नामी एक चितपावन ब्राह्मण को प्रस्तावनासहित ऋग्वेद का सायणभाष्य छपाने के लिए नियुक्त किया और सब काम उन्हीं को सौंप दिया। वोडस महोदय कृष्णयजुर्वेद के माननेवाले थे, इसलिए उस वेद का महत्व दर्शने और नीचत्व छिपाने के लिए उन्होंने सायणाचार्य की प्रस्तावना में लिख दिया कि कृष्णयजुर्वेद में जो मन्त्रभाग और ब्राह्मणभाग का मिश्रण है उसके लिए ब्रह्मदेव ने सारस्वत और उसके शिष्यों के विवाद के अन्त में पहले ही कह दिया है कि वह मिश्रण सर्वथा निर्दोष है। प्रस्तावना में यह उक्ति मिल गई और ऋग्वेद छप गया, किन्तु प्रो० मैक्समूलर और प्रो० पिटर्सन के छपाये हुए ऋग्वेद जो वोडस महोदयवाले ऋग्वेद से पहले ही भिन्न-भिन्न समयों में छप चुके थे, जब भारत में आये और लोगों ने पढ़ा, तो उनमें वह उक्ति न मिली। पता लगाने पर ज्ञात हुआ कि यह कृत्य उक्त चितपावन महोदय का ही है।

उक्त पुस्तक में जो दूसरी घटना लिखी है, वह इस प्रकार है कि कृष्णसाठे नाम के एक चितपावन ब्राह्मण ने वृद्ध पराशरस्मृति की जितनी भी हस्तलिखित प्रतियाँ मिल सकीं, एकत्र कीं। उनमें एक प्रति मुम्बईनिवासी बाबा पाठक शुक्ल की भी थी। उस पुस्तक के बारहवें अध्याय में जहाँ ब्रह्मनिरूपण का विषय है वहाँ उक्त साठे महोदय ने अपनी चितपावन जाति को उच्च सिद्ध करने के लिए बहुत-से श्लोक मिला दिये और उस अध्याय के आदि से अन्त तक समस्त अंकों को भी बढ़ा दिया। श्लोक कई एक थे, इसलिए पत्रों के हाशियों (Margin) पर भी लिख दिये और उसी प्रति के अनुसार श्रीधर शिवलाल के ज्ञानसागर प्रेस में हजारों प्रतियाँ छपा डालीं। जब पुस्तक छप गई तब हस्तलिखित प्रति बाबा पाठक शुक्ल को चुपचाप दे आये। कुछ दिन के बाद बाबा पाठक की दृष्टि इस कृत्य पर पड़ी। बाबा साहब ने महा कोलाहल

मचाया। अदालत की भी नौबत आई, परन्तु कुछ भले पुरुषों के बीच में पड़ जाने से मामला शान्त हो गया। जो श्लोक मिलाये गये थे वे बड़े ही मजेदार हैं, अतः हम उनमें से कुछ श्लोक यहाँ लिखते हैं—

कोंकणाश्चितपूर्णस्ते चितपावनसंज्ञकाः । ब्राह्मणेषु च सर्वेषु यतस्ते उत्तमा मताः ॥  
एतेषां वंशजाः सर्वे विज्ञेया ब्राह्मणाः खलु । माध्यंदिनाश्च देशस्था गौडद्रविडगुर्जराः ॥  
कर्णाटातैलंगाद्यपि चितपूर्णस्य वंशजः । अतश्चितस्य पूर्णं यो निन्द्यात्तस्य क्षयो भवेत् ॥

अर्थात् सब ब्राह्मणों में चितपावन ब्राह्मण ही श्रेष्ठ हैं। गौड, देशस्थ, द्रविड, गुर्जर, कर्णाटक और तैलंग आदि जितने ब्राह्मण हैं सब चितपावनों के ही वंशज हैं, इसलिए जो इन चितपावन ब्राह्मणों की निन्दा करे, उसका क्षय हो जावे।

इन्होंने इस प्रकार की रचना करके अपनी जाति की निकृष्टता को दूर करने का प्रयत्न किया था, परन्तु यह बात आगे न चली और लोगों को इनका प्रपञ्च ज्ञात हो गया। इसके अतिरिक्त इन्होंने जिस समय क्षत्रियों के राज्य का अपहरण किया उस समय सतीप्रथा के सम्बन्ध में इन्होंने जो कुछ नवीन रचना की वह बड़ी ही विचित्र है। यहाँ हम उसका भी थोड़ा-सा वर्णन करते हैं। सोशल रिफार्म सिरीज़ २ में और ‘अहिंसा धर्मप्रकाश’ में पं० गावस्कर लिखते हैं कि दक्षिण के शाहुराजा ने बालाजी विश्वनाथ नामी एक चितपावन ब्राह्मण को अपना सेनापति बनाया। बालाजी विश्वनाथ ने अवसर पाकर शाहुराजा को उपचार प्रयोग द्वारा मरवा डाला और स्वयं राजा बनने की चेष्टा करने लगा। उधर शाहुराजा की रानी शंकराबाई राज्य का उत्तराधिकारी बनाने के लिए दत्तक पुत्र लेने का विचार करने लगीं। इसपर बालाजी विश्वनाथ ने शंकराबाई को समझाना शुरू किया। उसने कहा कि हाय! जिस पति पर आपकी इतनी भक्ति थी, जो तुम्हें प्राणों से भी अधिक प्यार करता था, अभी उसे मेरे हुए कुछ भी समय नहीं बीता कि आप राज्य-शासन का आनन्द लेने लगीं। धन्य थीं वे पतिव्रता स्त्रियाँ जो अपने प्राणप्रिय के साथ धधकती हुई चिता में जलकर सदैव के लिए पति के समीप चली जाती थीं। शंकराबाई के दिल पर इन बातों ने बड़ा प्रभाव डाला, किन्तु स्त्री का पति के साथ जलना भी कोई विशेष धर्म है, यह बात उसने अपने जीवन में नई सुनी। वह जल्दी से बोल उठी कि क्या पति के साथ जल मरने पर पतिदेव मिल सकते हैं? बालाजी ने उस समय की समस्त हस्तलिखित पुस्तकों में क्षेपक मिलवा-मिलवाकर कथा बाँचनेवाले भटों के द्वारा दिखला दिया कि दशरथ, पाण्डु, रावण, इन्द्रजीत आदि बड़े-बड़े पुरुषों की स्त्रियों ने अपने पति के साथ जलकर प्राण दिये हैं।

बालाजी ने यह भी कहलवाया कि यदि पति जल में डूबकर मर गया हो, दूसरे ग्राम में मर गया हो, उसकी लाश का पता न हो अथवा उस समय स्त्री सगर्भी हो तो समय आने पर सुभीते के साथ अपने पति की खड़ाऊँ या वस्त्र आदि लेकर जल मरने से भी वह अपने पति को प्राप्त होती है और दोनों स्वर्ग को जाते हैं। इस उपदेश से शंकराबाई जलने के लिए तय्यार हुई। बालाजी ने तुरन्त ही अपने कृष्णवेद के तैत्तिरीय आरण्यक ६। २० में आये हुए ऋग्वेद के ‘इमा नारीरविधवाः सुपत्नीरांजनने सर्पिषाः संविशन्तु । अनश्रवोऽनमीवाः सुरत्ना रोहन्तु जनया योनिमग्रे’ इस मन्त्र

१. तें शाहू राजाला जारणमारणादि ओषधिप्रयोगने मारून व त्याची निपुत्रिक विधवा बायको राज्यप्राप्तीच्या कामांत प्रतिकूल होईल, म्हणून सती जाण्याचे नवे ग्रन्थ रचून व प्राचीन ग्रंथान्त दशरथ, पाण्डु, रावण, इन्द्रजीत अशांच्या स्त्रिया सती गेल्याकारणाने स्वर्गीं गेल्या, अर्शीं क्षेपकें घुसडून ते मतलब ग्रंथ भटोवां-कडून तिला बाँचवून दाखवून वा शिवाय द्रव्यलालुचीनें वश केलेल्या तिच्या भावां कडून उपदेश करून व भीति दर्शवून तिच्या इच्छेविरुद्ध तिजला सती घालवून, अर्थात् जीवंत जाळन टाकून मिळूविले होतें।

के 'अग्रे' शब्द को 'अग्ने' करके पति के साथ अग्नि में जल मरने की वैदिक विधि और विनियोग भी दिखला दिया। वेद पर विश्वास करनेवाली आर्यजाति की पतिव्रता राजमहिषी अपने पति के पास जाने को उत्तेजित हो उठी और बालाजी के षड्यन्त्र से तुरन्त ही चिता में धरकर फूँक दी गई। रानी के जलते ही समस्त राज्यसूत्र चितपावनों के हाथ में आ गया तथा शाहूराजा की मृत्यु और शंकराबाई के सतीचरित्र की यह करुणापूर्ण कहानी समस्त महाराष्ट्र देश में अच्छी प्रकार फैल गई। वहाँ के ग्रामीण अब तक इस कलंक कथा को गाया करते हैं। उन गीतों में से एक गीत नीचे फुटनोट में दिया गया है, जिसमें उपर्युक्त कथा का सार वर्णित हैः ।

चितपावनों ने इस अपयश को दूर करने के लिए सतीप्रथा को धर्म ही मान लिया और अपने खास शहर पूना में मूला मूठा नदी के संगम पर सती होने का एक स्थान ही नियत कर दिया। सतीधर्म की इस उत्तेजना पर सतीप्रथा की वह धूम जारी हुई कि पूना में रहनेवाला अंग्रेजी रेज़ीडेंट भी घबरा गया। उसने वहाँ के पेशवा से इस निन्द्य कर्म को बन्द करने के लिए प्रार्थना की। उस समय की सतीप्रथा का वर्णन करते हुए मूर साहब कहते हैं कि 'चितपावन लोग सतीप्रथा पर बड़े आसक्त थे, परन्तु जब सन् १८३० में गवर्नर्मेंट ने सतीप्रथा निषेधक क्रानून बनाया तो उन्होंने बिना कुछ कहे सुने ही उसे बन्द कर दिया। कुछ चितपावन अपने जातिबन्धु नाना साहब को इस भयङ्कर अपराध से मुक्त देखकर प्रसन्न होंगे, परन्तु उनकी प्रसन्नता इसलिए न होगी कि नाना साहब इसे अपनी न्यायबुद्धि से उचित मानते थे या अनुचित, प्रत्युत इसलिए प्रसन्नता होगी कि वे इस लज्जायुक्त भयङ्कर कृत्य के कलंक से छुट्टी पा गये। पूना में विधवाओं का उनके मृत पतियों के साथ जलना बहुत अधिक था। वहाँ प्रति वर्ष पाँच-छह सतियाँ होती थीं। यह कृत्य ब्रिटिश रेसिडेन्सी के पास मूल मूठा नदी के संगम पर होता था' ॥ इस वर्णन से पाया जाता है कि इन्होंने शंकराबाई को सती करने के लिए शास्त्रों में अवश्य प्रक्षेप कराया।

इन सब प्रमाणों के अतिरिक्त अभी हाल में जो प्रमाण मिले हैं उनसे भी विदित होता है कि चितपावनों ने जाली ग्रन्थों की रचना की है। 'सिद्धान्तविजय' के पृष्ठ ९, १० पर लिखा है कि

१. शाहूराजा भ्रमीभूत। होवोनि रहिला दुःखखाईत। सन्निध बाजीराय सुत। नाना साहेब पेशवे ॥  
परम आर्जवी चितपावन। तशांत भ्रमिष्ट शाहूमन। झालें म्हणोनि अपल्याधीन। करोनि लीन शेवेशीं ॥  
स्वकार्य साधू बाजीराव। जारणादि करोनि उपाय। शाहूराजासी करोनि मरणप्राय। राजसूत्र बल्काविलें ॥  
पोटीं नव्हता शाहूस पुत्र। नानास लाभलें अधिकारपत्र। तेव्हां राज्याधिकारसूत्र। नृपमृत्यन्तीं आवरिलें ॥  
स्वाधीन सेनासमुदाय पाहीं। प्रतिनिधीचें न चलें काहीं। त्याचीं बेडी घालोनि पार्यीं। पर्वतारूढ तोकेला ॥  
शाहू भार्या शंकराबाई। नृपासंगें सती न जाई। म्हणोनि तिजला नाना उपायीं। बोधोनि अपाई दग्धविली ॥  
लोभदावोनि बंधूस तीचे। होते बन्धु दुष्ट मतीचे। त्यांही बलात्कारें सतीतें। धर्म बोधोनि सतीनेली ॥  
शाहूनृपाचे सुहृदन्यत्र। सातार्यासी ते सर्वत्र। रक्षोनि स्वाज्ञे निबन्धसूत्र। आपुल्या तन्त्रान्त ठेविलें ॥  
सातार्याचें सोडेनिस्थान। पुणिया सीं केलें अधिष्ठान। नृपाधिकार मानपान। सातार्यास करवी तया ॥  
वृक्षीं फलें येतां पाड़ा। वानरें पहोनि त्या झाडा। शाखोंशाखीं उडिया धडधडा। धेबोनि कडाडा भक्षिती फलें ॥  
किंवा मर्कटे सिंदीवन। देखोनि करिती मधु-सेवन। तैसे अधर्मी चितपावन। धांवोनि आले पुणियासी ॥

2. The Konkanasthas (Chitpavans) were greatly addicted to Sati; but when that horrid Act was introduced by Government in 1830, they discontinued it without any remonstrance. Some of the Chitpavans would be glad to exculpate their fellow casteman 'Nana Sahab' from the atrocities laid to his charge, but this is more creditable to their feeling of shame on account of these atrocities than to the soundness of the judgement which they form of their perpetrator.

The burning of widows with their husband's corpses is very frequent at Poona, where five or six instances occur every year, and the immolation is usually performed at the junction of the Moota and Moola rivers, close to the British residency.

—Mure

सतारा दरबार के दफ्तर में जो काग़ज-पत्र मिले हैं, उनसे प्रकट होता है कि पेशवाई काल में अप्पा साहब पटवर्धन और नीलकण्ठ शास्त्री ने जाली ग्रन्थों की रचना की थी। इसके सिवा 'राजवाड़ा ची गंगाभट्टी' आदि पुस्तकों में चितपावनों द्वारा जाली ग्रन्थों की रचना का विस्तृत वर्णन है, इसलिए यहाँ अब अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं है। यहाँ तो केवल इतनी ही लिखना है कि अभी हाल में सबके देखते-देखते निर्णयसागर प्रेस में जो उच्चट, महीधर के भाष्यसहित यजुर्वेद छपा है, उसमें भी पाठभेद किया गया है। यजुर्वेद का 'श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्या' प्रसिद्ध मन्त्र है। यह मन्त्र बंगाल की छपी हुई प्रति में महीधर, उच्चट के भाष्य के साथ छपा है। उसमें श्री और लक्ष्मी रूप दो वेश्याओं का वर्णन है, परन्तु हाल की छपी हुई निर्णयसागर की प्रति से वेश्याओं की बात निकाल डाली गई है। परन्तु यूरोप की छपी हुई प्रति निर्णयसागर की प्रति से पहले की छपी है और उसमें वही वेश्याओं की बात है। इससे ज्ञात होता है कि उच्चट, महीधर का असली अर्थ वही है। निर्णयसागरवालों ने व्यर्थ ही उस पाठ को बदला है। निर्णयसागर प्रेस का सम्बन्ध दाक्षिणात्यों से ही है, इसलिए अनुमान होता है कि यह कृत्य भी किसी चितपावन महात्मा ही का होगा। जो हो, यहाँ कहने का अभिप्राय केवल इतना ही है कि चितपावनों ने आर्यशास्त्रों में मिश्रण किया है। यही नहीं कि इन्होंने नवीन ग्रन्थों की रचना और प्राचीन ग्रन्थों में केवल मिश्रण ही किया है, प्रत्युत उन्होंने यहाँ के हिन्दुओं में अपने जाति और देश के पूज्य देवी-देवताओं की पूजा का भी प्रचार किया है। यहाँ हम उनके देवता का भी एक नमूना दिखलाते हैं।

जिस प्रकार भारत देश में श्री नामी देवी के अंशों से दुर्गा, काली, भवानी, भैरवी, चण्डी, अन्नपूर्णा और चामुण्डा आदि रूप बनाये गये हैं, उसी प्रकार मिस्त्रदेश में भी आदिमाया इसिसू के अंशों से मिनर्वा, जुनो, वेनसा, होआ, हेकेटी, डायना और ह्या आदि रूप माने जाते हैं। यहाँवाले जिस प्रकार चन्दन, अक्षत, धूप, दीप, मांस, रुधिर से अपनी देवियों की पूजा-अर्चा करते हैं, ठीक उसी प्रकार मिस्त्रवाले भी करते हैं। जिस प्रकार यहाँ की देवियों के चतुर्भुज, अष्टभुज और सहस्रभुज आदि रूप हैं, उसी प्रकार मिस्त्र की प्रतिमाओं के भी हैं। जिस प्रकार के अस्त्र-शस्त्र यहाँ की देवियाँ रखती हैं, वैसे ही मिस्त्र की देवियों के पास भी हैं। जिस प्रकार यहाँ की देवी ने महिषासुर—भैंसे के-से मुँहवाले राक्षस को मारा है, वैसे ही मिस्त्र की इसिसू-मिनर्वा देवी ने भी 'हीकस-हिपोपोटेमस' नामी (दरियाई घोड़े के-से मुँहवाले) राक्षस को मारा है। जिस प्रकार के नवरात्र यहाँ होते हैं ठीक वैसा ही नवरात्रि का उत्सव मिस्त्र में भी होता है। जिस प्रकार उत्सव में यहाँ उदकपूर्ण कुम्भ रक्खा जाता है, वैसा ही मिस्त्र में भी रक्खा जाता है। वहाँ इस घट को 'केनाव' कहते हैं। जिस प्रकार यहाँ घट पर स्वस्तिक आदि चिह्न बनाये जाते हैं वैसे ही मिस्त्रवाले भी स्वस्तिक, द्वित्व, त्रिकोण, त्रिपुण्ड्र तथा त्रिशूल आदि चिह्न बनाते हैं।

इस समता के अतिरिक्त देवियों की उत्पत्ति के विषय में यहाँ एक कथा प्रचलित है। उस कथा का सार इस प्रकार है कि दक्ष की लड़की पार्वती थी। उसका विवाह शिव के साथ हुआ। एक दिन उसके पिता ने अनेक पशुओं की बलि दी, किन्तु इस बलिदान के समय अपनी कन्या को न बुलाया, परन्तु कन्या स्वयं वहाँ गई। कन्या ने वहाँ जाकर जब अपने पति का भाग न देखा, तब उसने प्राण त्याग दिया। इसपर शिव ने क्रोध किया और वीरभद्र नामी एक भयानक जन्तु को पैदाकर और वहाँ भेजकर दक्ष का शिर कटवा लिया। दक्ष के मरने पर शिव अपनी स्त्री के शव को लेकर नाचने लगे। इसी बीच में विष्णु ने अपने चक्र से उस स्त्री-शव के ५१ टुकड़े कर डाले और अनेक स्थानों में फेंक दिये। ये सब टुकड़े कामाक्षी, मीनाक्षी आदि नाम से मातापुर और

कलकत्ता आदि में उग्रपीठ बन गये। इनमें सबसे प्रधान कामाक्षी है। इसका काम-अक्षी नाम इसलिए पड़ा है कि यह उस शब्द की काम की आँख, अर्थात् गुप्ताङ्ग है। यह कथा ज्यों-की-त्यों दूसरे नामों के साथ मिस्री लोगों में भी प्रचलित है। उनके यहाँ लिखा है कि उस इसिसू के टुकड़े मिनर्वा, आसरपायन, डायना आदि हो गये और इन-इन नामों से प्रख्यात हुए। इस कथा की शृङ्खला तब अच्छी प्रकार समझ में आ जाती है जब हम दत्तात्रेय के जन्म की कथा को ध्यान से पढ़ते हैं।

दत्तात्रेय की कथा पुराणों के अनेक भागों के जोड़ने से जो रूप बनाती है, वही रूप मिस्रियों की तमाम कथा के मिलाने से भी बनता है। दत्तात्रेय के इतिहास के तीन भाग हैं। दत्तात्रेय किससे पैदा हुए, जिससे दत्तात्रय पैदा हुए वे किससे पैदा हुए और जिससे वे सब पैदा हुए, वह कौन है? यहाँ हम तीनों भागों को लिखते हैं। देवीभागवत में लिखा है कि श्रीपुरनिवासिनी देवी ने अपने हाथ को घिसा। घिसने से हाथ में छाला पड़ गया। छाला फूटा। उस छाले से एक लड़का पैदा हुआ जिसका नाम ब्रह्मा था। माता ने उससे कुचेष्टा की, परन्तु उसने माता का कहना न माना। माता ने उसे भस्म कर दिया और हाथ रगड़कर फिर एक लड़का पैदा किया, जिसका नाम विष्णु था। इससे भी इच्छा प्रकट की, किन्तु उसने भी न माना और भस्म कर दिया गया। तब तीसरी बार देवी ने फिर हाथ रगड़ा और छाले से शिव नाम का लड़का पैदा किया। इस शिव को भी आज्ञा दी गई। शिव ने कहा कि पहले यह बतलाइए कि ये दोनों राख की ढेरियाँ क्या हैं। माता ने कहा कि ये दोनों ढेरियाँ तेरे बड़े भाइयों की हैं। शिव ने कहा कि माँ! इन्हें जिला दे। माता ने उन दोनों को जिला दिया। देवी के यही तीनों पुत्र ब्रह्मा, विष्णु और महेश नामी विख्यात देवता हुए। इन तीनों देवतों से दत्तात्रेय कैसे उत्पन्न हुए वह कथा इस प्रकार है—

पद्मपुराण में लिखा है कि अत्रि ऋषि शीत-कटिबन्ध में तपस्या कर रहे थे। वहाँ उनको सरदी लगी। वह सरदी अत्रि ऋषि की आँखों में घुस गई और आँसू बनकर बाहर निकल पड़ी। उसी गिरे हुए आँसू से चन्द्रघ्नीप, शीतघ्नीप आदि भूभाग बन गये। फिर वह सरदी आकाश की ओर उड़ी, परन्तु खाली जगह में पैर न जम सके, इसलिए समुद्र में गिर पड़ी। उस गिरी हुई सरदी को अत्रि ने अपना चन्द्र नामी पुत्र मानकर समुद्र से कहा कि इसकी रक्षा करना। बहुत दिन तक समुद्र ने इसकी परवा न की, परन्तु अन्त में उसको मनुष्य-रूप देकर अपना पुत्र और लक्ष्मी का बन्धु माना। उस समय यह चन्द्र प्रकाशहीन था, इसलिए देवताओं ने उसे ओखली में कूटकर समुद्र में फेंक दिया। वह फेंका हुआ चूर्ण उत्तम चन्द्रमा बन गया। वही चन्द्रमा समुद्र-मन्थन के समय बाहर निकला और आकाश को उड़ गया। अत्रि का यही चन्द्र जगत् के कल्याण के लिए हुआ, परन्तु उन्होंने मनुष्य शरीरधारी पुत्र के लिए ब्रह्मा, विष्णु और शिव की आराधना की। ब्रह्मा, विष्णु और शिव ने क्रम से सोम, दत्तात्रेय और दुर्वासा नामक तीन पुत्र दिये। इसी से सम्बन्ध रखनेवाली दूसरी कथा स्कन्दपुराण में इस प्रकार है कि अत्रि ऋषि ने मनुष्यों को वेद समझाने के लिए तीन पुत्र बनाये। एक सोम जो ब्रह्मा की आकृति का था, दूसरा दत्तात्रेय जो विष्णु की आकृति का था और तीसरा दुर्वासा जो शंकर की आकृति का था। इन तीनों कथाओं से ज्ञात हुआ कि देवी से ब्रह्मा, विष्णु और शिव हुए तथा ब्रह्मा, विष्णु और शिव से सोम, दत्तात्रेय और दुर्वासा हुए।

अब एक मार्कण्डेय पुराण की कथा का भी वर्णन करते हैं। उसमें लिखा है कि कौशिक नामी एक ब्राह्मण अपने पूर्वकृत कर्मानुसार कोढ़ी हो गया। उसकी सहधर्मिणी ग्लानिरहित होकर उसकी सेवा करती थी। एक दिन कुष्ठी ब्राह्मण ने अपनी स्त्री से कहा कि मैंने रास्ते में जो वेश्या

१. या सा वेश्या मया द्रष्टा राजमार्गे गृहोषिता ॥ २० ॥

तां मे प्रापय धर्मज्ञे सैव मे हृदि वर्तते ॥ २१ ॥

देखी थी वह मेरे मन को विचलित कर रही है, अतः उसके प्राप्त करने का उपाय कर ।

यह सुनकर वह स्त्री अपने पति को कन्धे पर चढ़ाकर धीरे-धीरे उस वेश्या की ओर-ले चली, किन्तु रास्ते में उस कुष्ठी का पैर माण्डव्य नामी ऋषि के बदन में लग गया। माण्डव्य ने महाक्रोध करके शाप दे दिया कि कल प्रातःकाल होने के पूर्व ही तू मर जाएगा। कुष्ठी की स्त्री इस शाप से भयभीत हुई और इधर-उधर ऋषि-मुनियों से इस शाप का मोक्ष पूछती हुई अत्रि ऋषि की स्त्री अनुसूया के आश्रम में पहुँची और सारा वृत्तान्त कह सुनाया। अनुसूया ने कहा कि डरो मत। इतने में सूर्योदय हो गया और वह कुष्ठी ब्राह्मण मर गया<sup>१</sup>। अनुसूया ने उस स्त्री से कहा कि तू भय मत कर, मेरा सामर्थ्य देख। पतिसेवा के सामने तपस्या क्या वस्तु है। मैंने अपने जीवन में अन्य पुरुष अथवा किसी देवता की भी कामना नहीं की। इतना कहकर अनुसूया ने कहा कि मेरे सतबल से यह मृत पुरुष कुष्ठरोगरहित, तरुण होकर और जीवित होकर अपनी स्त्री के साथ सौ वर्ष तक रहे। अनुसूया के इतना कहते ही वह मृत पुरुष जी उठा, तरुण हो गया और कुष्ठरोग से भी छुटकारा पा गया<sup>२</sup>। यह देख देवताओं ने आनन्दित होकर पुष्टों की वृष्टि की और अनुसूया से बोले कि तूने देवताओं से भी न होनेवाला कार्य किया है, इसलिए वर माँग। देवताओं से अनुसूया ने कहा कि यदि वर देते हो तो ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर को एक में मिलाकर मुझको पुत्र दीजिए<sup>३</sup>। देवतों ने यही वरदान दिया और कुछ दिन के बाद ये तीनों देवता उसके उदर से इस प्रकार पैदा हुए—

**सोमो ब्रह्माभवद् विष्णुर्दत्तात्रेयो व्यजायत । दुर्वासा: शंकरो जज्ञे वरदानाद् दिवौकसाम् ॥**

अर्थात् ब्रह्मदेव का सोम, विष्णु का दत्तात्रेय और शंकर का दुर्वासा होकर और एक में मिलकर दत्तात्रेय नामी पुत्र हुआ। इन्हीं तीनों रूपों से युक्त आजकल दत्तात्रेय की मूर्त्ति बनती है।

इन समस्त कथाओं का इतना ही तात्पर्य है कि देवी से ब्रह्मा, विष्णु और शंकर हुए और ब्रह्मा, विष्णु और शंकर के मिश्रण से दत्तात्रेय की उत्पत्ति हुई, अर्थात् दत्तात्रेय की उत्पत्ति ब्रह्मा, विष्णु, महेश से हुई और ब्रह्मा, विष्णु, महेश को पैदा करनेवाली देवी है। अब देखना चाहिए कि इस दत्तात्रेय की इस मिश्रित उत्पत्ति का क्या रहस्य है। हम मिस्त्रदेश के दैवी इतिहास में देखते हैं कि उसमें भी उपर्युक्त वर्णन ज्यों-का-त्यों दिया हुआ है। हम अभी गत पृष्ठ में लिख आये हैं कि मिस्त्रदेश की आदि देवी का नाम इसिस् है। वही इसिस् यहाँ श्री के नाम से प्रसिद्ध है। जिस प्रकार इस देवी से ब्रह्मा, विष्णु और शंकर हुए हैं उसी प्रकार मिस्त्रदेश में प्रसिद्ध है कि इसी

१. स्कंधे भर्तरमादाय जगाम मृदुगामिनी ॥ २६ ॥

पत्नीस्कन्ध समारूढश्चाल्यामास कौशिकः ॥ २८ ॥

पादावर्मणात् कृद्धो माण्डव्यस्तमुवाच ह । येनाहमेवमत्यर्थं दुःखितश्चालितः पदा ॥ २९ ॥

दशां कष्टामनुप्राप्तः स पापात्मा नराधमः । सूर्योदयेऽवशः प्राणौर्विमोक्ष्यति न संशयः ॥ ३० ॥

भास्करावलोकनादेव स विनाशमवाप्यति ॥ ३१ ॥ [—मार्क० १६ । २०-३१]

२. न विषादस्त्वया भद्रे कर्तव्यः पश्य मे बलम् । पतिशुश्रूषयावाप्तं तपसः किं चिरेण मे ॥ ८१ ॥

यथा भर्तृसमं नान्यमपश्यं पुरुषं क्वचित् । रूपतः शीलतो बुध्या वाइमाधुर्यादिभूषणैः ॥ ८२ ॥

तेन सत्येन विप्रोऽयं व्याधिमुक्तः पुनर्युवा । प्राप्नोतु जीवितं भार्यासहायः शरदां शतम् ॥ ८३ ॥

यथा भर्तृसमं नान्यमहं पश्यामि दैवतम् । तेन सत्येन विप्रोऽयं पुनर्जीवत्वनामयः ॥ ८४ ॥

ततो विप्रः समुत्स्थौ व्याधिमुक्तः पुनर्युवा ॥ ८६ ॥

[—मार्क० १६ । ८१-९०]

३. तद्यान्तु मम पुत्रत्वं ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ ९० ॥

एवमस्त्वित तां देवा ब्रह्मविष्णुशिवादयः । प्रोक्ता जग्मुर्यथान्यायमनुमान्य तपस्विनीम् ॥ ९२ ॥

इसिस् से ऑसिरिस, होरुस और टायफ़ान नामी तीन पुत्र हुए हैं और जिस प्रकार ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर के मेल से दत्तात्रेय की उत्पत्ति हुई है उसी प्रकार मिस्त्रदेश में ऑसिरिस, होरुस और टायफ़ान से मेल से टॉथ नामी पुतला बना है।

इस टॉथ के विषय में अर्केश्वर नामी प्रसिद्ध प्रवासी लिखता है कि मिस्त्रदेश के पेकीन शहर में शहर की दीवार के उत्तर-पश्चिम कोण पर 'महाकाल म्यौ' नामी एक मन्दिर है। मन्दिर का यह नाम महाकाल नामी मुख्य देवता के कारण पड़ा है। वहाँ महाकाल नामी देव का पुतला है। वहाँ के लोग उसका भजन करते हैं। मन्दिर के एक भाग में मच्छोदरनाथ का १८ फ़ीट ऊँचा पुतला है और दूसरे भाग में दत्तात्रेय या दत्ता का पादचिह्न है। इस दत्तात्रेय का नाम वहाँ टॉथ है<sup>१</sup>।

उपर्युक्त वर्णन से पाया जाता है कि दत्तात्रेय-सम्बन्धी सारी कथा और दत्तात्रेय की मूर्ति का यह विचित्र प्रकार मिस्त्रदेश ही का है और वहाँ से चितपावनों द्वारा आया है, क्योंकि दत्तात्रेय की पूजा उत्तर भारत में कहीं नहीं होती और न किसी हिन्दू का दत्तात्रेय नाम ही होता है, परन्तु दत्तात्रेय को महाराष्ट्रयन ही इष्टदेव मानते हैं और उन्हीं के दत्तात्रेय आदि नाम भी होते हैं, अतएव उन्हीं से इसका सम्बन्ध है, इसमें सन्देह नहीं।

कुछ लोग कहते हैं कि सम्भव है दत्तात्रेय की कथा और उसकी मूर्तिपूजा भारत से ही वहाँ गई हो, किन्तु इस बात में कुछ भी सत्य नहीं है। प्रथम तो प्राचीन भारतीय आर्यों में मूर्तिपूजा थी ही नहीं, फिर दत्तात्रेय जैसी विचित्र मूर्ति यहाँ की उपज कैसे हो सकती है? इसलिए वह यहाँ से मिस्त्र नहीं गई। मिस्त्रदेश में जिस इसिस् और ऑसिरिस आदि देवियों के आधार पर टॉथ बना है वे शब्द न तो आर्यभाषा के हैं और न मिस्त्रियों की हेमिटिक भाषा के ही हैं। वे शब्द तो सेमिटिक भाषा के हैं। इसलिए ज्ञात होता है कि मिस्त्रियों में दत्तात्रेय की मान्यता भारत से या आर्यों से नहीं गई। यह सेमिटिकों से मिस्त्रियों में गई है और मिस्त्रियों से भारत में आई है। भारत में भी दक्षिणियों में ही इसका प्रचार है, क्योंकि मिस्त्रनिवासी इजिप्तवान, अर्थात् चितपावन दक्षिणियों में ही घुसे हुए हैं, इसलिए दत्तात्रेय की समस्त मान्यता चितपावनों की है और उन्हीं ने इसका इस देश में प्रचार और विस्तार किया है। इसी बात को स्वीकार करते हुए पण्डित गावस्कर कहते हैं कि यह दत्तात्रेय की उत्पत्ति इजिप्ट देश की है और वहाँ से भारत में आई है<sup>२</sup>।

इसलिए यह निश्चित और निर्विवाद है कि चितपावनों ने जिस प्रकार छल से क्षत्रियों का राज्य लिया और जिस प्रकार छल से ग्रन्थों में मिश्रण किया उसी प्रकार छल से ही उन्होंने अपनी जाति की यह कथा और पूजा भी आर्यों में प्रविष्ट कर दी। यहूदी लोग संसार में छली प्रसिद्ध हैं। ये चितपावन भी यहूदी ही हैं, इसलिए छल करने में इनको सङ्कोच नहीं हो सका। इनको हम ही छली नहीं कहते प्रत्युत लोकमान्य तिलक के जीवन-चरित्र में प्रसिद्ध लेखक नरसिंह

१. The Myau or temple is at a small distance from the north-west corner of the wall of Pechin and is called Maha-cala-myau from its chief deity. Mahacala who is worshiped there and whose statue is on one side of the river and the Myau on the other. There in one part of the Myau, is a guilt statue of Machhadaranath about 18 feet high; in another part is the charanapad or the impression of the feet of Dattatraya or Datta called Toth by the Egyptians.

२. ऑसिरिस, होरुस व टायफ़ान या इजिप्ट लोकांच्या तीन पुरुषांचा जसा 'टॉथ' नामें पुतला घड़विला तद्वत् च हिन्दू लोकांनी त्या इजिप्ट देशस्थ ऑसिरिसादि तीन पुरुषांप्रमाणें घड़विलेल्या ब्रह्मा, विष्णु व शिव या तीन पुरुषांचा मिळून हा गुरुदत्त पुतला घड़विला आहे, व या इजिप्टदेशस्थ 'टॉथ' प्रमाणेंच गुरुदत्ता चा अवडंबर कांहीं अविचारी हिंदुलोकांत माजलेला आहे। तात्पर्य ब्रह्मा, विष्णु व शिवजन्य धर्मसम्बन्धी जो क्रियामार्ग व आचार-विचार त्या सर्वांचें मूळ अफ्रिकास्थ इजिप्शियन लोक हें स्पष्ट होतें।

चिन्तामणि केलकर लिखते हैं कि 'देशस्थ लोकों में जैसे साधु-सन्त उत्पन्न हुए वैसे ही कोंकणस्थों में वीर और नीतिमान् उत्पन्न हुए। यदि पूछा जाए कि अंग्रेज़ी राज्य में छल करना किसके हिस्से में आया होगा तो कहा जाएगा कि कोंकणस्थों के, क्योंकि ज्यू लोगों की भाँति चितपावनों के लिए भी प्रसिद्ध है कि वे छली हैं और इस छल के ही कारण उनको वीरता और ऐश्वर्य की प्राप्ति हुई है। इतिहास प्रसिद्ध है कि कोंकणस्थ भट घराना छल से ही देश में घुसा और पेशवाई प्राप्त की' । इस प्रकार इनका छली और प्रपञ्ची होना तथा विदेशी होना सिद्ध है। इनमें विदेशीपन और अनार्यत्व की एक रिवाज अब तक बनी हुई है। पण्डित गावस्कर कहते हैं कि 'विसलामपुर तथा रत्नागिरी के रहनेवाले चितपावनों में अब तक रिवाज है कि श्रावणी (उपाकर्म) विधि में अथवा और किसी दिन साल में एक बार ये लोग जातिभोजन करते हैं। उस समय आठे की एक गाय बनाकर पकाते हैं और उसके पेट में मधु (शहद) भरकर उसकी बलि देते हैं। अपने कुलदेवता को बलि देकर उसके अनेक टुकड़े कर डालते हैं और जब सब लोग भोजन करने के लिए बैठते हैं तब सबकी पत्तलों में प्रसाद के रूप में उसका एक-एक टुकड़ा परसते हैं। उसके भीतर जो शहद होता है उसे तीर्थ कहते हैं। यदि यह सत्य है तो दुःख से कहना पड़ता है कि यह रिवाज इनमें बहुत भी भयङ्कर है।'

यहाँ तक हमने मिथनिवासी चितपावनों का शास्त्रविध्वंस दिखलाया और बतलाया कि इनके मिश्रण से, इनकी सङ्गति से और इनके सकाश से आर्यों में कैसे-कैसे भयङ्कर रिवाज चालू हुए और किस प्रकार शुद्ध आर्य अपवित्र हुए। कौन कह सकता है कि ये अपवित्र आसुरी रिवाज और आचरण आर्यजाति के पतन का कारण नहीं हुए और इन्हीं से आर्यजाति का पतन नहीं हुआ?

ब्राह्मण बन जानेवाली दो अनार्य जातियों का हाल यहाँ तक लिखकर देखा गया कि उन्होंने किस प्रकार आर्यसाहित्य का सत्यानाश किया है। इन दो जातियों के अतिरिक्त अन्य अनेक जातियाँ आर्यों में समा गई हैं। ज्ञात नहीं उन्होंने और क्या-क्या मिश्रण किया हो। कुछ काल पूर्व नये-नये सम्प्रदाय चलाना, नये-नये ग्रन्थ रचना और पुराने ग्रन्थों में प्रक्षेप करने का तो तूफान ही खड़ा हो गया था, यही नहीं कि ब्राह्मणों ने ही प्रक्षेप किया है, किन्तु हमने गत प्रकरण में दिखला दिया है कि उपनिषदों में क्षत्रियों की ओर से भी प्रक्षेप हुआ है। यही नहीं प्रत्युत हमें कायस्थों की ओर से भी प्रक्षेप किया हुआ लेख मिला है। महागुरुडपुराण अध्याय ९। २ में लिखा है कि—

**चित्रगुप्तपुरं तत्र योजनानां तु विंशतिः । कायस्थास्तत्र पश्यन्ति पापपुण्ये च सर्वशः ॥**

अर्थात् चित्रगुप्त का पुर बीस योजन के विस्तार में है, जहाँ सब लोगों के पाप-पुण्यों को कायस्थ लोग देखते हैं।

यह प्रक्षेप न तो ब्राह्मणों का किया हुआ है और न क्षत्रियों का। इस गप्प में कायस्थों का ही स्वार्थ है, इसलिए यह उन्हीं का किया हुआ है, क्योंकि कायस्थों के स्वार्थ की बदनामी न तो पहले कम थी, न अब कम है। मिताक्षरा में लिखा है कि कायस्थों को पीटकर प्रजा की रक्षा की जाएँ। इससे पाया जाता है कि इन्होंने बहुत बड़ा अत्याचार कर रखा था, इसीलिए ऐसा कहा गया है।

१. देशस्थ लोकान्त जसे साधुसन्त निर्माण झाले, तसेच कोंकणस्थान्त वीर व मुत्सदी उत्पन्न झाले। इंग्रेज़ी राज्यांत छल कोणाच्या विशेष वांटीस आला असेल, तर तो कोंकणस्थाच्या। ज्यू लोकां प्रमाणें चित्पावन जातीवर छळाचा छाप मारलेला आहे। पण या छळामुळेच त्यांच्या हातून वीरश्रीचीं कृत्येहि झालेली असयाचा संभव आहे। ऐतिहासिक काळांत कोंकणस्थ भट घराण्यचा छल झाल्यामुळेच देशावर ते गेलें व पेशवेपद पावलें। —लौ० टिळक यांचे चरित्र, पृ० २
२. चारचारणदुर्वृत्यं महासाहस आदिभिः । पीड्यमानः प्रजा रक्षेत् कायस्थैश्च विशेषतः ।

जाली ग्रन्थों के रचने का एक नमूना हमने स्वयं देखा है। उड़ीसा में आठगढ़ नामी एक देशी राज्य है। वहाँ के राजा का नाम विश्वनाथ है। राजा साहब संस्कृत में कविता कर लेते हैं। उन्होंने व्यास के नाम से अपने गाँव के महादेव का माहात्म्य वर्णन किया है और एक पुस्तक में छपा भी दिया है। कहने का तात्पर्य यह कि जाली रचनाएँ अब तक हुई हैं और हो रही हैं। पुरानी और मध्यकालीन जाली रचनाओं की खोज यूरोप के विद्वानों ने खूब की है।

इस प्रकार की जाली रचनाओं के लिए कोलब्रुक कहता है कि मेरे कहने का तात्पर्य यह नहीं है कि जालसाजियाँ कभी नहीं होतीं अथवा पूरे या अधूरे बनावटी ग्रन्थ नहीं बनाये गये। सर डब्ल्यू जोंस, ब्लैकवेयर और मैने प्रक्षेपों को पकड़ा है। इनसे भी बड़ी धोखेधड़ियाँ करने का प्रयत्न किया गया है। उनमें से कुछ तो थोड़े समय के लिए सफल हुई और अन्त में खुल गई, परन्तु कुछ तो तुरन्त ही पकड़ ली गई। नियमित जालसाजी का प्रत्यक्ष प्रमाण प्रकाशित हो चुका है, जिसने केप्टन बिलफोर्ड को धोखे में डाल दिया था। इसका वर्णन बिलफोर्ड ने ही कर दिया है। इस प्रकार यद्यपि कुछ प्रयत्न निष्फल हुए हैं तथापि दूसरे प्रयत्न निस्सन्देह सफल भी हुए हैं। पूर्वी साहित्य के खोज की वृद्धि होने से और समालोचकों के चातुर्य से जाली पुस्तकें और पुस्तकों में मिलाये हुए जाली पृष्ठ पकड़े जाएँगे, परन्तु मुझे यह शंका नहीं है कि वेद भी इस प्रकार के निकलेंगे।

कहने का तात्पर्य यह कि आसुरी संसर्ग से इस प्रकार की जाली रचनाओं के कारण आर्यजाति हिन्दू हो गई और उसमें मनमाने सम्प्रदाय, मनमाने ग्रन्थ और मनमाने सिद्धान्तों ने हजारों रूपों से विस्तार किया तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र सभी को नीच बना दिया और आर्यजाति का पतन हो गया। इस पतित दशा में ही मुसलमानों का आगमन हुआ। इनमें से हजारों मुसलमान हिन्दू हो गये और अनेक ने अर्ध हिन्दू और अर्ध मुसलमानरूप धारण करके हिन्दुओं के रहे सहे विश्वासों और ग्रन्थों को नष्ट कर दिया।

### मुसलमान और आर्यशास्त्र

जिसको इन बातों के जानने का न तो अवकाश है, न आवश्यकता है, उसे ज्ञात नहीं कि हमारी वास्तविक दशा क्या है, हमारा प्राचीन वैदिक धर्म क्या है और हमारा प्राचीन आर्य आदर्श क्या है? अभी गत पृष्ठों में हमने दो जातियों के द्वारा शास्त्रविध्वंस का वर्णन किया और दिखला दिया है कि किस प्रकार शास्त्रों में आसुरी बातों का प्रक्षेप किया गया है। इन दो जातियों के अतिरिक्त हिन्दुओं की अन्य शाखाओं ने भी शास्त्रविध्वंस की हत्या से अपने को पृथक् नहीं रक्खा। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों ने मनमाना साहित्य रचा है और पुराने साहित्य में मिश्रण किया है। सबके सामने देखते देखते ५० वर्ष के अन्दर ही तुलसीकृत रामायण में इतना अधिक क्षेपक घुस गया है कि असली ग्रन्थ पहले से दूना हो गया है और सात काण्ड के नौ-दश काण्ड

१. I don't mean to say that forgeries are not sometimes committed; or that books are not counterfeited, in whole or in part. Sir W. Jones and Mr. Blaquier and myself have detected interpolations. Many greater forgeries have been attempted, some have for a time succeeded and been ultimately discovered, in regard to others detection has immediately overtaken the fraudulent attempt. A conspicuous instance of systematic fabrication by which Captain Wilford was for a time deceived has been brought to light as has been fully stated by the gentleman. But though some attempts have been abortive, others may doubtless have succeeded.

Some fabricated works, some interpolated pages will be detected by the sagacity of critics in the progress of researches into the learning of the East, but I don't doubt that the Vedas will appear to be of this description.

हो गये हैं। तीन सौ वर्ष में एक हिन्दी पुस्तक की जब यह अवस्था है तब हजारों वर्ष की पुरानी संस्कृत की पुस्तकें जिनका सम्बन्ध धर्म, इतिहास और स्वास्थ्य आदि से है और जो आर्यजाति का जीवन हैं कितनी दूषित की गई होंगी, कौन जान सकता है? इन हिन्दू नामधारी शास्त्रविध्वंसकों के अतिरिक्त मुसलमानों का राज्य इस देश में बहुत दिन तक रहा है। उन्होंने भी इस देश के हिन्दुओं पर अत्याचारों के साथ इस्लाम धर्म के प्रचार का बहुत प्रयत्न किया है। उनका धर्मप्रचार अत्याचार और क्रूरता के साथ था, परन्तु उनकी क्रूरता बहुत प्रचार नहीं कर सकी। अलताफ़ हुसेन हाली कहते हैं कि—

वो दीने हिजाज़ी का बेबाक़ बेड़ा। निशाँ जिसका अक़साय आलम में पहुँचा।

न जैहुँ में अटका न कुल़ज़म् में झ़झका। मुकाबिल हुआ कोई खतरा न जिसका।

किये पे सिपर जिसने सातों समन्दर। वो झूबा दहाने में गंगा के आकर।

अर्थात् इस्लाम ने तलवार के ज़ोर से सातों समुद्रों को जीत लिया, परन्तु इस्लाम का वह बेड़ा गंगा के निकास में आकर झूब गया।

सच है, इस्लाम की तलवार ने जिस देश में प्रवेश किया उस देश को इस्लाम करके ही छोड़ा। काबुल, ईरान, अरब, तुर्क, पुर्तगाल, स्पेन, मिस्र, अफ़्रीका, रूस और चीन तक जहाँ कहीं प्रचार हुआ बस देश-का-देश इस्लाम में आ गया, किन्तु यह एक भारतवर्ष ही है जहाँ सैकड़ों वर्षों तक लगातार तलवार चली, परन्तु सिवा थोड़ी-सी नीचजातियों के, भले आदमी अधिक मुसलमान नहीं हुए। जब अत्याचार से काम न चला तब वही पुराना सिद्धान्त काम में लाया गया, अर्थात् कुछ बातें इधर-उधर की लेकर नये-नये रूप से मुसलमानों ने हिन्दूसाहित्य को गन्दा करना शुरू किया और स्वयं उनके गुरु बनकर उनमें अपने विचार स्थापित करने का प्रयत्न करने लगे। यहाँ हम वही सब बातें सारांशरूप से दिखलाने का यत्न करते हैं। हम यह नहीं लिखना चाहते कि अत्याचारी मुसलमानों ने अपने शासनकाल में इस देश के निवासियों के साथ क्या-क्या व्यवहार किया। हम तो यहाँ केवल यही दिखलाना चाहते हैं कि उनके प्रभाव से यहाँ का संस्कृतसाहित्य किस प्रकार नष्ट हुआ और वैदिक धर्म को कितना धक्का पहुँचा।

सभी जानते हैं कि संस्कृत के लाखों ग्रन्थ वर्षों तक मुसलमानों के हमारों में जलते रहे हैं और उदन्तापुरी आदि के नौ-नौ मंजिल ऊँचे पुस्तकालय बात-की-बात में भस्म कर दिये गये हैं, परन्तु यह समग्र वृत्तान्त लिखकर हम ग्रन्थ को बढ़ाना नहीं चाहते, क्योंकि पाठकों से कुछ छिपा नहीं है और न सब कागज-पत्र और इतिहास कहीं चला ही गया है, इसलिए हम यहाँ केवल यही दिखलाना चाहते हैं कि मुसलमानजाति जब अपने कठोर शासन से भी हिन्दूधर्म का नाश न कर पाई तब उसने अपने सिद्धान्त संस्कृतभाषा में लिखवाना शुरू किया और अपना एक दल अपने से अलग करके हिन्दुओं का गुरु बनने के लिए स्थिर किया। एक ओर तो मुसलमान अपने प्रचार के लिए इस प्रकार साहित्य नष्ट करने लगे और दूसरी ओर हिन्दुओं ने मुसलमानी अत्याचार से पीड़ित होकर उनसे बचने के लिए स्वयं भी नवीन-नवीन रचना करके शास्त्रों में मिश्रण करना शुरू कर दिया। इस प्रकार इन दो मार्गों के द्वारा हिन्दुओं का साहित्य बिगड़ने लगा। यहाँ पर पहले नवीन रचना के प्रमाण उपस्थित करते हैं। नवीन रचना में अल्लोपनिषद् विशेष उल्लेखनीय है, क्योंकि यह सभी जानते हैं कि अल्लोपनिषद् मुसलमानों की ही रचना है। यहाँ हम उसे ज्यों-का-त्यों उद्घृत करते हैं—

अस्माल्लां इल्ले मित्रावरुणा दिव्यानि धत्ते ।

इल्लल्ले वरुणो राजा पुनर्ददुः ।

हयामित्रो इल्लां इल्लल्ले इल्लां वरुणो मित्रस्तेजस्कामः ॥ १ ॥  
 होतारमिन्द्रो होतारमिन्द्र महासुरिन्द्राः ।  
 अल्लो ज्येष्ठं श्रेष्ठं परमं पूर्णं ब्रह्माणं अल्लाम् ॥ २ ॥  
 अल्लो रसूलमहामदरकबरस्य अल्लो अल्लाम् ॥ ३ ॥  
 आदल्लाबूकमेककम् । अल्लबूकनिखादकम् ॥ ४ ॥  
 अल्लो यज्ञेन हुतहुत्वा । अल्ला सूर्यचन्द्रसर्वनक्षत्राः ॥ ५ ॥  
 अल्ला ऋषीणां सर्वादिव्यां इन्द्राय पूर्वं माया परममन्तरिक्षाः ॥ ६ ॥  
 अल्लः पृथिव्या अन्तरिक्षं विश्वस्त्रपम् ॥ ७ ॥  
 इल्लांकबर इल्लांकबर इल्लां इल्लल्लेति इल्लल्लाः ॥ ८ ॥  
 ओम् अल्ला इल्लल्ला अनादिस्वरूपाय अर्थवर्णाशयामा हुँ हीं जनान्  
 पशून् सिद्धान् जलचरान् अदृष्टं कुरु कुरु फट ॥ ९ ॥  
 असुरसंहारिणी हुँ हीं अल्लो रसूलमहमदरकबरस्य  
 अल्लो अल्लाम् इल्लल्लेति इल्लल्लाः ॥ १० ॥ इति अल्लोपनिषत् ।

इसको पढ़कर कौन कह सकता है कि यह मुसलमानों की रचना नहीं है अथवा यह बिना उनकी प्रेरणा के बना है। इसके अतिरिक्त यूनानी वैद्यक को भी संस्कृत में लिखवाकर हिन्दू जनता में मुसलमानी हिकमत के प्रचार का उद्योग किया गया है। यहाँ हम उसका भी एक नमूना दिखलाते हैं। वैद्यक का एक 'अभिनव-निघण्टु' नामी ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ मुम्बई में पं० दत्तराम रामनारायण चौबे के तत्त्वविवेक प्रेस में छापा है। इसके श्लोक इस प्रकार हैं—

दोषः खिल्त इति प्रोक्तः स चतुर्द्वा निरूप्यते । सौदासफरा तथा बलग्रं तुरीयं खून उच्यते ॥  
 तवियत् कैफियत् कुव्वत् खासियच्च चतुष्टयम् । निखिलं द्रव्यसंज्ञेयमल्पं किंवाप्यनल्पकम् ॥  
 अपरा मुसहिलनाम्नी इसहालरेचनं विशः । नौमनिद्रा समाख्यात मुनक्किम तद्विधायनी ॥  
 खुशी फर्हत् प्रसादः स्यान्मनसौदेहपाटवम् । उभयं विदधात्येषा मुफर्रह सा प्रकीर्तिता ॥  
 दिमाग्निदिलजिरं मादा एतदंगचतुष्टयम् । आज्ञायरईस इत्युक्तं देहे शारीरिणाम् ॥

यहाँ इनका अर्थ करने की आवश्यकता नहीं है। इनके शब्दों से ही ज्ञात हो रहा है कि इनमें यूनानी हिकमत की बातें भरी हुई हैं और इनके प्रचलित करनेवाले मुसलमान हैं। जिस प्रकार वैद्यक में हिकमत का मिश्रण किया गया है उसी प्रकार ज्योतिष में भी इस्लामी तत्त्व प्रविष्ट करने का प्रयत्न हुआ है। खोज करनेवाले जानते हैं कि फलित ज्योतिष का प्रचार विदेशी है। वह इस देश में यूनान से ही आया है। पारसियों और मुसलमानों का उसपर अधिक विश्वास है। लखनऊ के नवाब तो बिना ज्योतिष का मुहूर्त दिखलाये छोटे-छोटे काम भी नहीं करते थे—झाड़े और पेशाब को भी नहीं जाते थे, उसी फलित को मुसलमानी भाषा में संस्कृत मिलाकर किस प्रकार हिन्दुओं में प्रविष्ट किया गया है, उसका भी एक नमूना यहाँ हम दिखलाते हैं। नवाब खानखाना की 'खेटकौतुक' नामी एक छोटी-सी पुस्तिका है। उसको पं० रामरत्न वाजपेयी ने लखनऊ में छापा है। उसमें लिखा है कि—

यदा माहताबो भवेत्मालखाने मिरीखोऽथवा मुश्तरी बङ्खतखाने ।  
 अतारिद्विलग्ने भवेद्वखापूर्णं भवेद्वीनदारोऽथवा बादशाहः ॥ १ ॥  
 भवेदाफताबो यदा षष्ठखाने पुनर्देव्यपीरोऽथ केन्द्रे गुरुवा ।  
 सुजातः शुतुर्फीलताज्यो हयाढ्यो जरी जर्जरावश्यदातः चिरायुः ॥ २ ॥

यदा चश्मखोरा भवेद्वोस्तखाने ततो मुश्तरी दोस्तखाने विलग्नात् ॥  
 अतारिद्धनस्थो बृहत्साहिबी स्यात् बृहत् सूर्यमखमलङ्खजानाश्वपूर्णः ॥ ३ ॥  
 तृतीये भवेदाफताबस्य पुत्रो यदा माहताबस्य पुत्रो विलग्ने ।  
 भवेन्मुश्तरी केन्द्रखाने नराणां बृहत् साहिबी तस्य तालेरुजु स्यात् ॥ ४ ॥  
 यदा मुश्तरी पंजखाने मिरीखो यदा बङ्खखाने रिपौ आफताबः ।  
 नरो बावकूफो भवेत्कुंजरेशो बृहद्रोसनोवाहिनी वारणाढ्यः ॥ ५ ॥  
 अतारिद् विलग्ने सुखे माहताबो गुरुस्वपरखने तमो लाभखाने ।  
 जहानस्य धूरी भवेत्त्रेक बङ्खः खजानागजाढ्यो मुलुक साहिबी स्यात् ॥ ६ ॥  
 यदा देवपीरो भवेद्वङ्खखाने पुनर्दैत्यपीरोऽथवा स्वपरखाने ।  
 अतारिद्विलग्ने तृतीये मिरीखः शनिर्लभखाने नरः क्राबिलः स्यात् ॥ ७ ॥  
 महलमाहताबो व्यये आफताबो यदा मुश्तरी केन्द्रखाने त्रिकोणे ।  
 भवेन्मानवो देव तेजस्कराढ्यो बृहत् साहिबी बङ्खखूबी कमालः ॥ ८ ॥  
 खजानागजाढ्यो भवेलशकराढ्यो महानप्रियो मुश्तरी जायखाने ।  
 मिरीखोऽथ लाभे बुधः पंजखाने शनिः शत्रुखाने नरः क्राबिलः स्यात् ॥ ९ ॥  
 क्रमर-केन्द्र खाने शनिः शत्रुखाने त्रिकोणेऽथवा मुश्तरी चश्मखोरी  
 स जाता नरो साविरः सुद्धणज्ञो भवेत् शायरो मालदारोऽथ खूबी ॥ १० ॥

इन श्लोकों का भी अर्थ करने की आवश्यकता नहीं है। इनमें आये हुए फ़ारसी शब्दों से ही ज्ञात हो रहा है कि इनमें मुसलमानों के ज्योतिष का वर्णन है। इसके अतिरिक्त इस्लाम प्रचार के लिए उर्दू मिश्रित अन्य श्लोक भी ऐसे-ऐसे बनाये गये हैं जिनसे उनके अल्लाह की भक्ति की जा सके। यहाँ हम नमूने के लिए इस प्रकार का भी एक श्लोक लिखते हैं—

हेच फिक्रमकर्तव्यं कर्तव्यं ज़िकरे खुदा। खुदातालाप्रसादेन सर्वकार्यं फ़तह भवेत् ॥

इस प्रकार से मुसलमानों ने संस्कृतभाषा के द्वारा अपने भाव, अपने विचार और अपने विश्वासों को हमारे भावों, विचारों और विश्वासों में भरा है और हमारी संस्कृति में क्षोभ पैदा कर दिया है। इसी प्रकार उनके दूसरे दल ने गुरु बनकर और देशी भाषा में नये-नये ग्रन्थ रचकर भी हिन्दुओं के विश्वासों में बहुत-सा अन्तर पैदा कर दिया है। यह मुसलमानों का दल जो हिन्दुओं का गुरु बनने चला था वंशपरम्परा से अब तक विद्यमान है। मुम्बईनिवासी सर आगाखाँ उसी गद्दी के वर्तमान आचार्य हैं और इस समय भी कई लाख हिन्दुओं के गुरु हैं। गुजरात, सिन्धु और पंजाब में लाखों आदमी उनके चेले हैं और हर वर्ष कई लाख रुपया दशांश के नाम से उनके पास पहुँचते हैं। उनके ग्रन्थ सिन्धी, पंजाबी और गुजराती भाषा की एक मिश्रित भाषा में लिखे गये हैं। उन ग्रन्थों में लिखा है कि अर्थवर्वेद से हमारा धर्म चला है। उन्होंने इस अर्थवर्वेद का क्रम आगे चलकर कुरान से जोड़ दिया है। इसी प्रकार उस आदि मुसलमान को कलंकी अवतार माना गया है जिसकी गद्दी पर इस समय सर आगाखाँ साहब विराजमान हैं। इनका क्रम किसी प्रकार हज़रत मुहम्मद से भी जा मिलाया है। इस धर्म में गाय का खाना और पालना दोनों लिखा है। पाँच-छह वर्ष से सर आगाखाँ ने आज्ञा दे दी है कि अब हमारे सब चेले अपने नाम मुसलमानी ढंग के रक्खें और हिन्दुओं से पृथक् हो जाएँ। कहते हैं कि हिन्दुओं की एक बहुत बड़ी जमात जिसमें लाखों मनुष्यों की संख्या है अब हिन्दुओं के हाथ से निकलनेवाली है। यहाँ हम थोड़ा-सा इस आगाखानी मत का भी इतिहास और सिद्धान्त लिखते हैं।

मुसलमानी मत के संस्थापक और कुरानमजीद के प्रचारक हज़रत मुहम्मद के दामाद

हज़रत अली से शाहजादा ज़ाफर सादिक छठा इमाम हुआ। इसी से ज़ाफरी फिरका चला, जिसको शिया कहते हैं। इन ज़ाफर सादिक के इस्माइल और मूसाक़ाज़म दो लड़के थे। इस्माइली मत इन्हीं इस्माइल के नाम से प्रसिद्ध हुआ। ‘हिस्ट्री आफ दी एसेशिन्स’ में लिखा है कि इस्माइलियों ने अपना राज्य इजिष्ट (मिस्र) में स्थापित किया और वहाँ बहुत दिन तक राज्य किया। उनमें मुस्तनसर नामी एक खलीफ़ा हुआ जिसने अपने बड़े लड़के मुस्तफ़ा अलीदीन अल्लानिज़ार को उत्तराधिकारी बनाया। इसी निज़ार के नाम से निज़ारी फिरका हुआ। बहुत दिन के बाद इन निज़ारी लोगों ने अपनी गद्दी अलमूत में स्थापित की। यह अलमूत एक पहाड़ी क़िला है जो कास्पियन समुद्र के दक्षिण और ईरान के उत्तर में स्थित है। इसी को इनके ग्रन्थों में ‘अलमूत गढ़’ के नाम से लिखा है। आज से कोई ७५० वर्ष पूर्व यहाँ से इन लोगों ने अपने उपदेशकों को भारत में इस्लाममत के फैलाने के लिए भेजा। पहले ये लोग काश्मीर में आये और वहाँ से लाहौर और लाहौर से सिन्ध के कोटड़ा ग्राम में आकर बसे। इनके ग्रन्थों में लिखा है कि—

पीर सदरदीन पंथज किया ज़ाहर खाना मकान ।  
ऐलो खानो आवी कर्यो ‘कोटड़ा’ ग्राम निधान ॥  
पीर सदरदीन ज़ाहर थया हिन्दू कर्य मुसलमान ।  
लोवाणा फिर खोजा कर्या तेने आप्यो साचो इमान ॥

अर्थात् पीर सदरदीन ने सबसे पहले कोटड़ा ग्राम में वास किया और हिन्दुओं को मुसलमान किया तथा वहाँ पर लोहाणों को खोजा बनाया। इन आनेवाले इस्लाम प्रचारकों की गोल के उस समय पीर सदरदीन गुरु थे। उन पीर सदरदीन ने अपने तीन नाम रखे थे—सदरदीन, सहदेव और हरिचन्द्र। पीर सदरदीन की गद्दी पर आजकल मुम्बई निवासी हिज़ हाईनेस सर आगाखाँ विराजमान हैं।

इन आगाखानी गुरुओं के पूर्वज बड़े ही चालाक थे। इन्होंने अपनी चालाकी से दूर-दूर तक अपने मत का प्रचार किया। इन्होंने मिस्रियों में, ईसाइयों में और दूसरे सम्प्रदायों में बड़ी-ही चातुरी से प्रचार किया। इनकी प्रचार-सम्बन्धी चालाकियों का पता खोजों के एक मुकद्दमे का निर्णय देखने से लगता है। यह निर्णय सन् १८६६ ईस्वी में हाईकोर्ट के जजों ने लिखा है। इसमें लिखा है कि जब किसी शिया को इमामी इस्माइली मत में लाना होता है तब इस्माइली उपदेशक पहले शियामत की शिक्षा को हृदय से स्वीकार करता है, अली और उसके पुत्र पर हुए अत्याचारों पर दुःख प्रकट करता है, हुसेन के शहीद होने पर दया दिखलाता है और उनके कुटुम्ब के साथ कुछ सहायता करने के लिए विचार दर्शाता है तथा बनी, उमैया और अब्बाशी के लिए तिरस्कार प्रकट करता है। इस प्रकार अपने लिए रास्ता तैयार करता है फिर धीरे से सङ्केत करता है कि शियामत जानने और पालने की अपेक्षा इस्माइलीमत के गुप्त भेदों को जानना चाहिए। इसी प्रकार जब किसी यहूदी को अपने मत में लाना होता है तब इनका उपदेशक खीस्ती और मुसलमानी मत के विरुद्ध बोलता है और जिसको अपने धर्म में लाना होता है उसके साथ मिलकर कहता है कि यह विश्वास रखना चाहिए कि मसीहा आनेवाला है, परन्तु धीरे-धीरे उसके मन में यह बात जमाता है कि जो मसीहा आनेवाला है वह अली के सिवा और दूसरा कोई नहीं है। इसी प्रकार जब किसी ईसाई को अपने मत में लाना होता है तब यहूदियों की हठ और मुसलमानों की अज्ञानता का वर्णन करता है और ईसाईमत के मुख्य अंशों को मान देने का ढोंग रचता है, किन्तु धीरे-धीरे ऐसा सङ्केत भी करता है कि यह सब ठीक है, परन्तु इसके भीतर बड़ा

भेद है और वह भेद प्रकट करनेवाला एकमात्र इस्माइली मत ही है। फिर उसको ऐसी सूचना करता है कि ईसाइयों ने पाराक्लीट ( Paraclete=The Holy Ghost or Spirit ) की शिक्षा का अर्थ उलट दिया है। तात्पर्य यह कि ये लोग अपने मत के विचार गुप्त रखते हैं और जिसको अपने धर्म में लाना होता है उसके धर्म का एक बड़ा भाग स्वयं स्वीकार कर लेते हैं।

इसी ढंग से शिक्षा देने के लिए इन्होंने मिस्र में एक विद्यालय भी खोला था। उस विद्यालय की वार्षिक आमदनी २५,००० डयूकेट थी<sup>१</sup>। उस विद्यालय में धर्मशिक्षा के नौ दर्जे थे और शिक्षा का क्रम यह था—

**प्रथम श्रेणी**—शिक्षक के वचनों पर विश्वास रखना। धर्म पर भरोसा रखने के लिए प्रेरणा करना। धर्म के गुप्त भेदों में बाधा न डालने और उनमें श्रद्धा रखने के लिए क्रस्म खाना। धर्म और बुद्धिवाद में जहाँ अन्तर आवे वहाँ उलटी-सीधी बातें बनाकर जिज्ञासु को सन्देह में डालना। इन समस्त बातों को काम में लाने के लिए कोई कमी न छोड़ना।

**द्वितीय श्रेणी**—परमेश्वर के बनाये हुए इमाम जो विद्याप्रचार के मूल थे उनकी पहचान कराना, उनकी बड़ाई करना और उनपर विश्वास पक्का कराना।

**तीसरी श्रेणी**—इमामों पर विश्वास हो जाने पर उनकी संख्या के विषय में बातचीत करना और कहना कि इमामों की संख्या सात ही थी, क्योंकि सात की संख्या पवित्र होती है। परमेश्वर ने जिस प्रकार सात की पवित्रता को ध्यान में रखकर सात दुनिया, सात आसमान, सात दरिया, सात ग्रह, सात रंग, सात स्वर और सात धातुओं को बनाया है उसी प्रकार प्राणियों में श्रेष्ठ सात ही इमामों को भेजा है। इसके बाद उन सात इमामों के नाम अली, हसन, हुसेन, अली जेनलाबदीन, मुहम्मद बाकर, ज़ाफ़रसादिक़ और इस्माइल बताना<sup>२</sup>।

**चौथी श्रेणी**—पहले यह सिखलाना कि संसार के आरम्भ के पश्चात् ईश्वरी नियमों का प्रचार करनेवाले परमेश्वर की ओर से सात पैँबर बोलनेवाले—लेकचरस हुए। उन्होंने खुदा की आज्ञा से अपना मत फैलाया। इसके बाद यह सिखलाना कि उन सातों के साथ बिना बोलनेवाले भी सात थे, जो उन बोलनेवालों के आचार्य की भाँति प्रतीत होते थे। पहले सातों को सूस कहते थे। इन सातों के नाम आदम, नूह, इब्राहीम, मूसा, ईसा, मुहम्मद और ज़ाफ़र का लड़का इस्माइल हैं। बिना बोलनेवाले उनके सात सहायकों के नाम—सेथ, शेम, इब्राहीम का लड़का इस्माइल, आइरन, सीमियन, अली और इस्माइल का लड़का मुहम्मद—हैं।

**पाँचवीं श्रेणी**—जिज्ञासु को खुली रीति से ईमान आ जाए, इसलिए प्रथम से ही ऐसा कहना कि हर एक गूँगे पैँबर के साथ बारह-बारह मददगार थे। दलील यह देना कि सात के बाद बारह का ही अंक श्रेष्ठ है, क्योंकि राशियाँ बारह हैं और अँगूठे को छोड़कर चारों अंगुलियों के पोर भी बारह ही हैं। बारह इमामों के बाद इस्माइली मत के सिद्धान्त सिखलाना।

**छठी श्रेणी**—इस श्रेणी में अपने नवीन धर्म के नियम थोड़े सिखलाना और तत्त्वज्ञान के नियम अधिक पढ़ाना। इस दर्जे में प्लेटो, अरिस्टॉटल, पैथागोरस के सिद्धान्तों का प्रमाण स्वीकार करना।

**सातवीं श्रेणी**—सातवीं श्रेणी में इस्माइली धर्म के गुप्तसिद्धान्तों के सीखने का अवसर देना और धर्म की वास्तविक आज्ञाओं को समझाना।

१. एक ड्यूकेट बारह रुपये के बराबर होता है।

२. इमामी लोग सात के स्थान में बारह इमाम मानते हैं।

आठवीं श्रेणी—सभी पैगम्बरों ने अपने से पूर्व पैगम्बरों की बात को काटकर सर्वथा नष्ट कर दिया है, इसलिए इस श्रेणी में इस्माइली मत की इस निर्बलता को नष्ट करने के लिए स्वर्ग-नरक का वर्णन करके जिज्ञासु के मन को भयभीत कर देना।

नवीं श्रेणी—इस श्रेणी में अपना पूरा अभीष्ट प्रकट रूप से सिखला देना।

खोजों के मुकदमे में इनके धर्म-प्रचार का जो ढंग जजों ने वर्णन किया है वही विधि इस विद्यालय की इस शिक्षाप्रणाली में भी पाई जाती है और इनका वही ढंग हम यहाँ भारत में भी देख रहे हैं। इन्होंने इस्लाम धर्म के प्रचार करने के लिए जो ग्रन्थरचना की है और हिन्दू बनकर जिस प्रकार हिन्दुओं को मुसलमान बनाने का प्रपञ्च किया है उसका हम यहाँ थोड़ा-सा नमूना दिखाते हैं। इनके एक ग्रन्थ में आगाखान आदि गुरुओं के लिए मुहम्मदशाह ने लिखा है कि—

जीरे कृष्ण पहेरतां पीतांबर धोती । जीरे आज कलि में कभी ने टोपी ॥

जीरे कृष्ण चालतां टिलड़ी काढ़ी । जीरे आज कलि में बढ़ाई डाढ़ी ॥

अर्थात् जहाँ कृष्ण पीताम्बर पहनते थे वहाँ आज कलियुग में गुरुजी टोपी पहिनते हैं और जहाँ कृष्ण टिलड़ी सँवारते थे, वहाँ आज कलियुग में गुरुजी डाढ़ी रखते हैं।

इसी प्रकार हज़रत आदम और हज़रत मुहम्मद के लिए लिखा है कि—

जीरे भाई रे आज कलजुग माँ ईश्वर आदम नाम भणाया

गुरु ब्रह्मा ने रची मुहम्मद कहाव्या हो जीरे भाई

जीरे भाई रे पुरुख उत्तम विष्णुजी अलीरूप नाम भणाया

ते तो नाम रखो सरे धायाँ हो जीरे भाई ॥

अर्थात् कलियुग में परमेश्वर ने अपना नाम आदम रखा, ब्रह्मा मुहम्मद कहलाये और विष्णु अली नाम से प्रसिद्ध हुए।

इनके अतिरिक्त पीर सदरदीन को हिन्दुओं का दशवाँ अवतार बताया है। एक पद्य में लिखा है कि—

कलजुग मध्ये अनंत क्रोडी पीर सहनशाये वर आलिया ।

अवतार दशमो दिलमां धरी घट कलशरूपे सही थापिया ।

अर्थात् कलियुग में दशवाँ अवतार पीर सदरदीन ही हैं जो घट, कलश आदि रखताते हैं। इसके आगे फिर लिखा है कि—

येजी अलख पुरख शाजी वेजो दातार

अलख पुरख शासरणी सतार

श्रेवो श्री इस्लामशा दशमो अवतार ।

अर्थात् ये दशवें अवतार और इस्लाम के बादशाह पीर सदरदीन ही अलखपुरुष हैं।

इसके आगे पश्चिम दिशा की प्रशंसा में लिखा है कि—

कृता जुगे द्वार उत्तर मुखे हुआ त्रेता में मुख पूर्व रचायाँ ।

द्वापर दखण आज कलि पच्छमे मेहदीशा नाम भणायाँ ॥

अर्थात् सत्ययुग में उत्तर मुख का द्वार, त्रेता में पूर्व मुख का, द्वापर में दक्षिण मुख का और आज कलियुग में पश्चिम मुख का द्वार हुआ, जहाँ मेहदीशाह हुए।

इसके आगे अपने घट पाट का वर्णन करते हुए लिखा है कि—

आज कलजुग मधे साहेब नुं एक रूप  
पच्छम दिशा वार क्रोडी सुं पीर सदरदीन  
घट पाट स्थापता, माटीना घट माटीना पाट,  
अजा जाग करतवा । अजानु मूल ते सेजादान देतवा ।  
एशो फलेथी वार क्रोडी सुं पीर सदरदीन सीजंता ।  
अमीर अमरापुरी पोंचता ।

अर्थात् आज कलियुग में साहब का एक ही रूप है । पश्चिम दिशा में माटी का घट और माटी का पाट स्थापित करके अमीर-उमरा सब पीर सदरदीन की सेवा करके अमरपुरी को जाते हैं ।

इसके आगे दशों अवतारों का वर्णन इस प्रकार है—

मछ कोरम वाराह मणा पाँई  
नरसिंह रूपे स्वामीजी विष्णु भणो  
वामन परसराम सोई अवतर्यो  
श्रीरामें लंकागढ़ नहियो  
कानजी बुध दखण अवतर्यो  
अढार खुणी शानर देयो  
पाछमें पात्र निकलंकी नारायण  
धेलम देश में शाजो स्थान रच्यो  
कोडी पंज, सत, नव, चारों अनत ही नारींधो  
श्री इस्लामशा जो नाम भणांया ॥

अर्थात् विष्णु ने मच्छ, कूर्म, वाराह, नृसिंह, वामन, परशुराम आदि अवतार धारण किये । रामचन्द्र ने लंका में चढ़ाई की । श्रीकृष्ण और बुद्ध भी हुए । इनके बाद सबसे पीछे धेलमदेश में निष्कलङ्की नारायण ने अवतार धारण किया । वही श्री इस्लामशाह पीर सदरदीन हैं ।

इसके आगे मुसलमानी मत में सबको लाने के लिए लिखा है कि—

चीला छोड़ो न दीन का धाँचा मत खाव  
सुनो बटाऊ बावरे मत भूल न जाव ।  
साँचा दीन रसूल का सो तमे सही करिजाणों  
जो कोई आवे दीन में उनको दीन में आणों ॥

अर्थात् हे मुसाफिर ! सुन, भूलना नहीं, धोखा मत खाना और दीन की डोर मत छोड़ना, क्योंकि रसूल का ही दीन सच्चा है, इसलिए तू उसे सच्चा समझ और जो दूसरे लोग आवें उनको उस दीन में ला ।

इसके आगे उस दीन का वर्णन करते हुए पीर साहब खुद अपने प्रचारकों को गुप्त बात का उपदेश करते हैं कि—

अली थकी बहु पेनज चाल्यां सो सतगुर नूरे पाया  
साले दीन पुरा कहिये हुआ सुदीन रहेमान

शाह शास्म केरो दिन पिछाणो चोदिश तेणे पाय  
 सूरज अगामी जोत देखाडी नर सोई अवतार  
 करणी कारण खाल उतारी प्रतक्ष ये परमाण्या  
 मुआ जीवता ते नर करिया करणी विना नव होय  
 नशीरदीन नूरज पाया हुआ सुदीन रहेमान  
 हिन्दू केरी पूजा करता किन्ने न पाया भेद  
 चरित्र हिन्दू अन्दर मुसलमान कोई नव तेने जाणे ।  
 राम राम काया नव राखे रातियाँ करे जु जाग  
 नशीरदीन एवा बुजर्ग कहिये कई एक हिन्दू ने तार्या  
 तिस्की आल पीर साहबदीन हुआ हुआ सुदीन रहमान  
 साहबदीन गरीबी वेशे फकीरी पूरी राखी  
 सफल तेणे दशोंद कीधी पाया दीन रहेमान  
 पीर सदरदीन बुजरग कहिये वार क्रोडी ना धार्या  
 कलजुग मां तेणे जिवड़ा तार्या जेणे साची दशोंद कीधी  
 हसन कबीरदीन गरीब बंदा होता साहबजी के चरण  
 अनंत क्रोडी ना गुरुजी आव्या करवा ऊनां काम ।

—पीर सदरदीनकृत अनन्तज्ञान

इसमें इन्होंने सालेदीन का प्रभाव, शम्सतबरेजी का तपोबल और नशीरदीन का प्रताप वर्णन करके इस्लाममत के प्रचार की यह युक्ति बतलाई है कि प्रकट में हिन्दूरूप से और अन्तःकरण में मुसलमान रहकर प्रचार करना चाहिए और शिष्यसम्प्रदाय से दशोंध, अर्थात् आय का दशांश वसूल करना चाहिए ।

इस प्रकार से मुसलमानों के इस दल ने जो हिन्दुओं का गुरु बनकर उनका धन और धर्म लेने आया था, इस प्रकार जाली ग्रन्थों की रचना से लाखों हिन्दुओं को पतित किया है । जिस प्रकार के ये इस्माइली प्रचारक थे उसी ढंग का प्रचारक कबीर भी था । वह भी हिन्दू-मुसलमानों के बीच में एक विचित्र मत खड़ा करके हिन्दुओं में से अपने चेले छीन लेने का प्रयास करता था । वह कुछ अंश में सफल भी हुआ था । जितने कबीरपन्थी हैं यदि वे कट्टर हैं तो बजाय अग्निदाह के गाड़ना अधिक पसन्द करते हैं और वेदों तथा ब्राह्मणों की निन्दा करते हैं । इस बात को गुरु नानक ने ताड़ लिया था । गुरु नानक पर कबीर का जादू नहीं चला । वे कबीरपन्थ से सचेत रहे और अलग एक ऐसा पन्थ बना सके जो ठीक मुसलमानों का विरोधी है, परन्तु दुःख से कहना पड़ता है कि कभी-कभी सिक्ख कह देते हैं कि हम हिन्दू नहीं हैं ।

जिस प्रकार कबीर साहब गुरु बन गये थे, उसी प्रकार अकबर बादशाह भी गुरु बनना चाहता था । उसने यह प्रसिद्ध कर दिया था कि मैं पूर्वजन्म का हिन्दू हूँ और मेरा नाम मुकुन्द ब्रह्मचारी था । उसने मुकुन्द ब्रह्मचारी होने की पुष्टी में जो श्लोक बनवाया था वह इस प्रकार है—

वसुरन्धबाणचन्द्रे तीर्थराजप्रयागे । तपसि बहुलपक्षे द्वादशी पूर्वयामे ॥  
 नखशिखतनुहोमे सर्वभूम्याधिपत्ये । सकलदुरतिहारी ब्रह्मचारी मुकुन्दः ॥

अर्थात् संवत् १५९८ की फाल्गुण शुक्ल द्वादशी को प्रातःकाल पृथिवी का सम्पूर्ण राज्य प्राप्त करने के लिए मुकुन्द ब्रह्मचारी ने अपना शरीर नख से शिखा तक होम कर दिया।

अकबर मुकुन्द ब्रह्मचारी बनकर अपना हिन्दूरूप दिखलाना चाहता था। वह कभी-कभी यज्ञोपवीत भी पहनता था और दाढ़ी निकाल डालता था। यह सब इसीलिए कि हिन्दू उसके चक्र में आ जाएँ। अकबर अपने समय के बड़े-बड़े लोगों को ऐसी-ऐसी बातें सुनाकर अपने क्राबू में लाता था। उसकी ये चालें बहुत अंशों में हिन्दुओं पर प्रभाव कर गई थीं। वह उनके साथ शादी-विवाह का सम्बन्ध खुले आम करना चाहता था। इतना ही नहीं, प्रत्युत उसने हिन्दुओं को एक साथ ही मुसलमान बनाने का बहुत बड़ा आयोजन किया था। उसने फतेहपुर सीकरी में एक उपासनागृह बनवाया था जहाँ पर भारतवर्ष के समस्त सम्प्रदायों के आचार्य एकत्र होते थे। इसमें पारसियों के दस्तूर मेहरजी राना नौसारी से बुलाये गये थे, अब्बुलफ़ज़ल के कहने से उनके लिए एक आग्यारी भी बनवाई गई थी और उनको दो सौ बीघा जमीन भी दी गई थी। इसी प्रकार पादरी Rodolfo Aquavivo भी इस उपासनागृह में रहते थे। इनके अतिरिक्त हरिविजय सूरि, विजयसेन सूरि, चन्द्रसूरि आदि जैन और बौद्ध साधु भी वहाँ रहते थे। इन सबके इकट्ठा करने का यही कारण था कि कोई ऐसी युक्ति निकल आवे कि ये समस्त हिन्दूजातियाँ मुसलमान हो जाएँ। हमारे इस आरोप में यह प्रबल प्रमाण है कि अकबर ने जो नवीन मत बनाया था उसका नाम दीने इलाही था और जहाँ इस मत की चर्चा होती थी उस स्थान का नाम उपासनागृह था। ये दोनों नाम इसलाम के ही अनुकूल हैं दूसरों के नहीं और इनकी तहों में इस्लाम ही झलकता है, अन्य नहीं।

ये मुसलमानों के गुरु बनने के नमूने हैं। इन रचनाओं, इन युक्तियों और गुरुओं की इन विधियों से हिन्दुओं के विश्वासों में और उनके व्यवहारों में क्या-क्या फेरफार हुआ और इनके प्रभाव, दबाव और अत्याचारों से बचने के लिए हिन्दुओं ने स्वयं अपने विचारों और पुस्तकों में क्या-क्या फेरफार किया, इसकी याद आते ही रोमाञ्च होता है। अष्टवर्षा आदि श्लोकों की रचना करके बाल-विवाह का जारी करना, सुवर का मांसाहार स्वीकार करना, पुत्री-हत्या का प्रचार करना और पर्दा-प्रथा का जारी करना क्या इस्लामी अत्याचारों के कारण ही नहीं स्वीकार किया गया? कौन कह सकता है कि हिन्दुओं को इस्लाम ही के कारण ये अनार्य सिद्धान्त नहीं स्वीकार करने पड़े? कोई भी विचारवान् हमारी इस बात का यही उत्तर देगा कि मुसलमानों ने स्वयं और हिन्दुओं ने विवश होकर आर्य-साहित्य और आर्य-संस्कृति का नाश किया है तथा आर्य-साहित्य और आर्यसंस्कृति के नष्ट होने से ही हिन्दुओं का पतन हुआ है।

## ईसाई और आर्यशास्त्र

चौथी यूरोपनिवासिनी ईसाईजाति है जिसने भारत में आकर आर्यों के रहे सहे विश्वासों को बदलने और वैदिक साहित्य के द्वारा अपने सिद्धान्तों का प्रचार करने के लिए महान् प्रयत्न किया है। यद्यपि ईसाईजाति ने इस देश को बहुत बड़ी हानि पहुँचाई है, परन्तु हम यहाँ वह सब नहीं लिखना चाहते। हम यहाँ यह नहीं लिखना चाहते कि ईसाइयों के शासन द्वारा हिन्दुओं को क्या लाभ और हानि हुई। हम यह भी नहीं लिखना चाहते कि इस देश में आने के साथ ही वास्कोडिगामा ने अपने आश्रयदाता कालिकट के राजा के साथ कैसी बेर्इमानी की। हम यह भी नहीं लिखना चाहते कि पुर्तगाल के पादरियों ने गोवा में माँ-बापविहीन लड़कों को किस क्रूरता से क्रिश्चियन बनाया। हम यहाँ यह भी नहीं लिखना चाहते कि किस प्रकार यहाँ के कारीगरों के अँगूठे काट-काटकर इन ईसाइयों ने यहाँ का व्यापार नष्ट किया और इस तपस्वी देश को

विलासी बनाया, क्योंकि सभी जानते हैं कि भारतवासी इनके कारण भूख और अपमान से शारीरिक तथा मानसिक बल खो चुके हैं, अतः हम यहाँ केवल उतना ही भाग लिखना चाहते हैं, जिसके कारण हमारे आर्यत्व, अर्थात् वैदिकता का हास हुआ है। यह मानी हुई बात है कि जब कभी कोई नवीन जाति दूसरी जाति में अपने विचार और विश्वास प्रविष्ट करना चाहती है तब वह उस जाति की कुछ बातों को मान लेती है, कुछ का अर्थ बदल देती है और अपने कुछ विचार उसमें प्रविष्ट कर देती है। इस देश में ईसाइयों ने भी इस सिद्धान्त से बहुत लाभ उठाया है। आरम्भ में ईसाई पादरियों ने देखा कि यहाँ के धर्मगुरु ब्राह्मण हैं, अतः वे भी यज्ञोपवीत पहनकर और ब्राह्मणों के-से अपने नाम रखकर ईसाईमत का उपदेश करने लगे। जब उन्होंने देखा कि यहाँ साधु-संन्यासियों का बड़ा मान है, उनपर लोग बड़ी श्रद्धा रखते हैं और उनके वचनों को मानते हैं तब मुक्ति फौज के ईसाईप्रचारकों ने भी वस्त्रों को भगवा रंग से रंगकर और संन्यासियों का भेष बनाकर प्रचार करना आरम्भ किया। इसी प्रकार जब उन्होंने देखा कि यहाँ उपनिषदों का बड़ा मान है तब वाजसनेयी उपनिषद् की 'ईशावास्यमिदः सर्वम्' इस श्रुति से ईसा मसीह का उपदेश करने लगे। इसी प्रकार बाइबिल को संस्कृत में लिखवाकर भी बड़े-बड़े पण्डितों को ईसाई बना लिया। यह सारी सचाई सब लोग जानते हैं, इसलिए यहाँ विशेष लिखने की आवश्यकता नहीं है। हाँ, केवल इस बात की चर्चा कर देना आवश्यक है कि इन्होंने किस प्रकार अपने सिद्धान्तों को संस्कृत द्वारा हिन्दुओं में प्रचलित करने की धोखाधड़ी की।

हम पहले ही लिख आये हैं कि कोलब्रुक आदि ने वेदों को प्राप्त करना चाहा था, परन्तु द्रविड़ों ने उन्हें ठग लिया और वेदों को न दिया, किन्तु पादरियों ने सोचा कि लोभी द्रविड़ों को रूपया देकर बाइबिल के सिद्धान्तों को संस्कृत में लिखवाकर एक वेद तैयार कराना चाहिए। वही किया गया। सन् १७६१ में रॉबर्ट डी० नोबली नामक पादरी ने एक द्रविड़ पण्डित को रूपया देकर पुराण और बाइबिलमिश्रित एक पुस्तक संस्कृत में लिखवाई और उसका नाम यजुर्वेद रखा। उस समय यह वेद के नाम से लोगों को सुनाया जाने लगा। इसका फ्रेंचभाषा में अनुवाद भी हुआ और बड़ी धूमधाम से पेरिस के पुस्तकालय में रखा गया। सन् १७७८ में इसपर बड़े-बड़े लेख निकले, परन्तु बात खुल गई और अन्त में मैक्समूलर ने कह दिया कि 'In plain English the whole book is childishly derived', अर्थात् यह समग्र पुस्तक लड़कों का लेख है। यह पुस्तक भी यदि अल्पोपनिषद् की भाँति आज तक प्रचलित रहती तो वह भी हिन्दुओं में मान्यग्रन्थ हो जाता, किन्तु ईसाइयों का यह प्रपञ्च न चला और इस साहित्यध्वंस के उपाय का अन्त हो गया।

यह मानी हुई बात है कि किसी भी जाति के उत्तम साहित्य का नाश करना उस जाति के नाश करने का प्रबल उपाय है। साहित्यनाश करने के तीन उपाय हैं। जला देना, गड़वा देना या दरिया में डलवा देना—ये नीच उपाय हैं; उसमें अपने सिद्धान्तों का प्रक्षेप कर देना मध्यम उपाय है; और उसे निकम्मा सिद्ध करना गूढ़ अथवा उत्तम उपाय है। पहले दोनों उपायों से तो बचने का उपाय है। कण्ठस्थ करके उत्तम साहित्य बचाया जा सकता है और जाँच-पड़ताल से प्रक्षेप भी पकड़ में आ सकता है, परन्तु तीसरा उपाय बड़ा ही दुर्गम है। इससे बचना बहुत ही कठिन है। ईसाइयों ने हमारे साहित्य को नष्ट करने का दूसरा उपाय ही अपनाया। वे हमारे देश के बच्चों की शिक्षा का भार अपने हाथ में लेकर मनमाना साहित्य पढ़ाते हैं और उसका मनमाना अर्थ भी करते हैं। उन्होंने हमारे देश के साहित्य पर विचार भी किया है। कृष्णयजुर्वेद से लेकर अल्पोपनिषद् तक जो कुछ अब तक आर्यों और अनार्यों ने मिश्रण किया है सबको समझा है और हमें जंगली

सिद्ध करने में उसका उपयोग भी किया है, क्योंकि वे मान बैठे हैं कि भारतीयों के कल्याण में हम यूरोपवासियों का कल्याण नहीं है। जबसे उन्होंने इस देश को राजनैतिक दृष्टि से देखना आरम्भ किया है, जब से उनको यहाँ की ३० कोटि जनसंख्या सैनिक दृष्टि से दिखने लगी है, जब से उन्होंने देखा है कि यह देश यदि सशस्त्र स्वतन्त्र हो जाए तो युद्ध के लिए प्रति वर्ष बीस लक्ष जवान दे सकता है और हमेशा के लिए युद्धोपकरण तथा खाने-पीने का सामान अपने-आप पूरा कर सकता है और जबसे उन्होंने देखा है कि पारसी, यहूदी, देशी ईसाई, मुसलमान और बौद्ध आदि भारतवासी देशप्रेम से प्ररित होकर एक हो सकते हैं तबसे यूरोपनिवासी इस देश के साहित्य, इस देश के इतिहास, इस देश के व्यापार और राज्य आदि किसी भी उत्कर्ष को पनपने नहीं देते। वे जानते हैं कि प्राचीन जातियों के समस्त उत्कर्ष की कुंजी उनके साहित्य में होती है, इसीलिए ये ईसाई कुटिल नीति से प्रेरित होकर यहाँ के उत्तम साहित्य का अनर्थ करके अभिप्राय पलट देते हैं।

बंगाल के प्रसिद्ध विद्वान् और रसायनशास्त्र के आचार्य श्रीयुत पी० सी० राय 'हिस्ट्री ऑफ इण्डियन केमिस्ट्री' के पृष्ठ ४२ पर लिखते हैं कि 'जब यूरोपियन विद्वानों को स्वीकार करना पड़ता है कि विद्या-सम्बन्धी विषयों में यूरोप देश भारतवर्ष का ऋणी है तब उनको बहुत बुरा लगता है। यही कारण है कि ये लोग ऐतिहासिक विषयों को अन्य रीति से वर्णन करने का व्यर्थ प्रयत्न करते हैं'।

यूरोपनिवासियों की यह बात शिक्षाविषयक पाठ्य पुस्तकों में बहुत ही स्पष्ट रूप से दिखालाई पड़ती है। यह सभी जानते हैं कि वेदों का समय प्रत्येक प्रकार से बहुत पुराना सिद्ध हो चुका है, परन्तु स्कूलों में अब तक वेदों की प्राचीनता वही तीन हजार वर्ष की पढ़ाई जा रही है। इसी प्रकार यह सिद्ध हो चुका है कि आर्यों के पूर्व इस देश में कोल, द्रविड़ादि कोई भी असभ्य जातियाँ नहीं रहती थीं और आर्यलोग कहीं बाहर से आकर यहाँ नहीं बसे, परन्तु अबतक वही पुरानी बातें पढ़ाई जाती हैं कि यहाँ के मूलनिवासी द्रविड़ और कोल हैं, आर्य तो कहीं बाहर से आये हैं। इसका तात्पर्य यही है कि इस प्रकार की बातों को पढ़कर भारतीय आर्य अपने साहित्य से उदासीन हो जाएँ और बिना जलाये, बिना प्रक्षेप किये ही उनके लिए उनका इतिहास मुर्दे से भी अधिक निकृष्ट हो जाए। वही हुआ। हमारे विश्वासों में अन्तर आने लगा। हम ईसाई शासकों के द्वारा प्रतारित होकर इस साहित्य के साथ ईसाई-गर में समाना ही चाहते थे कि बंगाल के आर्यशिरोमणि राजा राममोहन राय ने ब्राह्मसमाज द्वारा हमें बचाने का यत्न किया, परन्तु उनके बाद ही केशवचन्द्र सेन ने ईसाइयों से प्रभावित होकर ब्राह्मसमाज के सिद्धान्तों को ईसाई सिद्धान्तों के साथ मिलाकर ब्राह्मसमाज को भी एक प्रकार से देशी ईसाईसमाज ही बना दिया, किन्तु तुरन्त ही स्वामी दयानन्द ने इस क्षेत्र में अपना कार्य आरम्भ कर दिया। उन्होंने आर्यों में उनकी प्राचीन विद्या, सभ्यता, संस्कार, धर्म और सार्वभौम राज्य आदि के मन्त्र फूँके। उन्होंने सारे देश में घूम-घूमकर तत्कालीन समझदार लोगों के हृदयों में प्राचीन आर्यों का जाज्वल्यमान यश प्रकाशित कर दिया। उन्होंने वेदों की उच्च शिक्षा का विस्तारपूर्वक वर्णन किया और आर्यजाति को सचेत किया कि वे अपनी डूबती हुई आर्यनौका को सँभालें। यह बात लोगों की समझ में आ गई और स्वामी दयानन्द के धर्मप्रचार का तूफान उमड़ पड़ा। सारे देश में स्वामी दयानन्द के उद्देश्य की चर्चा होने लगी। काँग्रेस के जन्मदाता मिस्टर ह्यूम ने कहा कि स्वामी दयानन्द इतना बड़ा आदमी है कि मैं उसके पैर के बूटों के तस्मे खोलने की भी योग्यता नहीं रखता। दूसरे अंग्रेज भी उनकी प्रतिभा के सामने नत मस्तक हुए। यह चर्चा यूरोप और अमेरिका

में भी पहुँची।

यूरोप और अमेरिका में स्वामी दयानन्द के आविर्भाव, धर्मप्रचार और संगठन पर लेख निकलने लगे। वहाँ के लोग घबराये और अनुभव करने लगे कि इसाईमत की कुशलता नहीं है। अमेरिका के उन लेखों में से एण्ड्रो जैक्सन डेविस के एक लेख का कुछ अंश हम यहाँ उद्धृत करते हैं। वह लिखता है कि 'मुझे एक आग दिखलाई पड़ती है जो सर्वत्र फैली हुई है। वह आग सनातन आर्यधर्म को स्वाभाविक पवित्र दशा में लाने के लिए आर्यसमाजरूपी भट्टी में से निकली है और भारत के एक परम योगी दयानन्द सरस्वती के हृदय में प्रकाशित हुई है। हिन्दू और मुसलमान इस प्रचण्ड अग्नि को बुझाने के लिए दौड़े, ईसाइयों ने भी इसके बुझाने के लिए हिन्दू और मुसलमानों का साथ दिया, परन्तु यह ईश्वरीय आग और भी भड़क उठी और सर्वत्र फैल गई'।

इस प्रकार के लेखों से वहाँ के पादरी घबराये। उस समय अमेरिका में कर्नल अल्काट और मेडम ब्लेवेट्स्की आदि जो वैज्ञानिक रीतियों से ईसाईधर्म की सिद्धि किया करते थे दूर तक सोचने और भारत से ईसाईजाति के प्रस्थान का स्वप्न देखने लगे और भविष्य को अन्धकारमय समझकर स्वामी दयानन्द को अपने पंजे में फँसाने के लिए निकल पड़े। वे भारत में आये और आर्यसमाज में घुसे, परन्तु स्वामी दयानन्द ने उनको ताड़ लिया और तुरन्त ही आर्यसमाज से पृथक् कर दिया। निराश होकर उन्होंने भारतवर्ष में ईसाईमत के प्रचार के लिए थिओसोफिकल सोसाइटी की स्थापना की और प्रचार करने लगे। उन्होंने संसारभर के बड़े-बड़े धर्मों को थिओसोफी के चक्रर में लाकर सबको ईसा का चेला बनाने की विधि रच डाली। मेडम ब्लेवेट्स्की तो कुछ ही वर्षों के बाद चल बर्सी, परन्तु उनकी स्थानापन्न एनी बीसेंट नामी आयरलेंडवासिनी एक दूसरी गौरांग महिला यहाँ आकर उपस्थित हो गई। आप बड़ी ही चलता पुर्जा, ज़बरदस्त लेखिका और प्रभावशालिनी व्याख्यानदात्री सिद्ध हुई। हमेशा हर विषय में अप-टु-डेट रहने लगीं और अपने यहाँ के नवशिक्षित समाज में अपने सिद्धान्तों को साइंस से सजाकर फैलाना शुरू किया।

बाहरी प्लान तथा भीतरी अदृश्य प्लानों की थ्योरी बनाकर वह अदृश्य साधुओं से योग द्वारा अपना सम्बन्ध बतलाने लगीं और भूत-प्रेत आदि का ढकोसला भी चालू कर दिया। उन्होंने कई प्रकार के यन्त्र बनवाये, जिनके द्वारा भूत-प्रेत और मृत आत्माओं का दर्शन कराने लगीं। मैस्मरेज़म और हिपनाटिज़म द्वारा योग की क्रियाएँ बतलाकर और दिखलाकर लोगों को मोह में डालने लगीं। इसी प्रकार अपने धर्म के विचित्र सिद्धान्त बनाकर समस्त सम्प्रदायों और समस्त धर्मों को एक ही स्थान में मिलाकर सबको ईसा के जटिल फन्दे में फसाने की युक्ति करने लगीं और कहने लगीं कि संसार का शिक्षक आनेवाला है जो ईसा का ही रूप है, अतएव उसके लिए हृदय और देश तैयार करना चाहिए। यहाँ हम उनके इस सिद्धान्त का वर्णन उनके ही शब्दों में करते हैं। आप कहती हैं कि 'संसार में दो शक्तियाँ हैं, एक शासक दूसरी शिक्षक। शासक शक्ति पहले मनु, अर्थात् मनुष्य हुई। इसी के साथ-साथ उसका भाई शिक्षक भी हुआ। आर्यजाति में यह व्यास हुआ जिसने सूर्यचिह्न को प्रचलित किया। दुबारा वही शक्ति मिस्र में टॉथ नाम से और ग्रीस में हर्म्स नाम से प्रादुर्भूत हुई। तीसरी बार वही ईरान में जरथुस्त के नाम से कही गई। चौथी बार वही ग्रीस में आरफन नाम से अवतीर्ण हुई। पाँचवीं बार वही शक्ति बुद्ध हुई और मुक्त होकर चली गई। चलते समय वह संसार के शिक्षक का काम अपने भाई मैत्रेय को दे गई जो अब क्राइस्ट—ईसा—कहलाता है। बुद्ध बुद्धि का और ईसा प्रेम का देवता है। यही प्रेमदेव—ईसा—

आजकल संसार का शिक्षक है<sup>१२</sup>।

इस लेख में शिक्षा गुरुओं का क्रम व्यास से शुरू होकर बुद्ध तक चला। जब बुद्ध का निर्वाण होने लगा तब जाते समय उन्होंने यह काम अपने भाई मैत्रेय ऋषि को दे दिया, और वही मैत्रेय ईसा हो गये। तब से अब प्रबन्ध तीव्र हो गया है। अब संसार के धर्मगुरु ईसा ही है। इस फन्दे में हिन्दू, मिस्री, पारसी, बौद्ध आदि सभी धर्मावलम्बी फाँसे गये हैं और बिना इच्छा के बलात् ईसा के चेले बना दिये गये हैं। इस रचना के साथ ही एक मद्रासी लड़के के लिए प्रसिद्ध किया गया है कि वही संसार का शिक्षक है, अर्थात् वही ईसा का अवतार है। इस प्रकार उस नवीन शिक्षक के द्वारा शिक्षा दिलाकर संसार को ईसाई मत के अनुकूल बनाने और सब धर्मों में ईसाइयत का शासन जमाने का उत्तम साधन किया गया, परन्तु पाप की नाव बहुत दिन तक नहीं चलती। भूत-प्रेत दिखलानेवाले यन्त्रों का भण्डाफोड़ स्वयं उसी आर्टिस्ट ने कर दिया जो उन यन्त्रों को बनाया करता था और इस सारी सचाई को यन्त्रों के फोटोसहित पियर्सन्स मेगेज़ीन ने छाप दिया है जो सबके सामने है। इसी प्रकार एफ०टी० ब्रूक्स ने Theosophical Bogyism नामी पुस्तक में इनके भीतरी अदृश्य प्लानों (inner circle) की पोल खोल दी है। नये संसार-शिक्षक की उत्पत्ति और अनेक ऐसी ही चालाकियों से विवश होकर बाबू भगवान्‌दास आदि

१. The coming of a World-Teacher—That mighty Hierarchy has two chief departments concerned with the growth and the evolution of man—one the department that guides the outer evolution, that shapes the forms of races, that raises and casts down civilisations, to whom kings and the nations of the world are as pawns in the mighty game of life; the other, the department of teaching which gives religion after religion to the world as the world has need of it.

At the head of the ruling department—so far as appearance in the world is concerned—stands the Mighty Being from whom our very name of man is drawn. He is the ‘Manu’ the man. The name Manu means the thinker, the reasoner, the intelligent one, so this name of the typical man, the Manu, stands for the Ruler, the Law-giver of the race. And side by side of him, his brother in the great world of evolution, stands the World-Teacher, called by that name in some of the ancient books of earth, known as the one who embodies in himself the wisdom which is the truth that feeds the human race.

In the stock of our races, the first great Aryan people, there they had as the World-Teacher the great one known under the name of Vyasa, and he taught the one truth by the figure and the symbol of the sun.

Then when he came to the second sub-race and taught in Egypt under a different name, of Thoth, whom the Greeks called Hermes.

Then he came to the third sub-race, to the Iranians, and he came then under the name of Zarthustra, better known as Zoroaster.

Then a fourth time he came to the fourth sub-race the Greeks known as Orphens; but he no longer spoke in light but in music, and by the mysteries of sound he taught the unfolding of the spirit in man.

Then that Mighty one returned to earth, but once more, to become the Lord Buddha, and to found the religion that still outnumbers any other faith on earth.

And then : He passed away, never again to take a mortal form, and handed on the duty of the World-Teaching to his Brother, who has come side-by-side with him through many ages, to Him who is the World-Teacher of to-day, the great Lord Maitreya, whom Christendom calls the Christ and between these two identical in thought, identical in teaching there was yet a difference of temperament that coloured all they thought; for He who became the Budda is known as Lord of Wisdom, and He who was the Christ is known as the Lord of Love—one teaching the law, calling on men for right understanding, for right thinking; the other seeing in love the fulfilling of the law and seeing in love the very face of God, Lord of Wisdom! Lord of Love! It is the Lord of Love who is the World-Teacher of to-day.

विद्वान् थियासोफीकल सोसाइटी से दूर हट गये। फल यह हुआ कि थियोसोफी की पोल खुल गई और उसकी धार्मिक स्कीम एक प्रकार से गिर गई और कुछ दिन के लिए एनी बीसेंट का रंग फीका पड़ गया—उनकी भद्र हो गई।

धर्मप्रचार का बना-बनाया खेल बिगड़ते देखकर उन्होंने दूसरा प्रपञ्च शुरू किया और विद्याप्रचार के काम में तीव्रता दिखलाने लगीं तथा कई एक नये कॉलेज खोल दिये। उस समय ऐसा प्रतीत होता था कि वे भारतभर की शिक्षा का भार अपने ही हाथ में ले-लेंगी। शिक्षाप्रचार का काम हाथ में लेने के दो कारण थे। एक तो शिक्षा के साथ-साथ गुप्त रीति से ईसाई सिद्धन्तों का सिखलाना, दूसरे अखण्ड ब्रह्मचर्य से विद्यार्थियों को उदासीन बनाना। जहाँ देश के हितचिन्तक गुरुकुल, ऋषिकुल आदि खोलकर अखण्ड ब्रह्मचर्य का प्रचार करते थे, वहाँ ठीक इसके विरुद्ध इनके यहाँ इस प्रकार की शिक्षा होती थी। इस प्रचार का यही उद्देश्य होगा कि जितने लड़के ब्रह्मचारी हों कम-से-कम उतने ही लड़के ब्रह्मचर्य से उदासीन बना दिये जाएँ, जिससे कभी भी यह जाति अंग्रेजों के मुकाबले में न तो पढ़-लिख सके और न शौर्य, तेज, बल और पराक्रम आदि ही धारण कर सके। सारांश यह कि इस प्रकार की शिक्षा एनी बीसेंट के सहायक महाशय लेडबिटर के द्वारा जारी कराई गई, परन्तु भाग्य से यह सारा भेद प्रकट हो गया और प्रकट होते ही सारे देश में इसी की चर्चा होने लगी और टीका-टिप्पणियों से प्रत्येक समूह उपेक्षा दिखलाने लगा। लोगों ने अपने बच्चों को स्कूलों से उठना शुरू कर दिया और देश में एनी बीसेंट की बुरी तरह से भद्र हो गई। स्कूलों और कालेजों से उनका सम्बन्ध छूट गया और उनका यह वार भी खाली गया। धर्मप्रचार और विद्याप्रचार के द्वारा वे ईसाईमत और अंग्रेजजाति की बहुत सेवा न कर सकीं।

कुछ दिन के बाद आयरलैंड और इंग्लैंड की बीच खटपट हुई। एनी बीसेंट आइरिश हैं, अतः वे अंग्रेजों को बन्दरघुड़की देने और एक नई स्कीम के द्वारा भारतवासियों को फिर से अपने पंजे में फँसाने के लिए अब की बार राजनैतिक रूप में दिखलाई पड़ीं। यह उनका तीसरा रूप है। आयरलैंड और भारत में पुजने के लिए उन्होंने गवर्नर्मेंट के विरुद्ध बड़े ही गर्मागर्म लेक्चर देने शुरू किये और होमरूल नामी एक नई संस्था को जन्म दिया। उन्हीं दिनों में लोकमान्य तिलक और महात्मा गांधी देश का राजनैतिक कार्य कुछ आगे बढ़ानेवाले थे, परन्तु एनी बीसेंट ने, इस डर से कहीं इन लोगों का उद्देश्य विशाल न हो जाए, चट होमरूल लीग के द्वारा गवर्नर्मेंट से परिमित अधिकार चाहनेवाले नियम बनाकर और उनका नाम होमरूल रखकर लोगों को उसी की हलचल में चिपका दिया और लोकमान्य तिलक तथा महात्मा गांधी की संयुक्त शक्ति के द्वारा होनेवाले काम को सदा के लिए नष्ट कर दिया।

होमरूल लीग से पृथक् लोकमान्य तिलक ने तो अपनी एक अलग संस्था निकाली। महात्मा गांधी भी कुछ काम करना ही चाहते थे और इसके लिए केवल देश का वातावरण ही देख रहे थे। इतने में हिन्दू यूनिवर्सिटी का उत्सव हुआ। इसी में महात्मा गांधी के कार्य का भविष्य सोचकर एनी बीसेंट ने वहाँ पर महात्मा गांधी को गिराने का प्रयत्न किया, परन्तु सूर्य पापी के कोसने से नहीं छिपता, अतः एनी बीसेंट का वह वार भी खाली गया। वहाँ से लौटकर एनी बीसेंट ने कुछ ऐसे लेक्चर दिये जो आपत्तिजनक थे। उन्हीं के कारण एनी बीसेंट को जेल हुई। इस गुण से मुग्ध होकर देश के अनुभवहीनों ने उनको कांग्रेस का प्रेसीडेंट बनाया, परन्तु उन्होंने वहाँ भी अपना रूप प्रकट कर दिया। अपने भाषण में कह दिया कि मैं आपको सदा प्रसन्न रखने की प्रतिज्ञा तो नहीं कर सकती, परन्तु यह प्रतिज्ञा कर सकती हूँ कि राष्ट्र की सेवा के लिए सब प्रकार उद्योग करूँगी। मैं आपकी सभी बातों से सहमत होने तथा आपके मार्ग का अनुसरण

करने की प्रतिज्ञा नहीं कर सकती, क्योंकि नेता का कर्तव्य नेतृत्व करना ही होता है। इस बात से हमको तो उसी दिन ज्ञात हो गया था कि इन्होंने अपना रूप प्रकट कर दिया है। हमें ही नहीं प्रत्युत और भी सब देशवासियों को ज्ञात हो गया था कि वे राजनैतिक मैदान में हमारा साथ वहीं तक दे सकती हैं, जहाँ तक हमको ईसाइयों की गुलामी करना स्वीकार हो, इससे आगे नहीं। पिछले काग़ज-पत्रों के देखने से ज्ञात होता है कि होमरूल लीग उन्होंने इसलिए बनाई थी कि अगर उनपर कोई आपत्ति आये तो देश के लोग उसके द्वारा पुकार करने पर उनको उस सङ्कट से बचाएँ। यह बात १६। १०। १६ के 'नवजीवन अने सत्य' नामी पत्र में छपे हुए शंकरलाल बेंकर एम०ए० के लेख से अच्छी प्रकार प्रकट होती है। कहने का तात्पर्य यह कि होमरूल लीग उनकी प्रशंसा करने, आयरलैंडवालों को सहायता देने और एक प्रकार से अपने चेलों को अपने फन्दे में फँसाये रखने के लिए ही थी। महात्मा गांधी के सच्चे काम के आरम्भ करते ही न होमरूल लीग का कहीं पता लगा और न एनी बीसेंट का।' इस प्रकार उनका यह तीसरा धावा भी समाप्त हुआ। यद्यपि वे पूर्ण रीति से अपने उद्देश्य में सफल नहीं हुई तथापि हज़ारों और लाखों मनुष्यों के विचारों और विश्वासों को इतना लचर और कमज़ोर बना दिया कि उनकी हालत पर दया और खेद होता है। पढ़े-लिखे हिन्दुओं का जितना जीवन थियोसोफी ने नष्ट किया है उतना और किसी ने नहीं। उनका उद्देश्य ही यह था कि जहाँ आर्यों का उत्कर्ष हो वहाँ पर उपाय से बाधा पहुँचाना। थियोसोफिस्ट किसी भी भारतवासी की प्रबल आवाज़ को सुनते हैं तो तुरन्त उसको नीचा दिखाने के लिए आगे पहुँचते हैं। ये नहीं चाहते कि इस देश के लोग तनिक भी उठ सकें।

स्वामी दयानन्द और महात्मा गांधी का उत्कर्ष नष्ट करने का जैसा धृणित उद्योग इन लोगों ने किया है वह हम ऊपर लिख चुके हैं। उससे भी अधिक भयङ्कर व्यवहार इन्होंने स्वामी विवेकानन्द के साथ भी किया है। अमेरिका में जब स्वामी विवेकानन्द की कीर्ति आरम्भ हुई थी तब वहाँ इन लोगों ने उनके प्राण तक लेने का सङ्कल्प किया था। अपने-आपपर बीती हुई इस सच्चाई को स्वामी विवेकानन्द ने मद्रास के विक्टोरिया हाल में वक़्ता देते हुए स्वयं कहा है कि 'अमेरिका जाने के समय थियोसोफिकल सोसाइटी के नेता महाशय से, जो अमेरिकावासी होते हुए भी भारतभक्त कहलाते हैं, मिलकर मैंने एक परिचय-पत्र के लिए प्रार्थना की, परन्तु फल यह हुआ कि उक्त महोदय ने मुझे अपनी सोसाइटी से अलग समझकर कहा कि हम तुम्हारे लिए कुछ भी नहीं कर सकते। जब मैं अमेरिका पहुँचा तो वहाँ मुझे आर्थिक दशा पर कठोर दुःखों का सामना करते देख, इन्हीं में से एक ने लिखा कि शैतान बहुत जल्द मरेगा, परन्तु ईश्वरेच्छा में बच गया। इतना ही करके इन लोगों ने मेरा पीछा नहीं छोड़ा, किन्तु जहाँ पर मैं ठहरता था वहाँ से लात मारकर मुझे निकाल बाहर कराने और मेरे मित्रों से ही मुझे मरवा डालने की भी बड़े वेग से हज़ारों कोशिशें कीं; परन्तु ईश्वर की मर्जी से उनकी एक भी कोशिश सफल न हुई। सब-के-सब हाथ मलते रह गये। जब धर्म महासभा में मेरी ख्याति बढ़ी तब तो इन लोगों की ईर्ष्या का ठिकाना ही न रहा"।

स्वामी विवेकानन्द की इस वक़्ता से स्पष्ट हो जाता है कि थियोसोफिस्ट भारत का उत्कर्ष नहीं चाहते थे। उनका उद्देश्य तो संसार को ईसाई बनाना है। एनी बीसेंट सब धर्मावलम्बियों को थियोसोफी में केन्द्रित करके ईसा को संसार का धर्मगुरु मनवाने का यत्न करती हैं और कृष्णमूर्ति को ईसा का अवतार बनाकर वर्तमान विज्ञान के टूटे-फूटे और झूठे चमत्कारों से भोलभाले लोगों को उनके धर्म से पतित करना चाहती हैं। इस कृष्णमूर्ति के नवीन अवतार पर यद्यपि आजकल थियोसोफिस्टों में भी असन्तोष फैल रहा है तथापि एनी बीसेंट ईसाईधर्म प्रचार की धुन में किसी

की नहीं सुनतीं। ये कृष्णमूर्ति कौन हैं और इनके विषय में क्या चर्चा है, यहाँ थोड़ा-सा इसका भी वर्णन करते हैं।

कृष्णमूर्ति एक मद्रासी ब्राह्मण के पुत्र हैं। इनके पिता तहसीलदार थे। एनी बीसेंट ने कृष्णमूर्ति को उनके पिता से शिक्षा देने के लिए माँग लिया और लेडबिटर नामी अपने एक सहायक को सौंप दिया, परन्तु लेडबिटर के पास रखना कृष्णमूर्ति के पिता को स्वीकार न हुआ, इसलिए उन्होंने अपने पुत्र को वापस लेना चाहा। वापस न देने पर उन्होंने अदालत में दावा किया, परन्तु अदालत ने उनको उनका पुत्र न दिलाया और कृष्णमूर्ति शिक्षा प्राप्त करने के लिए यूरोप भेज दिये गये। अब वे वहाँ से शिक्षा प्राप्त करके यहाँ आ गये हैं। सन् १९२६ ई० में मद्रास प्रान्त के अद्यार नामी क़सबे में संसार की समस्त जातियों के दो हजार थियोसोफिस्ट प्रतिनिधियों की उपस्थिति में एक वटवृक्ष के नीचे कृष्णमूर्ति का 'नवीन मसीहा' के रूप में अभिषेक हुआ। इस नवीन मसीहा के विषय में एनी बीसेंट ने कहा कि नवीन मसीहा संसार के समस्त धर्मों की ऐक्यता करने के लिए अवतारित हुए हैं। इसी प्रकार पेरिस में स्वयं कृष्णमूर्ति ने भी कहा कि मैं संसार में उदारता, प्रेम, तितिक्षा और सब धर्मों की एकता का प्रचार करता हूँ, परन्तु इस नवीन मसीहा के विरुद्ध आज समस्त थियोसोफी मण्डल में आन्दोलन हो रहा है। सभी इस पाखण्ड का खण्डन कर रहे हैं। लण्डन थियोसोफी लॉज के प्रेसीडेंट लेफ्टिनेंट कर्नल सी०एल० पीकॉक ने लिखा है कि बीसेंट का यह नया धर्म थियोसोफी के वास्तविक रूप के विरुद्ध है। इसी प्रकार केलीफोर्निया और न्यूयार्क के नेताओं ने भी इस नवीन मसीहा सम्बन्धी निश्चय का विरोध किया है। सब कहते हैं कि एनी बीसेंट कृष्णमूर्ति को क्राइस्ट का अवतार बनाना चाहती हैं और वे यह भी चाहती हैं कि सब थियोसोफिस्टों का धर्मचिह्न क्रॉस हो, परन्तु अनेक व्यक्तियों ने इसे अस्वीकार कर दिया है। इस प्रकार कृष्णमूर्ति को ईसा का अवतार बनाने के प्रयत्न की सबने निन्दा की है। जेकोस्लाविया, फ्रांस और मद्रास आदि के लोगों ने उनके इस नये धर्म की निन्दा की है। इस सम्बन्ध में पेरिस के 'ईवनिङ्ग वर्ल्ड' नामी पत्र ने लिखा है कि कृष्णमूर्ति कहता है कि मेरे कमज़ोर कन्धों पर क्यों यह धर्म का बोझ लादा जा रहा है<sup>१</sup>। मुझे तो टेनिस खेलने में जितना आनन्द आता है, उतना और किसी बात में नहीं। इसी से अमेरिकावाले विनोद से कृष्णमूर्ति को टेनिस प्रेमी मसीहा कहते हैं। नवीन मसीहा के इस समस्त वर्णन से स्पष्ट हो रहा है कि किस प्रकार एनी बीसेंट भारतवासियों को ईसाई बनाना चाहती हैं। बड़े मार्के की बात यह है कि एनी बीसेंट को ईसा का अवतार बनाने के लिए आदमी भी कहाँ मिला? वहीं मद्रास में—द्रविड़ों में। वहीं से तो आर्यों के वैदिक धर्म को नष्ट करने और आर्यों को पतित करने का सूत्रपात हुआ है। यह बात थियोसोफिस्ट जानते हैं। उन्होंने यह सब समझ-बूझकर ही अपना अड्डा मद्रासप्रान्त में लगाया है।

हमने यहाँ तक यह थोड़ी-सी किन्तु देर तक विचार करने योग्य बात ईसाइयों, ईसाई शासकों और ईसाई थियोसोफिस्टों की लिखी है। यह वर्तमान युग की बात है जो सबके सामने है, तो भी कितनी पेचदार है? पढ़े-लिखे हिन्दू, पारसी, मुसलमान आदि सभी इसके फेर में हैं। सभी को आक्सीजन, हाइड्रोजन, इलेक्ट्रोन की थ्योरी बताकर और

१. अभी हाल में समाचार आये हैं कि कृष्णमूर्ति ने अब इस गुरुडम से अपने को पृथक् कर लिया है और आर्डर आफ दि ईस्ट नामी पन्थ (जो एनी बीसेंट ने कृष्णमूर्ति के लिए बनाया है) से पृथक् हो गये हैं। इस घटना से शर्मिन्दा होकर आप कहती हैं कि कृष्णमूर्ति अवतार हैं और हमसे अधिक बुद्धिमान् हैं, इसलिए जो कुछ करते हैं, सब ठीक ही है।

स्प्रिचुअल् इज्म, योग और वेदान्त की बातें सुनाकर तथा भूत-प्रेत और आत्मा के इनर प्लानों की बातें सिखाकर ये लोग भोले मनुष्यों को चक्रर में डालते हैं। पढ़े-लिखे किन्तु भोले लोग ही इनके चक्रर में पड़ते हैं और अपना हर प्रकार से पतन कर लेते हैं। वे आर्योचित कर्तव्य के योग्य नहीं रहते और ईसाई-प्रचारकों के अनुकूल हो जाते हैं, इसलिए इनको अब सचेत हो जाना चाहिए और निश्चय कर लेना चाहिए कि इस पन्थ में हमारा कल्याण नहीं है, क्योंकि जिस ईसाईमत की ओर थियोसोफिस्ट ले-जाते हैं, उस धर्म को यूरोपनिवासी अपने लिए लाभदायक नहीं समझते, प्रत्युत वे दूसरों का सत्यानाश करने के लिए ही इसे पादरियों के द्वारा दूसरे देशों में भेजते हैं। फ्रेंच पार्लियामेंट में बजट-सम्बन्धी वादविवाद के समय जब ईसाई धर्म-प्रचार के खर्च पर आपत्ति की गई तब इस आपत्ति का उत्तर देते हुए मन्त्री ने कहा कि 'Christianity is not for home consumption, it is for colonial export', अर्थात् ईसाइयत घर के लिए नहीं प्रत्युत उपनिवेशों में भेजने के लिए है। ईसाइयत यदि अच्छी वस्तु होती तो घर के योग्य अवश्य समझी जाती, परन्तु निकम्मी वस्तु है और निकम्मी वस्तु के द्वारा दूसरे देशों को निकम्मा छाना है, इसलिए उसका प्रचार दूर देशों में किया जाता है। ईसाइयों के द्वारा और ईसाईधर्मप्रचार के द्वारा दूसरे देशों को किस प्रकार निकम्मा बनाया जाता है, इसका उदाहरण ढूँढ़ने की आवश्यकता नहीं है। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण भारतवर्ष है। किस प्रकार इन्होंने अपनी कुटिल नीति से इस देश की आत्मिक, शारीरिक और सामाजिक शक्तियों का सत्यानाश किया है, वह सबके सामने है और सभी उसका फल भोग रहे हैं। प्रत्येक वर्ष कहीं-न-कहीं दुष्काल, नाना प्रकार की जनसंहारिणी बीमारियाँ और परस्पर कलहाग्नि भारत के कोने-कोने में व्याप्त हो रही है। ईसाई शासकों, ईसाई प्रचारकों और ईसाई व्यापारियों ने इस देश में ऐसी-ऐसी बीमारियाँ फैला दी हैं कि इस देश का प्रलयपर्यन्त कल्याण दिखलाई नहीं पड़ता। ऐसी चेपी बीमारियों में से उपदंश की बीमारी इन्हीं की फैलाई हुई है। इनके आने के पूर्व तक इस देश में इसका कोई नाम भी नहीं जानता था, परन्तु पोर्च्युगीज़ों के आते ही यह भयङ्कर रोग इस देश में फैल गया<sup>१</sup>। कहने का तात्पर्य यह कि ईसाइयों के द्वारा इस देश की जो हानि हुई है वह अकथनीय है।

यहाँ तक हमने विदेशियों द्वारा नवीन सम्प्रदायों का प्रवर्तन और वैदिक साहित्य का विध्वंस दिखलाया। अब हम यह समस्त कथा यहीं पर समाप्त करते हैं। इतने ही वर्णन से अनुमान करने के लिए अवसर न छोड़ना चाहिए और तुरन्त ही यह बात ध्यान में ले-लेनी चाहिए कि जब इतने दीर्घकाल के बाद भी आज साहित्यविध्वंस का पता इतनी अधिकता से लग सकता है तब न जाने पूर्वकाल में पता लगाने से कितना पता मिलता और किन-किन विदेशियों ने क्या-क्या रचना की है, जाना जाता, इसलिए यदि कोई हिन्दूधर्म की अव्यवस्था और आर्यजाति की दुर्गति का कारण जानना चाहे तो वह इतने ही वर्णन से अच्छी प्रकार समझ सकता है। आज हिन्दुओं में जो नाना प्रकार के कुसंस्कार, अविद्या और अनैक्यता दिखलाई पड़ती है और आज जो आर्यजाति पतित दशा में पहुँची है उसका कारण इस वर्णन से सहज ही दिखने लगता है, क्योंकि यह मानी हुई बात है कि मनुष्यजाति का पतन अनैक्य, अविद्या और अनाचार से ही होता है। हमारे इस समस्त वर्णन से स्पष्ट हो रहा है कि आर्यों में विदेशियों के द्वारा अनेक मत-मतान्तरों, दार्शनिक विचारों और अनेक सम्प्रदायों का प्रचार हुआ है और उसी से हममें अनैक्यता उत्पन्न हुई है। इसी तरह विदेशियों के ही द्वारा धर्म के नाम से मद्य, मांस, व्यभिचार आदि दुर्व्यस्त और अनाचार भी

१. Syphilis appears to have been unknown in India till the end of the fifteenth or beginning of the sixteenth century, when it was introduced by the Portuguese. —The Ocean of Story, by Penger.

आर्यों में प्रविष्ट हुए हैं, जिनसे हममें प्रत्येक प्रकार की दुर्बलता, निरुत्साह और अपवित्रता समा गई है। इसी प्रकार विदेशियों की ही कृपा से हममें अविद्या का प्रचार भी हुआ है। जहाँ मद्य, मांस और व्यभिचार हो, जहाँ जंगली व्यवहार ही धर्म हों, जहाँ वंचक और अविवेकी मनुष्य गुरु बन जाएँ और इसी प्रकार के गुरुओं की बात पर विश्वास किया जाना धर्म हो, वहाँ विद्या का प्रचार कैसे हो सकता है? विद्या तो इन सब उपद्रवों की शत्रु है, इसीलिए गुरुपूजा, गुरुओं की सम्प्रदायपूजा और गुरुओं की वाक्यपूजा ही ने सब विद्याओं का स्थान ले-लिया। वही जो कुछ कहें वह सत्य और सब झूठ हो गया। इन गुरुओं के आदेश से देश की प्रधान जनसंख्या शूद्र हो गई और वह विद्या से अलग हुई। बच्ची हुई थोड़ी-सी संख्या का आधा भाग स्त्रियों का भी विद्या से अलग हुआ तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य सब विदेशी गुरुओं की आज्ञा पालन करने और उनकी ही सेवा करने में लग गये। ऐसी स्थिति में विद्या कौन पढ़े? इस प्रकार सारे हिन्दूसमाज में अनैक्यता, अनाचार और अविद्या का साम्राज्य हो गया और इन तीनों दुर्गुणों के कारण आर्यजाति का हर प्रकार से पतन हो गया, जिसका चित्र सबके सामने विद्यमान है।

इस इतिहास से यह निश्चय कर लेना सहज है कि अब हमें क्या करना चाहिए, अर्थात् हमें धार्मिक विश्वासों में किस प्रकार फेरफार करना चाहिए। हम कहते हैं कि सत्यासत्य के निर्णय के लिए, अर्थात् वैदिक धर्म और आसुरी विश्वासों का निश्चय करने के लिए और दोनों का अन्तर जानने के लिए यही उत्तम कुंजी है कि हम केवल वेदों पर ही विश्वास करें, अन्य ग्रन्थों पर नहीं, क्योंकि रावण से सायण तक और कबीर से एनी बीसेंट के द्वारा स्थापित द्रविड़वतार तक समस्त विदेशी धर्मप्रचारकों के द्वारा आर्यधर्म में आधे से अधिक आसुरी विश्वासों का मिश्रण किया गया है, इसलिए वेदों को स्वतःप्रमाण और अन्य ग्रन्थों को परतःप्रमाण मानने का जो प्राचीन विश्वास चला आता है उसी को मान्य समझकर प्रत्येक आर्य [हिन्दू] को चाहिए कि वह वेदों का स्वाध्याय करके केवल संहिताओं से ही अपने धर्म-कर्म की शिक्षा ग्रहण करे, क्योंकि मनु महाराज स्पष्ट शब्दों में कह रहे हैं कि वेदों को छोड़कर अन्य ग्रन्थों में श्रम करने से आर्यत्व नहीं रह सकता। इसका कारण स्पष्ट है कि अन्य ग्रन्थों में मनुष्यों की कपोलकल्पना का होना सम्भव है, किन्तु वेद ईश्वरप्रदत्त है, इसलिए उनके आदेश निर्भान्त हैं। थोड़े-से विष के मिलने से जिस प्रकार पका हुआ अन्न का बहुत बड़ा भाग त्याज्य समझा जाता है, उसी प्रकार दूषित साहित्य के पढ़ने से भी विषतुल्य आसुरी भावों के चिपक जाने की सम्भावना रहती है, इसलिए अपने धर्म को वेदानुकूल ही बनाना चाहिए, परन्तु दुःख से कहना पड़ता है कि आसुरी भावों की उत्पत्ति, उनका विस्तार और आर्यविश्वासों में उनके मिश्रण का यह इतिहास स्पष्ट बता रहा है कि आज तक वेदों की किस प्रकार उपेक्षा हुई है। अनार्यों ने तो उनको नष्ट करने की प्रेरणा से उनकी महत्ता की उपेक्षा की है और आर्यों ने उनकी निर्मल शिक्षा के प्राप्त करने और उस शिक्षा के ग्रहण करने में उपेक्षा की है, अर्थात् प्रत्येक प्रकार से वेदों की उपेक्षा हुई है। जो वेद ईश्वरीय ज्ञान हैं और जो मनुष्य की शिक्षा के लिए आदिसृष्टि में दिये गये हैं उनकी उपेक्षा करके मनुष्यजाति कैसे सुखी हो सकती है, विशेषकर आर्यजाति कैसे आर्यत्व की रक्षा कर सकती है और कैसे पतन से बच सकती है? आर्यों ने वेदों की उपेक्षा करके आसुरी सिद्धान्तों को ग्रहण किया, इसीलिए उनका पतन हुआ जो इस समय सबके सामने है, अतः आर्यों के इस पतन का कारण वेद नहीं हैं, प्रत्युत इस पतन का कारण तो वेदों की उपेक्षा ही है।

इति ।